शिक्षा के दार्शनिक आधार (Philosophical Foundation of Education)
BAED-N-102, Semester. II

इकाई 01: दर्शन- भारतीय एवं पश्चिमी परिपेक्ष्य में अर्थ (PHILOSOPHY : ITS MEANING IN INDIAN AND WESTERN PERSPECTIVES)

1.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION

1.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

भाग-एक **(PART- I)**

1.3 भारतीय दर्शन (INDIAN PHILOSOPHY)

1.3.1 पश्चिमी परिवेश में दर्शन का अर्थ (MEANING OF PHILOSOPHY IN WESTERN PERSPECTIVES)

1.3.2 दर्शन की परिभाषाएं (DEFFINITIONS OF PHILOSOPHY)

अपनी उन्नति जानिए CHECK YOUR PROGRESS)

भाग-दो **(PART- II)**

1.4 दर्शन के क्षेत्र/अंग (SCOPE AND PARTS OF PHILOSOPHY)

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

भाग-तीन **(PART- III)**

1.5 दर्शन के कार्य (FUNCTIONS OF PHILOSOPHY)

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

1.6 सारांश (SUMMARY)

1.7 शब्दावली (GLOSSARY)

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची ((REFERENCES)

1.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री (ESSAY TYPE QUESTIONS

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

मनुष्य का वास्तविक स्वरूप क्या है ? विश्व में उसकी स्थिति क्या है ? किस सत्ता से प्रेरित होकर सारा संसार नियमानुसार कार्य करने में रत है ? विश्व के सृजन तथा संहार के पीछे कौन-सी शक्ति अपने ऐश्वर्य का परिचय दे रही है? क्यों प्रकृति अपने नियमों का उल्लंघन कभी नहीं करती है? इस वसुन्धरा के प्राणियों में क्यों सुख है? क्यों दुःख है? इनके सुख-दुःख में इतनी विषमता क्यों है? क्या दुःख की इस स्थिति एवं विषमता को पार करने का कोई उपाय भी है? क्या पाप है? क्या पुण्य है? उत्तम समाज की कौन-सी ऐसी व्यवस्था हो सकती है जो मनुष्य के लिए श्रेयस्कर हो? मनुष्य के वास्तविक कल्याण का क्या साधन है? ये सभी ऐसे प्रश्न हैं, जिनके उत्तर को मानवता अनादि काल से संपूर्ण विश्व में किसी न किसी प्रकार से खोजती आई है और इस अन्वेषण के फलस्वरूप जिस साहित्य की रचना हुई है, उसे दर्शन शास्त्र कहा जाता है।

कौटिल्य के शब्दों में - ''दर्शनशास्त्र सभी विद्याओं का दीपक है, वह सभी कर्मो को सिद्ध करने का साधन है, वह सभी धर्मों का अधिष्ठान है।''

अतः दर्शन प्रेम की उच्चतम सीमा है। इसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एवं मानव जीवन के वास्तविक स्वरूप, सृष्टि-सृष्टा, आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत, ज्ञान-अज्ञान, ज्ञान प्राप्त करने के साधन तथा मनुष्य के करणीय तथा अकरणीय कर्मो का तार्किक विवेचन किया जाता है। इस दृष्टि से दर्शन जीवन का आवश्यक पक्ष है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का कोई न कोई दर्शन अवश्य होता है। चाहे उसके संबंध में व्यक्ति सचेतन हो अथवा न हो। इस प्रकार सभी व्यक्ति अपने जीवन दर्शन के अनुरूप तथा संसार के विषय में अपनी धारणा के अनुरूप जीवन व्यतीत करते हैं।

1.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

1. दर्शन का अर्थ भारतीय परिपेक्ष्य में समझ सकेंगे।
2. दर्शन का अर्थ पश्चिमी परिपेक्ष्य में समझ सकेंगे।
3. भारतीय व पाश्चात्य दार्शनिकों की परिभाषा का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

4. दर्शन के विभिन्न भागों- तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, आलोचनावाद, मूल्य मीमांसा को समझ सकेंगे।

5. दर्शन के कार्यो को समझ सकेंगे।

भाग-एक (PART- I)

1.3 भारतीय दर्शन (INDIAN PHILOSOPHY)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत ही नहीं, अपितु समस्त संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ 'वेद' ही हैं। भारतीय दर्शन का स्रोत वेद है। वेद कोई दार्शनिक ग्रन्थ नहीं है, वरन् दर्शनों के आधारभूत ग्रन्थ हैं। वेदों ने बाद के भारतीय दर्शनों पर अत्यधिक प्रभाव डाला, जिन्हें आज हम 'षड्दर्शन' कहते हैं-वे सभी वेदों को मानने वाले हैं। कुछ दर्शन वेदों को नहीं मानते। ऐसे दर्शन तीन हैं- चार्वाक, बौद्ध तथा जैन । इस दृष्टि से भी वेदों का महत्व है। अर्थात् भारत में जो चिन्तन हुआ, वह या तो वेदों के समर्थन के लिए या फिर खण्डन के लिए। वस्तुतः पहले 'नास्तिक' शब्द वेदनिन्दक के लिए ही प्रयुक्त होता था, बाद में इसका अर्थ 'अनीश्वरवादी' हो गया। 'नास्तिक' शब्द के पहले अर्थ में केवल चार्वाक, बौद्ध तथा जैन दर्शन 'नास्तिक' हैं और दूसरे अर्थ में मीमांसा और सांख्य भी आते हैं, क्योंकि ये भी ईश्वर को नहीं मानते। एक अन्य अर्थ के अनुसार- 'नास्तिक उसे कहते हैं, जो परलोक में विश्वास नहीं करता है।' इस अर्थ में षड्दर्शन तथा जैन एवं बौद्ध दर्शन भी आस्तिक दर्शन हो जाते हैं और केवल चार्वाक दर्शन आस्तिक है।

'वेद' वास्तव में एक ही है और उसी से चार वेद बन गये हैं, जैसा कि सनत्सुजात के निम्नलिखित कथन से विदित होता है-

''एकस्य वेदास्याज्ञानाद् वेदास्ते बहवः कृताः।''

अर्थात्-अज्ञानवश एक ही वेद के अनेक वेद कर दिये गये हैं।

स्थूल दृष्टि से वेद को 'कर्म-काण्ड' एवं 'ज्ञान काण्ड' में विभक्त किया गया है। 'कर्म-काण्ड' में उपासनाओं का तथा 'ज्ञान-काण्ड' में आध्यात्मिक तत्व का विवेचन है। देवताओं की स्तुतियों में

अनेक मंत्र हैं। ऋग्वेद के दशम् मण्डल के 121वें सूक्त में हिरण्यगर्भ की स्तुति की गई है। इस सूक्त से आध्यात्मिक चिन्तन का अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता नीतिशास्त्र का विश्वविख्यात ग्रन्थ है। इसमें भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है। गीता का मुख्य सन्देश 'निष्काम कर्म' है। अर्थात् बिना फल की इच्छा किये हुए कर्म करना चाहिए। आत्मा अजर-अमर है। न तो इसको कोई मार सकता है और न ही यह किसी को मार सकता है। गीता में ज्ञान, भक्ति एवं कर्म-तीनों मार्गो की महिमा बताई गई है। किन्तु निष्काम कर्म को सुगम एवं उत्तम साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। लक्ष्य के रूप में 'मुक्ति' ही स्वीकार्य है।

चार्वाक दर्शन भौतिकवादी दर्शन है। इसके अनुसार जड़-जगत सत्य है और यह वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी- इन चार भौतिक तत्वों से बना है। चेतना की उत्पत्ति भौतिक तत्वों से ही है। आत्मा शरीरर को ही कहा जाता है। शरीरर के नष्ट होने पर चैतन्य जो भौतिक तत्वों का विशेष है, नष्ट हो जाता है। मृत्यु के बाद कुछ नहीं बचता। परलोक, वेद, ईश्वर आदि को यह दर्शन स्वीकार नहीं करता। इसके अनुसार जब तक जियें सुख से जियें का सिद्धान्त सर्वोत्तम सिद्धान्त है।

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुमान एवं शब्द भी प्रमाण हैं। भौतिक जगत को जैन दार्शनिक भी चार्वाक की भांति वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी-इन्हीं चार तत्वों के मिश्रण से निर्मित मानते हैं। जैन दार्शनिकों के अनुसार चैतन्य की उत्पत्ति जड़-पदार्थो से नहीं हो सकती। जैन दर्शन के अनुसार जितने सजीव शरीरर हैं, उतने ही चैतन्य जीव हैं। प्रत्येक जीव में अनन्त सुख पाने की क्षमता है। मोक्ष-प्राप्ति सर्वथा संभव है। सांसारिक बंधन से छुटकारा पाने के लिए सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र, तीन उपाय बताये गये हैं।

बौद्ध दर्शन - जगत के सभी प्राणियों में एवं सभी दशाओं में दुःख वर्तमान है और इस दुःख का कारण है- क्योंकि कोई भी भौतिक-आध्यात्मिक वस्तु अकारण नहीं है। संसार की सभी वस्तुएं परिवर्तनशील हैं। मरण का कारण जन्म है। जन्म का कारण तृष्णा है और तृष्णा का कारण अज्ञान है। दुःखों के कारण यदि नष्ट हो जायें तो दुःख का भी अन्त हो जायेगा। चौथा सत्य 'दुःख-निवृत्ति' के उपाय के रूप में है।

1.3.1 दर्शन का अर्थ

(i) पश्चिमी परिवेश में दर्शन का अर्थ

दर्शन शब्द संस्कृत के 'दृश' धातु में 'ल्यूट' प्रत्यय लगाकर बनाया गया है। जिसका अर्थ है- 'देखना'। इसका अंग्रेजी शब्द Philosophy है, जिसकी उत्पत्ति दो यूनानी शब्दों से हुई है:- philo जिसका अर्थ है Love और Sophia जिसका अर्थ है व of wisdomइस प्रकार philosophy का अर्थ है- Love of Wisdom (ज्ञान से प्रेम)।

(ii) भारतीय परिवेश में दर्शन का अर्थ

'दर्शन' पद की व्युत्पत्ति दो अर्थ है। पहले, 'दुश्यते अनेन इति दर्शनम्'। इस व्युत्पत्ति के अनुसार संस्कृत में 'दर्शन' का अर्थ होता है-'जिसके द्वारा देखा जाये।' 'दर्शन' शब्द से वे सभी पद्धतियां अपेक्षित हैं, जिनके द्वारा परमार्थ का ज्ञान होता है। 'देखा जाये' इस पद का अर्थ यों तो 'ज्ञान प्राप्त किया जाये' यह भी हो सकता है, फिर भी इस संबंध में यह ध्यान रखना उचित है कि ज्ञान प्राप्त करने के अनेक साधन हैं। जैसे-प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द आदि। लेकिन इन सभी में सबसे प्रसिद्ध और प्रमुख साधन है-प्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष के भी इन्द्रिय-भेद से पांच प्रकार होते हैं, लेकिन इन सभी में जो ज्ञान चक्षु-इन्द्रिय से प्राप्त होता है-जिसे चाक्षुष प्रत्यक्ष कहते हैं-उसकी प्रामाणिकता सर्वोपरि है। शब्द भी एक प्रकार का प्रत्यक्ष है, जिसको आप्त (विश्वसनीय) पुरूषों ने अपनी अविचलित बुद्धि और शुद्ध अंतःकरण से प्राप्त करके लौकिक जनों के उत्थान हेतु गुरू-शिष्य परम्परा से प्रसारित किया है। प्रायः चार्वाक को छोड़कर जितने भी भारतीय दार्शनिक हैं वे सभी आप्त (विश्वसनीय) वाक्यों की श्रेष्ठ प्रमाणिकता में विश्वास करते हैं। वेद में आस्था रखने वाले शास्त्रकार तो ऐसा मानते ही हैं, किन्तु जैनों एवं बौद्धों के भी अपने-अपने आप्त-वचन अथवा आगम हैं, जिन्हें वे प्रमाण-स्वरूप मानते हैं। इन सबसे प्रत्यक्ष को सर्वोपरि प्रमाण मानने की बात सिद्ध होती है।

दूसरे 'दृश्यते इति दर्शनम्' जो देखा, समझा जाये वह दर्शन है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रामाणिक विषय-ज्ञान दर्शन है। इस प्रकार 'दर्शन' के अर्थ में दोनों व्युत्पत्तिमूलक अर्थ शामिल हैं। संक्षेप में, 'दर्शन' शब्द से भारतीय शास्त्रकारों का तत्वसाक्षात्कार अभीष्ट है। दर्शनशास्त्र में प्रायः उसी साक्षात्कार की कल्पना की जाती है, जिसकी तार्किक विवेचना भी हो सके। दर्शन शास्त्र का इतिहास

ही आप्त पुरूषों द्वारा प्रदर्शित तत्व की युक्तिसंगत विवेचना है। इसके वास्तविक अर्थ को तर्क की कसौटी पर कस कर लाने का एक क्रमबद्ध प्रयास है। इस सबसे यह ज्ञात होता है कि दर्शन का अर्थ केवल अर्न्तज्ञान ही नहीं अपितु वे समस्त विचारधारायें हैं जो अंर्तज्ञान से उद्भूत होती हुई भी युक्तियों के आधार पर प्रमाणित की जाती हैं। भारतीय विद्वानों के दर्शन का यही अर्थ अभिमत है।

दर्शन शास्त्र सत्ता संबंधी ज्ञान कराकर मनुष्य का परम कल्याण करता है। यह परम कल्याण ही दर्शन का लक्ष्य है। अब प्रश्न है कि इस परम कल्याण का क्या स्वरूप है ? यद्यपि इस प्रश्न का उत्तर देने में भारतीय दर्शन के आचार्यो में मतभेद हैं, तथापि इन सबमें एक समानता है, जो न केवल वेदपथगामी दार्शनिक सम्प्रदायों की विशेषता है वरन् जैन और बौद्ध-सरीखे अवैदिक सम्प्रदाय दो दार्शनिक विचारकों की भी आधारभूत मान्यता है।

संसार के विषयों से उत्पन्न होने वाले जितने भी सुख हैं, उनमें दुःख किसी न किसी रूप में छिपा रहता है। इसी दुःख की ज्वाला से तप्त होकर दार्शनिकों ने उसकी निवृत्ति के उपायों की खोज की है। जैनों के अर्हतत्व, बौद्धों के निर्माण, नैयायिकों की आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति तथा वेदान्तियों के मोक्ष में दुःख के नाश की कल्पना अन्तर्निहित है। इस प्रकार दुःख का समूल नाश ही भारतीय दर्शन का परम लक्ष्य रहा है। भारतीय दर्शनकारों ने इसी लक्ष्य के साधनभूत अन्यान्य दर्शनों की रचना करके तथा उन्हें अधिकारभेद से मनुष्य की परमार्थसिद्धि में उपयोगी बताकर मनुष्य को परमपद प्राप्त करने का प्रयत्न किया है।

1.3.2 दर्शन की परिभाषाएं (DEFINITIONS OF PHILOSOPHY)

दर्शन क्या है तथा दर्शन के बिना व्यक्ति का जीवन सहज तरीके से नहीं चल सकता, ये बातें दर्शन के अर्थ तत्व से स्पष्ट हो जाती हैं। ''मनुष्य अपने जीवन तथा संसार के विषय में अपनी-अपनी धारणाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करता है। यह बात अधिक से अधिक विचारहीन मनुष्य के विषय में भी सत्य है, बिना दर्शन के जीवन व्यतीत करना असंभव है।'' - हक्सले

(क) पाश्चात्य दार्शनिकों द्वारा दी गई परिभाषाएं:-

1. ''दर्शन ऐसा विज्ञान है, जो चरम तत्व के यथार्थ स्वरूप की जांच करता है।'' - अरस्तू

("Philosophy is the science which investigates the nature of being as it is in itself." - (Aristotle)

2. ''पदार्थो के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान ही दर्शन है।'' – प्लेटो

("Philosophy aims at the knowledge of the eternal nature of things." - Plato)

3. ''ज्ञान का विज्ञान ही दर्शन है।'' – फिक्टे

("Philosophy is the science of knowledge." - Fichte)

4. ''दर्शन विज्ञानों का विज्ञान है।'' - कामटे

("Philosophy is the science of Science." - Comte)

5. ''दर्शनशास्त्र विश्वव्यापी विज्ञान तथा सभी विज्ञानों के संकलन का नाम है।'' – स्पेन्सर

("Philosophy is the synthesis of the science and universal science." - Spencer)

(ख) भारतीय दार्शनिकों एवं शैक्षिक चिन्तकों द्वारा दी गई परिभाषाएं:-

1. ''दर्शन एक ऐसा दीपक है, जो सभी विधाओं को प्रकाशित करता है।''

कौटिल्य के अनुसार-''आन्वीक्षिकी विद्या'' ही दर्शन है।

दर्शन''प्रदीपः सर्व विद्यानानुपायः सर्वकर्मणाम्।

आश्रमः सर्वधर्माणम् शश्वदान्वीक्षिकीमता।।'' - अर्थशास्त्र, कौटिल्य

2. ''दर्शन एक ठोस सिद्धान्त है, न कि अनुमान या कल्पना, इसे व्यवहार में लाकर व्यक्ति निर्धारित लक्ष्य या मार्ग प्रशस्त कर लेता है।'' - डॉ. बलदेव उपाध्याय

3. ''दर्शन के द्वारा प्रत्यक्षीकरण होता है। अर्थात् चाहे जितना ही सूक्ष्म क्यों न हो उसे दर्शन (दिव्य चक्षुओं) से अनुकूल किया जा सकता है।'' - डॉ. उमेश मिश्र

4. ''यथार्थता के स्वरूप का तार्किक विवेचन ही दर्शन है।'' - डॉ. राधाकृष्णन

5. ''दर्शन एक प्रयोग है जिसमें मानव व्यक्तित्व एवं सत्य उसकी विषय वस्तु होती है और उसको जानने के लिए हम प्रमाण एकत्रित करते हैं।'' - महात्मा गांधी

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 भारतीय दर्शन का स्रोत क्या है ?

प्र. 2 तीन ऐसे दर्शनों के नाम बताईये जो वेदों को नहीं मानते।

प्र. 3 वेदों के बाद भारतीय दर्शन पर सर्वाधिक प्रभाव किसने डाला है ?

प्र. 4 नास्तिक से आप क्या समझते हैं ?

प्र. 5 ''अज्ञानवश एक ही वेद के अनेक वेद कर दिये गये हैं।'' यह कथन किसका है ?

भाग-दो (PART- II)

1.4 दर्शन के क्षेत्र तथा अंग (SCOPE AND PARTS OF PHILOSOPHY)

दर्शन शास्त्र का विषय क्षेत्र बहुत व्यापक है। यह एक ऐसा अध्ययन है, जिसमें अनुकूल सत्य या प्रत्यक्ष अनुभव, लोक-परलोक और आध्यात्म का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। यह ज्ञान, विज्ञान और कला सभी कुछ है। प्राचीन दर्शन में तो साहित्य, कला, धर्म, इतिहास, विज्ञान आदि सभी विषय इसके अंतर्गत आते हैं। दर्शन को निम्न तीन प्रमुख अंगों में विभाजित किया गया है।

1. तत्व मीमांसा (Metaphysics)

2. ज्ञान मीमांसा (Epistemology)

3. मूल्य मीमांसा (Axiology)

तत्व मीमांसा **(Metaphysics)**:- तत्व मीमांसा जिसे हम अंग्रेजी में Metaphysics कहते हैं, यह दो शब्दों का मिश्रण है:- Metaphysic मेटा (Meta) अर्थात (परे Beyond), फिजिक्स (Physics) अर्थात (प्रकृति Nature)।

इस प्रकार तत्व मीमांसा या Metaphysics का अभिप्राय हुआ प्रकृति के परे (What is real)। तत्व मीमांसा सदैव ही इस प्रश्न के प्रत्युत्तर की खोज में लगा रहता है कि इस संसार में वास्तविकता क्या है अर्थात् तत्व मीमांसा दर्शन शास्त्र की वह शाखा है जो वास्तविकता की प्रकृति की खोज करती है और साथ ही यह इस बात की खोज करती है कि वास्तविकता किन-किन तत्वों का परिणाम है अथवा उसमें कौन-कौन से तत्व समाजित होते हैं। इस वास्तविकता की खोज के लिए तत्व मीमांसा प्रकृति, ईश्वर, मनुष्य, विश्व, शक्ति, ऊर्जा आदि से संबंधित तत्वों की वास्तविकता की खोज करने का प्रयास करती है। तत्व मीमांसा के अंतर्गत ईश्वर के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने इस प्रकार मत को विभाजित किया है:-

1. आस्तिकवाद (Theism),

2. नास्तिकवाद (Atheism),

3. बहुवाद (Poly-Theism),

4. एकवाद (Oneism),

5. द्वैतवाद (Dualism),

6. विश्वद्वेतवाद (Pantheism),

7. ईश्वरवाद (Deism)

2. ज्ञान मीमांसा (Epistemology):- इसे अंग्रेजी में **(Epistemology)** कहते हैं जो दो शब्दों से मिलकर बना है:

Epistemology (एपिसटीम Episteme) (ज्ञान Knowledge) + लॉजी (Logy) (विज्ञान Science)

इस प्रकार ज्ञान मीमांसा, ज्ञान का विज्ञान (Science of Knowledge) है। यह इस प्रश्न की प्रतिउत्तर की खोज करता है कि संसार में सत्य क्या है? (What is True)। इसके अंतर्गत ज्ञान की प्रकृति, सीमाएं, विशेषताएं व उनका प्रादुर्भाव आदि का अध्ययन किया जाता है। इसमें ज्ञान के विभिन्न पहलुओं के संबंध में अध्ययन कर सत्य की खोज का प्रयास किया जाता है। ज्ञान की उत्पत्ति के संबंध में इसमें तीन विद्धान्तों का उदय हुआ है -

1. बुद्धिवाद **(Relationalism)**. इसके प्रवर्तक डेकॉर्ट Descartes) थे। इस विचारधारा के अनुयायियों का मानना है कि ज्ञान-प्राप्ति का एकमात्र साधन बुद्धि है। यथार्थ ज्ञान सार्वभौमिक व अनिवार्य होता है और इसकी खोज बुद्धि द्वारा ही संभव है।

2. अनुभववाद **(Empiricism)** . इसके प्रवर्तक जॉन लॉक (John Lock) थे। इनका कहना है कि ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन अनुभव है। जन्म के समय बालक का मस्तिष्क कोरे कागज के समान होता है। इसमें बुद्धि का कोई स्थान नहीं है। अनुभव प्राप्त करने के दो साधन हैं:-

अ. संवेदना (Sensation

ब. विचार प्रत्यावर्तन (Reflection)

3. आलोचनावाद **(Critical Theory)**. उपरोक्त दोनों की आलोचना के फलस्वरूप प्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट ने इसका प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा कि बुद्धिवाद व अनुभववाद स्वयं में अपूर्ण हैं। इन दोनों के द्वारा स्वीकार किये गये तथ्य तो सही हैं परन्तु दोनों के द्वारा अस्वीकार किये गये तथ्य गलत हैं। हम न तो बुद्धि की सहायता से ज्ञान की व्याख्या कर सकते हैं और न ही अनुभव की सहायता से। हमें इन दोनों के सहयोग की आवश्यकता है। इन दोनों विचारधाराओं का समन्वय करते हुए काण्ट ने ज्ञान के दो पक्ष बताए हैं:-

अ. ज्ञान की विषय वस्तु (Subject-matter of Knowledge)

ब. ज्ञान का रूप (Form of Knowledge)

ज्ञान की विषय-वस्तु को हम सिर्फ अनुभव के द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं व ज्ञान के रूप की यथार्थता हम बुद्धि के द्वारा ही परख सकते हैं।

3. मूल्य मीमांसा **(Axiology)**:- मूल्य मीमांसा जिसे अंग्रेजी में Axiology कहते हैं, दो शब्दों का मिश्रण है:-

Axiology / एक्सिऑस (Axios) (मूल्य Value) + लॉजी (Logy) (विज्ञान Science)

मूल्य मीमांसा के अंतर्गत जीवन के बौद्धिक, नैतिक, सौन्दर्यपरक व आध्यात्मिक मूल्यों की चर्चा की जाती है। इसमें इस प्रश्न के प्रत्युत्तर की खोज की जाती है कि इस संसार में अच्छा क्या है।

मूल्य विषयगत होते हैं। इनकी व्याख्या नहीं की जा सकती है वरन् इनकी अनुभूति की जा सकती है। मूल्य दो प्रकार के होते हैं:- 1. आंतरिक मूल्य (Intrinsic Value) 2. बाह्य मूल्य (Extrinsic Value)। यही मूल्य हमारी विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का निर्धारण व मूल्यांकन करते हैं।

मूल्य शास्त्र को मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किया जाता है:-

1. तर्क शास्त्र

2. नीति शास्त्र

3. सौन्दर्य शास्त्र

1. तर्क शास्त्र - इसके अंतर्गत दर्शन का युक्तिपूर्ण एवं तर्कपूर्ण विवेचन किया जाता है। तर्क शास्त्र के अंतर्गत आगमन-निगमन विधियां अध्ययन के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। इसके अंतर्गत चिंतन, कल्पना, तर्क की पद्धति इत्यादि के बारे में विचार किया जाता है। दर्शन की अध्ययन पद्धति का तर्कशास्त्र एक महत्वपूर्ण अंग है।

2. नीति शास्त्र - इसके अंतर्गत मानव के आचरण की विवेचना की जाती है। साथ ही उन लक्षणों को भी विचारोपरांत निश्चित किया जाता है जो मनुष्य के कर्म-अकर्म, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य और भद्रता-अभद्रता के अनुसार आचरण को आधार प्रदान करते हैं कि मनुष्य का आचरण क्या हो? और उसे कैसा आचरण करना चाहिए?

3. सौन्दर्य शास्त्र - इसके अंतर्गत सौन्दर्य, सौन्दर्य अनुभूति, सौन्दर्य के लक्षण एवं मापदण्ड क्या हैं इत्यादि प्रश्नों से संबंधित समस्याओं का गहन विवेचन किया जाता है।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 ऋग्वेद के दशम् मण्डल के कौन से सूक्त में हिरण्यगर्भ की स्तुति की गई है ?

प्र. 2 गीता का मुख्य संदेश क्या है ?

प्र. 3 गीता में किन तीन मार्गो की महिमा बताई गई है ?

प्र. 4 ''मृत्यु के बाद कुछ नहीं बचता, केवल प्रत्यक्ष ही प्रमाण है।'' यह कथन किसका है ?

प्र. 5 जैन दर्शन किन चार तत्वों के मिश्रण से भौतिक जगत को मानते हैं ?

भाग-तीन (PART- III)

1.5 दर्शन के कार्य (FUNCTIONS OF PHILOSOPHY)

दर्शन न के कार्यो पर दृष्टिपात करने पर हमें निम्नलिखित कार्य महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं:-

1. दर्शन व्यक्ति की जिज्ञासा की तृप्ति करके ज्ञान प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है।

2. यह ध्यान को केन्द्रित करने में व्यक्ति की सहायता करता है। सांसारिक इच्छाएं एवं इन्द्रियजन्य कामनाएं संयम प्राणायाम, धारणा द्वारा चित्तवष्त्तियों का निरोध करना संभव है और इस कार्य में दर्शन सहायता करता है।

3. यह शब्दों और अर्थो का विष्लेशण करके कार्य की सही दिशा निष्चित करता है।

4. यह वास्तविक सत्य की खोज करने का प्रयत्न करता है। विभिन्न विज्ञानों द्वारा प्राप्त सत्यों में अन्तर्विरोधों को यह दूर करता है।

5. यह मानव-जीवन के आदि-अंत पर विचार करके जीवन को सोद्देश्य बनाता है।

6. जीव, जगत्, सत्, चित्, आनन्द, आत्मन्, परमात्मन्, मनस् आदि से संम्बद्ध प्रश्नो का हल ढूंढने का यह प्रयत्न करता है।

7. जीवन की विभिन्नताओं और विसंगतियों को सामंजस्य में लाने का यह प्रयास करता है।

8. यह तथ्यों का मात्र संग्रह न करके उनमें व्याप्त संबंधों को देखता है और प्रत्येक अनुभवगम्य वस्तु की आत्मा को देखने का प्रयास करता है।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 ''पदार्थो के यथार्थ स्वरूप् का ज्ञान ही दर्शन है।'' यह परिभाषा किसकी है ?

प्र. 2 ''ज्ञान का विज्ञान ही दर्शन हैं।'' यह परिभाषा किसकी है ?

प्र. 3 ''यथार्थता के स्वरूप का तार्किक विवेचन ही दर्शन है।'' यह परिभाषा किसकी है ?

प्र. 4 मूल्य शास्त्र को मुख्यतः कितने भागों में विभाजित किया जाता है ? उनके नाम लिखिए।

प्र. 5 सूत्र काल को दूसरे किस नाम से जाना जाता है ?

1.6 सारांश (SUMMARY)

दर्शन जीवन के प्रति दृष्टिकोण है। दर्शन का अर्थ है 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाय। भारतीय ऋषियों ने जीवन, जगत्, सत्य एवं मूल्य को देखने का प्रयास किया है। उन्होंने चिन्तन, मनन एवं निदिध्यासन द्वारा कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। इन निष्कर्षो को भिन्न-भिन्न दृष्टाओं ने भिन्न-भिन्न रीति से बताया है। अत्यन्त प्राचीन काल में वेदों के रूप में दार्शनिक विचारधारा का प्रारम्भ हुआ।

ऐतिहासिक दृष्टि से वैदिक युग भारतीय दर्शन का प्राचीनतम युग है। उस काल में प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता एवं अल्प जनसंख्या के कारण भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का कार्य सरल था। अतः तपोवनों में महान् आध्यात्मिक संस्कृति का उदय हो सका। ऋग्वेद हमें यह संदेश देता है कि भौतिक वातावरण से दूर रहकर और अन्तर्मुखी प्रकृति अपनाने से ही परम शान्ति मिल सकती है। अथर्ववेद लौकिक सामग्री से भरा हुआ है और सामवेद में संगीत प्रमुख तत्व है। यजुर्वेद में कर्मकाण्ड की प्रधानता है। वैदिक साहित्य मूलरूपेण ऋग्वेद का विकसित रूप है और परवर्ती संहिताओं, ब्राह्मणों,

आरण्यकों एवं उपनिषदों का काल उत्तर वैदिक काल के रूप में जाना जाता है। समग्र वैदिक वांड.मय परस्पर सम्बद्ध होते हुए भी वर्ण्यवस्तु में भिन्न होता गया है। पूर्व वैदिक काल की अपेक्षा उत्तर वैदिक काल में ब्रह्म की खोज एवं आत्म तत्व का अन्वेषण प्रमुख लक्ष्य था।

उपनिषदों के पश्चात् ब्राह्मण साहित्य का एक प्रमुख भाग सूत्र रूप में मिलता है। इसीलिए इस काल को सूत्रकाल कहा जा सकता है।

सूत्रकाल को शास्त्रीय युग भी कहा जा सकता है, क्योंकि इस काल में विभिन्न शास्त्रीय साहित्यों का निर्माण हुआ और उनके दर्शनों का उदय हुआ, जिसमें षड्दर्शनों की परम्परा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। षड्दर्शनों में सांख्य योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा है।

सांख्य दर्शन जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, योग उसी का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत करता है। अतः सांख्य योग दर्शन साथ-साथ चलते हैं। सांख्य का अर्थ है सम्यक् ख्याति का यथार्थ ज्ञान। कपिल की यह धारणा है कि प्रकृति और पुरूष दो स्वाधीन सत्ताएं हैं, जिनमें संयोग की क्षमता है और इसी संयोग से प्रकृति के गुणों का सांमजस्य टूटता है और सृष्टि का निर्माण होता है।

जैमिनि द्वारा प्रस्तुत पूर्व मीमांसा दर्शन पूर्णरूपेण वेदाश्रित है। यह धर्म एवं नीति-परायण अधिक है। ईश्वर को स्वीकार करते हुए भी पूर्व मीमांसक बहुदेववादी हैं। स्वर्ग, नरक, कर्म, नियम, पुनर्जन्म, आत्म की नित्यता, अनेक देवों की सत्ता में इनका विश्वास है। उत्तर मीमांसा को वेदान्त भी कहते हैं और यह वेदों के अंतिम भाग उपनिषदों पर आधारित हैं। इसमें बहुदेववाद का विरोध है। वेदान्त अनुयायियों की एक लम्बी श्रृंखला है जिसमें शंकर, रामानुज, मध्य, निम्बार्क, वल्लभ आदि प्रमुख हैं। वादरायण द्वारा प्रस्तुत ब्रह्मसूत्र पर ही मूल रूप से वेदान्त आधारित है। 'सर्व खलु इदं ब्रह्म' समग्र वेदान्त दर्शन का निचोड़ है। सृष्टि के मूल में एक अखण्ड, अनन्त, अनादि चेतन शक्ति है और समस्त सृष्टि उसी का आभास (शंकर) या परिणाम (रामानुज) हैं वेदान्त दर्शन पूर्णतः अध्यात्मवादी है।

1.7 शब्दावली (Glossary)

1. बुद्धिवाद **(Relationalism)**. ज्ञान-प्राप्ति का एकमात्र साधन बुद्धि है। यथार्थ ज्ञान सार्वभौमिक व अनिवार्य होता है और इसकी खोज बुद्धि द्वारा ही संभव है।

2. अनुभववाद **(Empiricism)**. ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन अनुभव है। जन्म के समय बालक का मस्तिष्क कोरे कागज के समान होता है। इसमें बुद्धि का कोई स्थान नहीं है।

3. आलोचनावाद **(Critical Theory)**. प्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट ने इसका प्रतिपादन किया। हम न तो बुद्धि की सहायता से ज्ञान की व्याख्या कर सकते हैं और न ही अनुभव की सहायता से। हमें इन दोनों के सहयोग की आवश्यकता है।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)

भाग-एक (PART- I)

उ. 1 भारतीय दर्शन का स्रोत वेद है।

उ. 2 चार्वाक, बौद्ध तथा जैन दर्शन वेदों को नहीं मानते।

उ. 3 षड्दर्शन।

.उ. 4 नास्तिक से हमारा अभिप्राय जो परलोक में विश्वास नहीं करता।

उ. 5 सनत्सुजात के अनुसार।

भाग-दो (PART-II)

उ. 1 दशम मण्डल के 121वें सूक्त में।

उ. 2 निष्काम कर्म है।

उ. 3 गीता में ज्ञान, भक्ति और कर्म तीन मार्ग की महिमा बताई गई है।

उ. 4 यह कथन चार्वाक दर्शन का है।

उ. 5 वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी-चार तत्व, जैन दर्शन।

भाग-तीन (PART-III)

उ. 1 प्लेटो की।

उ. 2 फिस्टो की।

उ. 3 डॉ. राधाकृष्णन की।

उ. 4 मूल्य शास्त्र को तीन भागों में- 1. तर्क शास्त्र, 2. नीति शास्त्र एवं 3. सौन्दर्य शास्त्र

उ. 5 सूत्रकाल को दूसरे शास्त्रीय नाम से भी जाना जाता है।

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज.*शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल.(2008).*उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*.नई दिल्ली:रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). भारतीय शिक्षा शास्त्र. आगरा:रतन प्रकाशन मंदिर.

1.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री (USEFUL BOOKS)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) स. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

डिस्ट्रीब्यूटर्स।

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षा के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996).*भारतीय शिक्षा शास्त्र*.आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

प्र. 1. दर्शन का अर्थ बताईये तथा दर्शन की प्रकृति की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

प्र. 2. दर्शन की परिभाषाएं लिखिए तथा दर्शन की उपयोगिता लिखिए।

प्र. 3. दर्शन की आवश्यकता तथा क्षेत्र का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्र. 4. दर्शन क्या है ? इसके क्या उद्देश्य होने चाहिए ?

प्र. 5. भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषताएं लिखिए।

प्र. 6. शिक्षा दर्शन का क्षेत्र बताते हुए दर्शन की आवश्यकता की विवेचना कीजिए।

प्र. 7. मैसलो के सिद्धान्त की पदक्रमानुसार व्याख्या कीजिए।

प्र. 8. सीखना से आप क्या समझते हैं? सीखने के लिए किन परिस्थितियों का होना आावश्यक होता है?

इकाई – 02 शिक्षा और दर्शन में संबंध, शिक्षा दर्शन का अर्थ, सरोकार व क्षेत्र (THE RELATIONSHIP BETWEEN PHILOSOPHY AND EDUCATION, MEANING OF EDUCATION PHILOSOPHY, CONCERNS AND SCOPE)

2.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

2.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

भाग-एक (PART- I)

2.3 शिक्षा और दर्शन के मध्य संबंध (RELATIONSHIP BETWEEN PHILOSOPHY AND EDUCATION)

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

भाग-दो (PART- II)

2.4 शिक्षा दर्शन का अर्थ (MEANING OF EDUCATION PHILOSOPHY)

2.4.1 शिक्षा दर्शन की परिभाषाएं (DEFFINITIONS OF EDUCATION PHILOSOPHY)

अपनी उन्नति जानिए (Check your progress)

भाग-तीन (PART- III)

2.5 शिक्षा दर्शन का सरोकार व क्षेत्र (CONCERNS AND SCOPE OF EDUCATION PHILOSOPHY) अपनी उन्नति जानिए (Check your progress)

2.6 सारांश (Summary)

2.7 शब्दावली (Glossary)

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री (USEFUL BOOKS)

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

2.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

शिक्षा और दर्शन में घनिष्ठ संबंध है, क्योंकि शिक्षा के निश्चित उद्देश्य होते हैं और उद्देश्य दर्शन की सहायता से विकसित किये जाते हैं। अतः शिक्षा और दर्शन का आपसी संबंध उद्देश्यों के संदर्भ में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। लेकिन शिक्षा और दर्शन की प्रक्रिया में अंतर है। दर्शन का कार्य निहित सत्य पर प्रकाश डालता है। इस निहित सत्य को जान लेने पर व्यक्ति समस्या को हल कर लेता है। लेकिन शिक्षा ही व्यक्ति को वह क्षमता प्रदान करती है जिसके द्वारा वह समस्या में निहित सत्य का ज्ञान प्राप्त करता है। दूसरे शब्दों में, बिना सम्यक् शिक्षा के व्यक्ति दर्शन को नहीं समझ पाता। उदाहरण के लिए हम किसी अनपढ़ आदमी को लें। अनपढ़ आदमी का एक जीवन दर्शन हो सकता है, लेकिन उस दर्शन का आधार क्या है, उद्देश्य क्या है, इन सब बातों को वह अनपढ़ मनुष्य समझ तथा समझा नहीं पाता। इस प्रकार हम देखते हैं कि दर्शन में विचारों की प्रधानता है और शिक्षा में कार्य-प्रणाली की। यदि दर्शन साध्य है तो शिक्षा साधन।

दर्शन में ऐसी समस्याओं पर प्रकाश डाला जाता है, जो जीवन का आधार हैं। उदाहरण के लिए, प्रश्न किया जा सकता है कि व्यक्ति क्या है? वह पश्चिमी विचारधारा के अनुसार मर्कट का विकसित स्वरूप है अथवा भारतीय दर्शन के अनुसार दैविक है। प्रत्येक समाज का अपना दर्शन होता है, क्योंकि कोई दो समाज एक से नहीं हैं और इस प्रकार सामाजिक जीवन की भिन्नता के कारण अनेक प्रकार के दर्शन भी पाये जाते हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया, भारतीय विचारधारा सामान्य रूप से व्यक्ति में ईश्वर का अंश मानती है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य की आत्मा परमात्मा का अंश है। इस प्रकार मनुष्य दैविक है न कि जैविक।

2.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

1. शिक्षा और दर्शन के मध्य संबंधों को समझ सकेंगे।
2. शिक्षा दर्शन का अर्थ व परिभाषाओं को जान सकेंगे।
3. शिक्षा दर्शन के सरोकार व क्षेत्र को समझ सकेंगे।
4. शिक्षा दर्शन को विस्तृत रूप से समझ सकेंगे।

5. शिक्षा दर्शन के ज्ञान का अपने जीवन में उपयोग कर सकेंगे।

भाग-एक Part I

2.3 शिक्षा और दर्शन के मध्य संबंध (RELATION BETWEEN EDUCATION & PHILOSOPHY)

शिक्षा और दर्शन अन्योन्याश्रित हैं:- शिक्षा और दर्शन दोनों ही एक-दूसरे पर निर्भर हैं। दर्शन शिक्षा को प्रभावित करता है और शिक्षा दार्शनिक दृष्टिकोणों पर नियंत्रण रखती है तथा उसकी कमियों को दूर करती है। दर्शन और शिक्षा दोनों का ही जीवन से घनिष्ठ संबंध है। जीवन को उन्नता बनाने के लिए दोनों की आवश्यकता है। शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में दर्शन अपना योगदान देता है और शिक्षा दर्शन के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देती है, वरना वे कल्पना मात्र ही रह जाते हैं।

फिश्टे:- ''दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा के उद्देश्य कभी भी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो सकते हैं।''

1. शैक्षिक सिद्धान्त- दार्शनिक विचारों के व्यावहारिक प्रयोग:- प्रत्येक जीवन दर्शन का एक निश्चित विश्वास पर आधारित होता है। यदि विश्वास जीवन के लिए उपयोगी है, तो उसका शैक्षिक महत्व अवश्य होना चाहिए। अतः दर्शन को शिक्षा से अलग नहीं किया जा सकता। वस्तुतः दोनों में घनिष्ठ संबंध है।

2. दर्शन और शिक्षा-एक दूसरे के दो पहलू- हार्न के अनुसार शिक्षा के सब तथ्यों को एक साथ रखने से दो बातों का ज्ञान होता है:-

i. शिक्षा वैश्विक प्रक्रिया है।
ii. शिक्षा, सामयिक प्रक्रिया है। ये ऐसी प्रक्रियायें इसलिए हैं, क्योंकि ये व्यक्ति को अपने-जीवन काल को विश्व और समय के अनुसार पूर्ण बनाने का प्रयास करती हैं।

3. शिक्षा के उद्देश्यों पर दर्शन का प्रभाव- दार्शनिक व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य निर्धारित करते हैं और शिक्षक उस लक्ष्य तक पहुंचने की क्षमता प्रदान करते हैं। प्राचीन शिक्षा, मध्यकालीन शिक्षा और शिक्षक उस लक्ष्य तक पहुंचने की क्षमता प्रदान करते हैं। प्राचीन शिक्षा, मध्यकालीन शिक्षा और वर्तमान शिक्षा के स्वरूप पर दृष्टिपात करने से यह बात और अधिक साफ हो जाती है।

4. शिक्षा के पाठ्यक्रम पर दर्शन का प्रभाव- पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों को स्थान दिया जाता है जो उन विचारधाराओं के पोषक हों, उन आदर्शों की प्राप्ति, तथा उन आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हों। उदाहरण के लिए भारत में प्राचीन काल में आदर्शवाद और धार्मिक विचारधारा को प्रधानता प्राप्त थी और उसके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नति करना था, इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम में वेद, उपनिषद आदि धर्मग्रन्थों को प्रमुख स्थान दिया गया था।

5. शिक्षण विधियों पर दर्शन का प्रभाव- शिक्षण विधियों ही वह माध्यम हैं जिनके द्वारा छात्र और विषय सामग्री के बीच संबंध स्थापित होता है। इसके परिणाम स्वरूप ही छात्रों में उचित दृष्टिकोण का निर्माण होता है और शिक्षा प्रभावकारी होती है। दर्शन, तर्क एवं आलोचना करके शिक्षा विधियों के गुणों, दोषों की खोजबीन करता है और अपना सुझाव प्रस्तुत करता है एवं जीवन लक्ष्य के अनुकूल नूतन शिक्षण विधियों का प्रतिपादन करता है। जैसे-किंडरगार्टेन डाल्टन, मान्टेसरी, प्रोजेक्ट विधियों आदि।

6. शिक्षक पर दर्शन का प्रभाव- शिक्षा के अनेक अंगों पर उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों, अनुशासन आदि द्वारा दर्शन का बहुत प्रभाव पड़ता है और इनका संचालक शिक्षक ही होता है। अतः उनमें निहित दार्शनिक विचारधाराओं का प्रभाव शिक्षक पर भी पड़ता है। उनके अन्तर्निहित दर्शन को समझे बिना शिक्षक उनका समुचित लाभ नहीं उठा सकता और न ही शिक्षा को प्रभावशाली बना सकता है। इस प्रकार शिक्षण कार्य में दर्शन का अत्यधिक प्रभाव होता है। शिक्षण कार्य में दर्शन शिक्षक को बहुत सहयोग प्रदान करता है।

7. पाठ्यक्रम-पुस्तकों पर दर्शन का प्रभाव- पुस्तकों का चयन करते समय अथवा पाठ्य-पुस्तकों की रचना करते समय हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उनमें जीवन के आदर्शों, भावनाओं और दार्शनिक विचारधाराओं को प्रधानता दी गई हो। पाठ्य-पुस्तकों के चुनाव एवं रचनाओं में आदर्शों तथा सिद्धान्तों की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी पाठ्यक्रम के निर्धारण में। अतः पाठ्य वस्तु के चुनाव में और पाठ्य पुस्तकों की रचना में समकालीन विचारों एवं आदर्शों को आधार बनाया जाता है।

अपनी उन्नति जानिए (Check your progress)

प्र. 1 ''दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा के उद्देश्य कभी भी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो सकते।'' यह परिभाषा किसकी है।

प्र. 2 ''शिक्षा दर्शन का क्रियात्मक पहलू है। यह दार्शनिक विश्वास का सक्रिय पहलू तथा जीवन के आदर्शो को वास्तविक रूप देने का क्रियात्मक साधन है।'' यह परिभाषा किसकी है।

प्र. 3 ''जो शिक्षक दर्शन की उपेक्षा करते हैं, उन्हें अपने कार्य को प्रभावहीन बना डालने के रूप में इस उपेक्षा का दण्ड भुगतना पड़ता है।'' यह कथन किसका है -

(I) महात्मा गांधी (II) आर.आर. रस्क(III) आचार्य बिनोवा भावे(IV) जेन्टाइल

प्र. 4 ''दर्शन और शिक्षा को एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।'' किसने कहा है -

(I) डी.वी. (II) फिस्टे (III) एडम्स (IV) रॉस

भाग-दो (PART- II)

2.4 शिक्षा दर्शन का अर्थ (MEANING OF EDUCATION PHILOSOPHY)

प्राचीन काल में किसी भी प्रकार के चिन्तन को दर्शन कहा जाता था, परन्तु जैसे-जैसे ज्ञान के क्षेत्र में विकास हुआ, वैसे-वैसे हमने उसे अलग-अलग अनुशासनों (विषयों) में विभाजित करना प्रारम्भ किया। जैसे-मानव शास्त्र, धर्मशास्त्र, चिकित्सा शास्त्र आदि। ज्ञान की उस शाखा को जिसमें अंतिम सत्य (Ultimate Reality) की खोज की जाती है, उसे दर्शन शास्त्र कहा जाता है।

सर जॉन एडम्स (Sir John Adams) का मत है- ''शिक्षा, दर्शन का क्रियात्मक पहलू है। यह दार्शनिक विश्वास का सक्रिय पहलू तथा जीवन के आदर्शो को वास्तविक रूप देने का क्रियात्मक साधन है।'' सामान्यतः शिक्षा वह प्रभाव है, जो किसी प्रबल विश्वास से युक्त व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति

पर इस ध्येय से डाला जाता है कि दूसरा व्यक्ति भी उसी विश्वास को ग्रहण कर ले। एडम्स ने शिक्षा-विषयक के अनेक विश्लेषण में अधोलिखित बातें रखी हैं:-

यह प्रक्रिया केवल चेतनशील (Conscious) ही नहीं, वरन् आयोजित (Deliberate) भी है। शिक्षक या गुरू के मन में स्पष्ट रूप से यह आशय होता है कि वह शिष्य के विकास को सुधारे।

1.शिक्षा एक द्विमुखी प्रक्रिया है, जिसमें एक व्यक्तित्व दूसरे व्यक्तित्व के विकास में सुधार करने के लिए उस पर प्रभाव डालता है।

2.शिक्षा के विकास को सुधारने के दो साधन हैं:

(क) शिक्षक के व्यक्तित्व का शिष्य के व्यक्तित्व पर सीधा प्रभाव डालना

(ख) ज्ञान के विभिन्न रूपों का प्रयोग।

शिष्य के स्वभाव में सुधार किस दिशा में होना चाहिए ? सच्ची शिक्षा कौन सी है ? शिक्षक को किन मूल्यों (Values) की दिशा में प्रभाव डालना चाहिए ? आदि मूलभूत प्रश्नों का कोई सर्वमान्य उत्तर नहीं है, क्योंकि शिक्षा संबंधी प्रश्न जीवन के आदर्शो से जुड़े हुए हैं। जब तक ये आदर्श पृथक्-पृथक् हैं, तब तक शिक्षा के इन मूलभूत प्रश्नों का उत्तर भी पृथक्-पृथक् होगा। अतः हम कह सकते हैं कि शिक्षा, दर्शन पर आधारित है और दार्शनिक सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप प्रदान करती है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि जो व्यक्ति वस्तुतः दार्शनिक है, वह स्वभावतः शिक्षाशास्त्री भी बन जाता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि महान दार्शनिक महान शिक्षाशास्त्री भी हुए हैं।

डेन्डरसन के विचार में:- ‘‘शिक्षा-दर्शन, शिक्षा की समस्याओं के अध्ययन में दर्शन का प्रयोग है।’’

शिक्षा दर्शन क्या है ? शिक्षा-दर्शन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कर्निघम (Cunningham) ने लिखा है:- ‘‘ प्रथम, दर्शन ‘सभी वस्तुओं का विज्ञान है’, इस प्रकार शिक्षा-दर्शन, शिक्षा की समस्याओं को अपने सभी मुख्य पक्षों में देखता है। द्वितीय, दर्शन सभी वस्तुओं को ‘अंतिम तर्को एवं कारणों के माध्यम से’ जानने का विज्ञान है। इसलिए भी, शिक्षा-दर्शन शिक्षा के क्षेत्र में गहनतर समस्याओं का समग्र रूप में अध्ययन करता है और शिक्षा-विज्ञान के लिए उन समस्याओं को अध्ययन के लिए छोड़

देता है, जो तात्कालिक हैं तथा जिनका वैज्ञानिक विधि से सरलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है, उदाहरणार्थ-छात्र-योग्यता के मापन की समस्या।''

2.4.1 दर्शन की परिभाषाएं (DEFFINITIONS OF PHILOSOPHY)

दर्शन की निम्नलिखित परिभाषाएं हैं:-

(1) ''दर्शन अनुभव के विषय में निष्कर्षो का समूह न होकर मूल रूप से अनुभव के प्रति एक दृष्टिकोण या पद्धति है।'' -ब्राइटमैन

(2) ''निष्कर्षो की विशिष्ट अन्तर्वस्तु नहीं बल्कि उन पर पहुंचने की प्रेरणा और विधि ही उन्हें दार्शनिक कहलाने योग्य बनाती है।'' -बेरेट

(3) ''यदि मुझे अपने उत्तर को एक पंक्ति तक सीमित करना है तो मुझे यह कहना चाहिए कि दर्शन समीक्षा का एक सामान्य सिद्धान्त है।'' -डुकासे

(4) ''विज्ञान के समान दर्शन में भी व्यवस्थित चिन्तन के परिणामस्वरूप पहुंचे हुए सिद्धान्त और अर्न्तदृष्टि होते हैं।'' -लेटन

(5) ''दर्शन प्रत्येक वस्तु से संबंधित है, वह एक सार्वभौम विज्ञान है।'' -हरबर्ट स्पेन्सर

(6) ''दर्शन का कार्य ज्ञान के विभिन्न साधनों द्वारा उपलब्ध सामग्री को, कुछ भी न छोड़ते हुए व्यवस्थित करना और उनको एक सत्य, एक सर्वोच्च, सार्वभौम सद्वस्तु से समुचित संबंध में रखना है।'' -श्री अरविन्द

(7) ''हमारा विषय 'विज्ञानों का संकलन' जैसे कि ज्ञान का सिद्धान्त, तर्कशास्त्र, सृष्टिशास्त्र, नीतिशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र, तथा साथ ही एक समुचित सर्वेक्षण भी है।'' -सैलर्स

दर्शन की उपरोक्त परिभाषाओं से ज्ञात होता है हि जहां कुछ दार्शनिकों ने समीक्षात्मक दर्शन को ही दर्शन माना है, वहीं दूसरी ओर कुछ दार्शनिक केवल समन्वयात्मक दर्शन को ही एकमात्र दर्शन मानते हैं। वास्तव में ये दोनों ही मत एकांगी हैं। क्योंकि दर्शन का कार्य समीक्षात्मक के साथ-साथ समन्वयात्मक भी है।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 ''दर्शन शिक्षा का सामान्य सिद्धान्त ही है।' यह कथन किसका है ?

A . रसेल B. डी.वी. C. रूसो D. सुकरात

प्र. 2 सर जॉन एडम्स कहा करते थे:-

(A) शिक्षा दर्शन का गत्यात्मक पक्ष है

(B) शिक्षा और दर्शन का कोई संबंध नहीं है

प्र. 3 ''शिक्षा एक द्विध्रुवीय प्रक्रिया के रूप में है।'' यह कथन है -

(A) रायवर्न (B) एडिसन (C) जॉन एडम (D) काण्ट

प्र. 4 ''शिक्षा एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया के रूप में है।'' यह कथन है -

(A) रायवर्न (B) एडिसन (C) जॉन एडम (D) काण्ट

प्र. 5 भारत का संविधान कब लागू हुआ -

भाग-तीन (PART- III)

2.5 शिक्षा दर्शन के सरोकार व क्षेत्र (CONCERNS AND SCOPE OF EDUCATION PHILOSOPHY)

शिक्षा-दर्शन शिक्षा के सभी पहलुओं पर विचार करता है। शिक्षा का क्या उद्देश्य हो ? उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए क्या पाठ्यक्रम बनाया जाए तथा उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पढ़ाने की विधि क्या हो ? इन सब बातों पर शिक्षा-दर्शन में विचार होता है। प्रारम्भ में ज्ञान को विभिन्न शाखाओं में नहीं बांटा गया था। उस समय ज्ञान की सभी शाखाएं दर्शन ही थीं। थेल्स पश्चिमी-दर्शन का जन्मदाता था, किन्तु उसने वैज्ञानिक पद्धति अपनाई थी। अरस्तू उच्चकोटि का दार्शनिक था, किन्तु वह विज्ञान का जन्मदाता माना जाता है। गणित ने सबसे पहले अपने को दर्शन से पृथक कर लिया। गणित में

निश्चितता रहती है। इसके प्रश्न भी निश्चित होते हैं और उत्तर भी। जो भी विद्या विज्ञान बनने की ओर उन्मुख होती है, सर्वप्रथम वह गणित का आश्रय लेती है और गणित किसका आश्रय लेता है ? गणित दर्शन की मनन पद्धति पर आधारित है। दार्शनिक और गणित की पद्धति एक-सी होती है। अन्तर इतना ही है कि गणित कुछ स्वयं सिद्धियां मानकर चलता है, जिनको प्रमाणित करने की उसे आवश्यकता नहीं होती, दर्शन ऐसी किसी स्वयं-सिद्धि को स्वीकार नहीं करता। गणित में हम यह मान लेते हैं कि कुछ धारणाएं स्वयं-सिद्ध हैं।

शिक्षण-विधियों के क्षेत्र में विज्ञान तो योगदान देता ही है, शिक्षा-दर्शन का योगदान भी कम नहीं है। शिक्षण-विधि गणित का कोई सूत्र नहीं है, जिससे कह दिया जाए इस पग के बाद यह पग उठाया जायेगा। यह तो शैक्षिक उद्देश्य, पाठ्यक्रम एवं शिक्षार्थी से प्रभावित होगा, इसीलिए शिक्षण-विधि को भी शिक्षा-दर्शन का क्षेत्र बनाया जाता है।

पाठ्यक्रम का निर्धारण भी शिक्षा-दर्शन का क्षेत्र है। दार्शनिक किसी भी ज्ञान को अनादर की दृष्टि से नहीं देखता। प्लेटो ने तो दार्शनिक की परिभाषा ही यह बताई है कि जो व्यक्ति प्रत्येक प्रकार के ज्ञान में रूचि रखता है और सदा सीखने के लिए उत्सुक रहता है, किन्तु कभी भी सीखने से संतुष्ट नहीं होता, उसे दार्शनिक कहा जा सकता है। हम आजकल बौद्धिक विकास पर अधिक बल दे रहे हैं।

आज शिक्षा-दर्शन का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। इसके अंतर्गत शिक्षा संबंधी समस्त तत्वों एवं समस्याओं जैसे-शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां, शिक्षक, शिक्षालय संगठन और अनुशासन आदि का अध्ययन करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जो शिक्षा से अनछुआ रह गया है।

1. शिक्षा की प्रक्रिया में सर्वप्रथम जो बात हमारे सामने आती है, वह है शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करना। अतः शिक्षा-दर्शन शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करते समय अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2. केवल पाठ्यक्रम को बना लेने मात्र से ही कार्य का अन्त नहीं हो जाता। पाठ्यक्रम का कार्यान्वयन करना और उसे सफल बनाना भी आवश्यक होता है। पाठ्यक्रम को संचालित करने वाला शिक्षक

होता है और इसकी सफलता शिक्षण-विधियों पर ध्यान देकर उपयोगी शिक्षण-विधि के प्रयोग में सहायता देता है।

3. शिक्षा-दर्शन सामाजिक प्रगति और सांस्कृतिक उपलब्धियों आदि के क्षेत्र में भी गहन अध्ययन और विचार करता है और उसी के अनुरूप शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियां आदि निर्धारित करता है।

4. शिक्षा-दर्शन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षेत्र विद्यालय संगठन एवं अनुशासन आदि की समस्या का अध्ययन करना है। विद्यालय में अनुशासन का स्वरूप क्या हो अथवा अनुशासनहीनता को किस प्रकार दूर किया जाए आदि विषयों का अध्ययन शिक्षा-दर्शन में ही किया जाता है।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 रिक्त स्थान की पूर्ति करें:-

शिक्षा दर्शन, दर्शन शास्त्र और .....दोनों विषयों का संयुक्त रूप है।

प्र. 2 रिक्त स्थान की पूर्ति करें:-

शिक्षा दर्शन प्रयोगों पर आधारित नहीं अपितु.....शास्त्र है।

प्र. 3 रिक्त स्थान की पूर्ति करें:-

शिक्षा दर्शन को अन्तर अनुशासन की क्षेणी में रखा गया है, क्योंकि यह शिक्षा की समस्याओं का हल.....से ढूंढता है।

प्र. 4 ''यदि मुझे अपने उत्तर को एक पंक्ति तक सीमित करना है तो मुझे यह कहना चाहिए कि दर्शन समीक्षा का एक सामान्य सिद्धान्त है।'' यह कथन किसका है ?

प्र. 5 जो भी विधा विज्ञान बनने की ओर उन्मुख होती है, सर्वप्रथम वह गणित का आश्रय लेती है। गणित किस पर आधारित है ?

2.6 सारांश (SUMMARY)

शिक्षा-दर्शन के क्षेत्र और मुख्य समस्याओं के उपर्युक्त विवेचन से शिक्षा दर्शन का महत्व स्पष्ट होता है। शिक्षा-दर्शन हमें शिक्षा के लक्ष्यों से परिचित कराता है और इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के साधनों की भी समीक्षा करता है। आधुनिक काल में जबकि यह भली प्रकार अनुभव किया जा सकता है कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए उसके बालक-बालिकाओं का समुचित विकास आवश्यक है, शिक्षा-दर्शन की अत्यधिक आवश्यकता है, अन्यथा शिक्षा की प्रक्रिया में मूलभूत गलतियां होने की संभावना है। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि प्रत्येक शिक्षक स्वभावतया ही अपना विशिष्ट शिक्षा-दर्शन रखता है और इस सामान्य ज्ञान के अतिरिक्त उसे किसी शिक्षा-दर्शन की आवश्यकता नहीं है।

शैक्षिक समस्याओं को दार्शनिक विधि से सुलझाने का प्रयास शिक्षा-दर्शन है। दार्शनिक विधि शिक्षा-दर्शन की ही विशेषता है। यह विधि दो प्रकार से कार्य करती है, एक तो समन्वयात्मक और दूसरी समीक्षात्मक। समन्वयात्मक रूप में यह विभिन्न विज्ञानों के द्वारा मिले तथ्यों और दार्शनिक मूल्यों के समन्वय से एक पूर्ण रूप उपस्थित करती है, जिसके प्रकाश में किसी भी समस्या के विभिन्न पहलुओं को आसानी से समझा जा सकता है। समीक्षात्मक रूप में शिक्षा-दर्शन शिक्षा की प्रक्रिया में प्रयोग किये जाने वाले विभिन्न प्रत्ययों, प्रणालियों इत्यादि की समीक्षा करता है। अस्तु, जो दर्शन स्वभावतया प्रत्येक शिक्षक के मस्तिष्क में विकसित हो जाता है, वह सच्चा शिक्षा-दर्शन नहीं है, क्योंकि वह समन्वयात्मक और समीक्षात्मक नहीं होता। शिक्षा-दर्शन में दार्शनिक विवेचन के लिए विषय-सामग्री, सामान्य ज्ञान, विज्ञान, कला, धर्म और आध्यात्मिक अनुभवों से मिलती है। शिक्षा-दार्शनिक इन सबको एक समन्वित पूर्ण के रूप में देखता है। ठोस शिक्षा-दर्शन मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय तथ्यों पर आधारित होता है। उसमें पाठ्यक्रम को निश्चित करने से पूर्व यह पता लगाया जाता है कि किसी बालक को क्या सिखाया जा सकता है।

2.7 शब्दावली (Glossary)

दार्शनिक विधि .दार्शनिक विधि शिक्षा-दर्शन की एक विशेषता है। यह विधि दो प्रकार से कार्य करती है, एक तो समन्वयात्मक और दूसरी समीक्षात्मक।

ठोस शिक्षा-दर्शन. ठोस शिक्षा-दर्शन मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय तथ्यों पर आधारित होता है। उसमें पाठ्यक्रम को निश्चित करने से पूर्व यह पता लगाया जाता है कि किसी बालक को क्या सिखाया जा सकता है।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)

भाग-एक (PART- I)

उ. 1 यह परिभाषा फिक्टे की है।

उ. 2 यह परिभाषा जॉन एडम्स की है।

उ. 3 आर.आर. रस्क

उ. 4 रॉस

भाग-दो (PART-II)

उ. 1 (B) डी.वी.

उ. 2 (A) शिक्षा-दर्शन का गत्यात्मक पक्ष है

उ. 3 (C) जॉन एडम

उ. 4 (A) रायवर्न

उ. 5 भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ था

भाग-तीन (PART-III)

उ. 1 शिक्षाशास्त्र

उ. 2 तर्क प्रधान

उ. 3 दार्शनिक दृष्टिकोण

उ. 4 डुकासे

उ. 5 गणित दर्शन की मनन पद्धति पर आधारित है

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008).*उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006).*शैक्षिक समाजशास्त्र*.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008).*शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*.नई दिल्ली:रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996).*भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा:रतन प्रकाशन मंदिर.

सिंह, (डॉ.)वी. प्र. (1999) *प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक*. दिल्ली: नवप्रभात प्रिंटिंग प्रेस।

2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री (USEFUL BOOKS)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008).*उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006).*शैक्षिक समाजशास्त्र*.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008).*शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*.नई दिल्ली:रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996).*भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा:रतन प्रकाशन मंदिर.

सिंह, (डॉ.)वी. प्र. (1999).*प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक*. दिल्ली: नवप्रभात प्रिंटिंग प्रेस।

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

प्र. 1. दर्शन की प्रमुख तीन शाखाओं का वर्णन कीजिए।

प्र. 2. वर्तमान समय में भारतीय समाज में शिक्षा-दर्शन की भूमिका पर संक्षित टिप्पणी लिखिए।

प्र. 3. शिक्षा-दर्शन के स्वरूप की समीक्षा कीजिए।

प्र. 4. शिक्षा-दर्शन का क्षेत्र क्या है ? स्पष्ट वर्णन कीजिए।

प्र. 5. शिक्षा-दर्शन की आवश्यकता की विवेचना कीजिए।

प्र. 6. शिक्षा-दर्शन क्या है ? उसका क्षेत्र और प्रकृति बतलाईये|

इकाई–3: शिक्षक के लिए शिक्षा-दर्शन की उपादेयता एवं आधुनिक शिक्षा प्रणाली में इसका महत्व (Relevance of Educational Philosophy for Teacher and Its Significance for the System of Modern Education)

3.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)
3.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)
भाग-एक (PART- I)
3.3 शिक्षक के लिए शिक्षा दर्शन की उपादेयता
अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)
भाग-दो (PART- II)
3.4 आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षा दर्शन का महत्व
अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)
भाग-तीन (PART-III)
3.5 आधुनिक काल में शिक्षा दर्शन की आवश्यकता
अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)
3.6 सारांश (SUMMARY)
3.7 शब्दावली VOCABULARY)
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)
3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCES)
3.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री (REFERENCES)
3.11 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

3.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

प्रत्येक शिक्षक की यह कामना होती है कि वह अपने कार्य में सफलता प्राप्त करे। कार्य में सफलता, कार्य के स्वरूप पर निर्भर रहती है। शिक्षक अपने कार्य में तभी सफल होता है, जब वह शिक्षण के स्वरूप को ठीक से पहचाने। शिक्षण का स्वरूप शिक्षा-दर्शन निश्चित करता है। अतः शिक्षक के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह शिक्षा-दर्शन से परिचय प्राप्त करे।

साधारणतः प्रत्येक शिक्षक किसी एक विषय का अध्यापन करता है और विशिष्ट विषय का व्याख्याता, प्रवक्ता, प्राध्यापक आदि कहने में वह गर्व का अनुभव करता है। गर्व की अपेक्षा यह चिन्ता का विषय है कि अध्यापक को जीवन का शिक्षक होना चाहिए, न कि किसी विषय का। किसी विषय का पण्डित यदि जीवन की समस्याओं से अपरिचित है तो वह विषय का सच्चा ज्ञाता भी नहीं कहा जा सकता, शिक्षक तो दूर की बात है। शिक्षक का शिक्षकत्व इसी में है कि वह बालक के सम्पूर्ण जीवन के रहस्यों से परिचित हों और जीवन के सन्दर्भ में अपने विषय को सम्पूर्ण ज्ञान की एक शाखा के रूप में ही पढाये। तभी वह सफल शिक्षक हो सकता है, अन्यथा नहीं। जीवन के रहस्यों से एवं अनुभव की एकता से परिचय शिक्षा-दर्शन के अध्ययन से प्राप्त होता है। इसीलिए तो हरबर्ट स्पेन्सर ने कहा है कि ''सच्चा दार्शनिक ही सच्ची शिक्षा को व्यावहारिक बना सकता है।''

शिक्षक का कार्य केवल सैद्धान्तिक समस्याओं एवं उनके समाधान से परिचित होना ही नहीं है, वरन् व्यावहारिक समस्याओं का जानना भी आवश्यक है। शिक्षा-दर्शन व्यावहारिक समस्याओं एवं उनके समाधानों से परिचित कराता है।कुछ शास्त्र केवल तथ्यों का विश्लेषण करते हैं और वे वर्णनात्मक होते हैं। समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि ऐसे ही विज्ञान हैं। किन्तु शिक्षाशास्त्र केवल वर्णनात्मक नहीं है। इसमें मूल्य या महत्व का प्रश्न बड़ा ही महत्वपूर्ण है। अतः यह एक आदर्शात्मक शास्त्र है। शिक्षा-दर्शन में शिक्षा के इसी रूप की व्याख्या की जाती है। अतः शिक्षक को इसका ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

सैद्धान्तिक विषयों में सिद्धान्तों की व्याख्या की जाती है। व्यावहारिक विषयों में आदर्श की स्थापना एवं उस आदर्श को प्राप्त करने के लिए साधनों एवं प्रयत्नों का भी वर्णन होता है। 'शिक्षा' पूर्णतः सैद्धान्तिक विषय नहीं है। शिक्षा का इतिहास शतशः सैद्धान्तिक है किन्तु शिक्षा-दर्शन ऐसा नहीं है। इसीलिए एडलर महोदय शिक्षा की समस्याओं को व्यावहारिक समस्या बताते हैं। शिक्षक को सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार की समस्याओं एवं उनके समाधान से परिचित होना चाहिए।शिक्षा सिद्धान्तों का जनक शिक्षा-दर्शन ही है। शिक्षक के लिए शिक्षा-सिद्धान्तों का जानना आवश्यक है। अतः उसे शिक्षा-दर्शन की जानकारी अवश्य होनी चाहिए।

एक अच्छा शिक्षक अपनी शिक्षण विधि में परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन करता रहता है। कोई भी पद्धति प्रत्येक परिस्थिति के उपयुक्त नहीं हो सकती। यदि ऐसा होता है तो विभिन्न शिक्षण-

विधियों का निर्माण न होता। शिक्षण विधियों में परिवर्तन लाने में दर्शन बड़ा सहायक होता है। उद्देश्य के अनुसार विधि में परिवर्तन हो जाता है। शिक्षा-दर्शन से यदि शिक्षक परिचित है तो वह शिक्षण-पद्धति में अभीष्ट परिवर्तन करने में समर्थ हो जाता है। किसी एक शिक्षण-पद्धति का अन्ध भक्त बनना ठीक नहीं है।

बहुत से शिक्षक शिक्षा-समस्याओं से अनभिज्ञ रहते हैं। वे सोचते हैं- ''जैसा चल रहा है, वैसा ही ठीक है।'' परन्तु शिक्षा में समय के प्रवाह के साथ-साथ कुछ दोष आ जाते हैं। प्रत्येक प्रक्रिया में गुण-दोष रहते ही हैं। शिक्षा पर देश और काल का प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी शिक्षा में परम्परागत प्रणाली ही बहुत दिनों तक चलती रहती है। इससे अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। शिक्षक को वर्तमान शिक्षा के गुण-दोषों से परिचित होना भी आवश्यक है। गुण-दोष का विवेचन करना शिक्षा-दर्शन का कार्य है, अतः शिक्षक के लिए इसका ज्ञान आवश्यक है।

3.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1-शिक्षा और दर्शन का अर्थ समझ सकेंगे।

2-शिक्षक के लिए शिक्षा दर्शन की उपादेयता को समझ सकेंगे।

3-आधुनिक शिक्षा प्राणली में शिक्षा का महत्व समझ सकेंगे।

4-आधुनिक काल में शिक्षा दर्शन की आवश्यकता को समझ सकेंगे।

5-शिक्षा और दर्शन के बारे में विस्तार से समझ सकेंगे।

भाग-एक (PART-I)

3.3 शिक्षक के लिए शिक्षा दर्शन की उपादेयता

जॉनडीवी के अनुसार, ''शिक्षा-दर्शन बने बनाये विचारों को व्यवहार की एक व्यवस्था पर लागू करना नहीं है, जिसमें पूर्णतया भिन्नउद्गम और प्रयोजन होते हैं। वह तो समकालीन सामाजिक

जीवन की समस्याओं के विषय में सही मानसिक और नैतिक अभिवृत्तियों के निर्माण की समस्याओं से सम्बन्धित है। दर्शन की सबसे अधिक व्यापक परिभाषा जो दी जा सकती है, यह है"कि वह अधिकतम सामान्य रूप में शिक्षा का सिद्धान्त है।'' इस प्रकार शिक्षक शिक्षा-दर्शन से शिक्षण सिद्धान्त प्राप्त करता है। शिक्षण प्रणालियों का भी शिक्षक के शिक्षा-दर्शन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

स्पेंन्सर के अनुसार ''केवल एक सच्चा दार्शनिक ही शिक्षा को व्यावहारिक रूप दे सकता है। वह विद्यार्थियों से कैसे व्यवहार करता है और उन्हें अपनी बात कैसे समझाता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि शिक्षार्थी उसके लिए क्या है।''

विभिन्न दार्शनिक व्यवस्थाओं में मानव प्रकृति की भिन्न-भिन्न व्यवस्था की गई है। अस्तु, शिक्षक का शिक्षा-दर्शन शिक्षण प्रणाली के प्रति उसकी अभिवृत्ति निर्धारित करता है। यह ठीक है कि दर्शन शिक्षक के विषय के ज्ञान की जगह नहीं ले सकता, किन्तु फिर भी वह शिक्षक के लिए नितान्त आवश्यक है। बर्ट्रेंड रसल के शब्दों में-''दर्शन शास्त्र का अध्ययन प्रश्नों के सुनिश्चित उत्तर प्राप्त करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि स्वयं प्रश्नों के लिए किया जाना चाहिए। क्योंकि ये प्रश्न संभावनाओं की हमारी अवधारणा को व्यापक बनाते हैं। हमारी बौद्धिक कल्पना को समृद्ध करते हैं और हठवादी सुनिश्चितता को कम करते हैं, जो कि कल्पना के विरूद्ध मस्तिष्क को बन्द कर देती है, बल्कि सर्वोपरि क्योंकि विश्व की महानता जिस पर दर्शन विचार करता है मस्तिष्क को भी महान और विश्व से एकीकरण के योग्य बना देती है जो कि उसके सर्वोच्च शुभ का निर्माण करता है।''

शिक्षक के लिए शिक्षा दर्शन का सबसे बड़ा योगदान शिक्षा के लक्ष्यों और आदर्शो को लेकर है। शिक्षा दर्शन के बिना अध्यापन के कार्य में शिक्षक का कोई प्रयोजन नहीं होगा। चाहे हम वर्तमान शिक्षा में विज्ञान के योगदान की कितनी भी प्रशंसा क्यों न करें, यह कार्य विज्ञान के द्वारा संभव नहीं है। वास्तव में वर्तमान विज्ञान केवल साधन देता है जबकि साध्य दर्शन शास्त्र से मिलते हैं।

शिक्षा दर्शन शिक्षा के पाठ्यक्रम को निर्धारित करने में शिक्षक की सहायता करता है। दार्शनिक की व्याख्या करते हुए प्लेटो ने कहा था- ''वह जो कि प्रत्येक प्रकार के ज्ञान में रूचि रखता है और जो कि सीखने के लिए जिज्ञासु हैं और कभी भी संतुष्ट नहीं है, उसे ही दार्शनिक कहना न्यायोचित है।'' दर्शनशास्त्र शिक्षा की परिस्थिति को संपूर्ण रूप में देखता है। उसका दृष्टिकोण सर्वांग है। वह संपूर्ण रूप में देखता है।'' अस्तु, वह सब प्रकार की एकांगिता का सही उपचार है। वर्तमान

शिक्षा प्रणाली में एकांगिता की समस्या की आलोचना करते हुए ए.एम. श्लेजिंगर ने ठीक कहा है- ''हमें अनिवार्य रूप से एक समृद्ध भावात्मक जीवन की आवश्यकता है, जिसमें व्यक्ति और समुदाय में वास्तविक संबंधों की प्रतिछाया हो।''

वर्तमान काल में विश्व में पूर्व और पश्चिम के दो भिन्न दृष्टिकोण दिखलाई पड़ते हैं। ये दो भिन्न सांस्कृतिक दृष्टिकोण, दो भिन्न जीवन दर्शन उपस्थित करते हैं। मानव जाति ने विभिन्न देशकाल में मानव के लिए उपयुक्त जीवन की खोज में अनेक प्रयोग किये हैं। आधुनिक मनुष्य को चाहिए कि वह विभिन्न संस्कृतियों की बुद्धिमताओं का समन्वय करे। आदर्श शिक्षक को पूर्व और पश्चिम, दर्शन और विज्ञान का समन्वय करना चाहिए। प्रौद्योगिकी से भाराक्रान्त जटिल आधुनिक सभ्यता से मानव के बर्बरता की ओर लौट जाने का खतरा उत्पन्न हो गया है। आज मनुष्य को आणविक युग और उद्योगवाद से उत्पन्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। सब कहीं अव्यवस्था और हताशा दिखलाई पड़ती है। सब ओर से समस्याओं के सुलझाव उपस्थित किये जाते हैं। विज्ञान और अन्तर्राष्ट्रीय कानून असहाय दिखलाई पड़ते हैं। ऐसे समय में विचारशील व्यक्ति, धर्म, नैतिकता और आध्यात्मिकता की ओर देख रहे हैं। जैसा कि हाइनीमैन ने कहा है- '' हमारे सामने जो विकल्प है, वह इस प्रकार है: या तो मस्तिष्क की शक्ति समाप्त हो, मानव का पतन हो, उसकी बौद्धिक और आध्यात्मिक क्रिया में गिरावट आये जो कि अधिकाधिक यंत्रवत हो रही हैं और अंत में अत्यधिक केन्द्रीयकृत नियंत्रण वाले नये तानाशाही प्रशासन की दासता की स्थापना हो, अथवा एक आध्यात्मिक क्रान्ति हो, मानव इस तथ्य की ओर जागे कि अंत में वह असीम आध्यात्मिक शक्तियों वाला एक आध्यात्मिक प्राणी है और अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने और तथाकथित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति को एक जनतंत्रीय व्यवस्था में नैतिक और आध्यात्मिक लक्ष्य के अधीन करने का कठोर निर्णय करे।''

अस्तु, शिक्षक के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता उसका शिक्षा दर्शन है। सांस्कृतिक अथवा किसी भी अन्य प्रकार की एकांगिता का एकमात्र उपचार दार्शनिक दृष्टिकोण है। यह दार्शनिक दृष्टिकोण उसके सर्वांग रूप में श्री अरविन्द के इन शब्दों में उपस्थित किया गया है-''हृदय और मस्तिष्क सार्वभौम देवता हैं और न तो हृदय के बिना मस्तिष्क और न मस्तिष्क के बिना हृदय मानव आदर्श हो सकता है।''

दर्शन शास्त्र की उपादयेता न केवल आदर्शों, लक्ष्यों और पाठ्यक्रम को निर्धारित करने में है बल्कि शिक्षा के व्यवहार के नित्य प्रति के कार्यक्रम में हैं। एडलर के शब्दों में- ''इस प्रकार हम यह देखना शुरू करते हैं कि न केवल शिक्षा दर्शन का विशिष्ट क्षेत्र, प्रश्नों का उत्तर देते हुए विज्ञान द्वारा अनुत्तरीय है बल्कि शिक्षा दर्शन की आवश्यकता है क्योंकि उसके बिना मौलिक व्यवहारिक सिद्धान्तों का निश्चित निर्णय संभव नहीं है जो कि शैक्षिक व्यवहार के नित्य प्रति की नीतियों के अंतर्गत होता है।''

के.एल. श्रीमाली के शब्दों में-''इस प्रकार न केवल शिक्षक को एक शिक्षा-दर्शन रखना चाहिए, उसे अपने विद्यार्थियों में एक जीवन दर्शन विकसित करने के लिए भी तैयार होना चाहिए।' शिक्षक शिक्षार्थियों को जानकारी और ज्ञान प्रदान करता है, किन्तु उसकी व्यक्तिगत छाप उसके जीवन दर्शन के रूप में ही पड़ती है। महान शिक्षकों ने संसार को जानकारी नहीं बल्कि जीवन दर्शन प्रदान किये हैं।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1''वास्तविक शिक्षा का संचालन वास्तविक दार्शनिक ही कर सकता है'' यह कथन किसका है ?

प्र. 2''दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा के उद्देश्य कभी भी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो सकते हैं।'' यह कथन किसका है?

प्र. 3''हृदय और मस्तिष्क सार्वभौम देवता हैं, न तो हृदय के बिना मस्तिष्क और न मस्तिष्क के बिना हृदय मानव आदर्श हो सकता है।'' यह कथन किसका है?

प्र. 4''जिस प्रकार शिक्षा दर्शन पर आधारित है, उसी प्रकार दर्शन शिक्षा पर आधारित है।'' यह कथन किसका है?

प्र. 5 ''किसी भी मनुष्य के बारे में सबसे अधिक व्यावहारिक और सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात विश्व का उसका दृष्टिकोण, उसका दर्शन है।'' यह कथन किसका है?

3.2 आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षा दर्शन का महत्व

'शिक्षा-दर्शन' में 'शिक्षा' और 'दर्शन' दो शब्द मिले हुए हैं, ये दोनों शब्द मानव के जीवन से घनिष्ठ संबंध रखते हैं। ये दोनों अंग एक सिक्के के दो पहलू माने जाते हैं। दर्शन जीवन का विचारात्मक (सैद्धान्तिक) पक्ष है, जबकि शिक्षा क्रियात्मक (व्यावहारिक) पक्ष है। दर्शन जीवन के आदर्शो और मूल्यों को निर्धारित करता है और शिक्षा इन आदर्शो तथा मूल्यों को क्रियात्मक स्वरूप प्रदान करती है। 'शिक्षा-दर्शन' शिक्षा की समस्याओं का हल निकालता है। 'शिक्षा-दर्शन' को दर्शन की एक शाखा के रूप में भी जाना जाता है। यह शिक्षा संबंधी विषयों का दार्शनिक दृष्टिकोण से अध्ययन करती है। कुछ विद्वानों के अनुसार 'शिक्षा-दर्शन' शिक्षा का ही एक अंग है। आधुनिक विचारक 'शिक्षा-दर्शन' को किसी विषय की शाखा के रूप में स्वीकार न करके उसे एक स्वतंत्र विषय मानते हैं। 'शिक्षा-दर्शन' का महत्व शिक्षक के लिए निम्नलिखित कारणों से है:-

1. शिक्षा संबंधी समस्याओं का हल- 'शिक्षा-दर्शन' शिक्षा के क्षेत्र की गहनतर समस्याओं का समग्र रूप से अध्ययन करता है और शिक्षा विज्ञान के लिए उन समस्याओं को अध्ययन हेतु छोड़ देता है, जो तात्कालिक एवं जिनका वैज्ञानिक विधि से सरलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है।

2. शिक्षा का पथ-प्रदर्शन- 'शिक्षा-दर्शन' का कार्य शुद्ध दर्शन द्वारा प्रतिपादित सत्यों एवं सिद्धान्तों को शैक्षिक प्रक्रिया के संचालन में प्रयुक्त करना है। यह दार्शनिक सत्य एवं शिष्य के जीवन एवं आचरण के संबंध में चेतना क्षेत्र में लाने का प्रयास करता है और उनके संबंध को तर्कपूर्ण एवं नियोजित तथा अधिक तात्कालिक एवं प्रभावशाली बनाता है और शिक्षक को बहुमुखी संबधों की स्थापना में पथ-प्रदर्शन करने का प्रयास करता है।

3. शिक्षा प्रक्रिया की स्पष्टता- 'शिक्षा-दर्शन' शिक्षा प्रक्रिया को स्पष्टता प्रदान करता है। लगभग सभी शिक्षाशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि शिक्षा के दार्शनिक आधारों को समझे बिना शिक्षक अंधकारमय मार्ग पर चलता है। दर्शन द्वारा ही शिक्षा प्रक्रिया में सत्यता, स्पष्टता और उपयोगिता का समावेश होता है।

4. शैक्षणिक प्रश्न जीवन दर्शन से संबंधित- वास्तव में प्रत्येक शैक्षणिक प्रश्न जीवन दर्शन से संबंधित है। इन प्रश्नों को समझने के लिए व्यक्तियों के जीवन-दर्शन को समझना आवश्यक है। इस कार्य से दर्शन हमारी सहायता करता है। दर्शन का मुख्य विषय ही जीवन है। दार्शनिक शैक्षिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं। इसीलिए उच्चकोटि के दार्शनिक उच्चकोटि शिक्षाशास्त्री हुए हैं। दार्शनिकों के दृष्टिकोण उनकी शैक्षिक विचारधाराओं से प्रकट होते हैं। वे शैक्षणिक प्रश्नों को अपनी दार्शनिक विचारधाराओं द्वारा हल करते हैं। स्पेन्सर के अनुसार-''वास्तविक शिक्षा का संचालन वास्तविक दार्शनिक ही कर सकता है।''

5. शिक्षा में प्रयोग के लिए अवसर- 'शिक्षा दर्शन' के अध्ययन की आवश्यकता इसलिए भी है कि शिक्षा-शास्त्र का अध्ययन तभी पूरा होता है जब 'शिक्षा-दर्शन' का अध्ययन किया जाता है। 'शिक्षा-दर्शन' के अध्ययन से शिक्षक शिक्षा की प्रक्रिया को पूर्णतया सफल और उपयोगी बना सकता है। 'शिक्षा-दर्शन' शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग के लिए अवसर प्रदान करता है। दर्शन शिक्षा के प्रयोगों के लिए पथ-प्रदर्शक का कार्य भी करता है, जैसा कि बटलर ने कहा है- ''दैनिक शिक्षा के प्रयोगों के लिए पथ-प्रदर्शक हैं। शिक्षा अनुसंधान के क्षेत्र के रूप में दार्शनिक निर्णय हेतु निश्चित सामग्री का आधार रूप में प्रदान करती है।''

6. शिक्षा और दर्शन अन्योन्याश्रित हैं- दर्शन और शिक्षा दोनों ही एक-दूसरे पर निर्भर हैं। दर्शन शिक्षा को प्रभावितकरता है और शिक्षा दार्शनिक दृष्टिकोणों पर नियंत्रण रखती है तथा उसकी त्रुटियों को दूर करती है। दर्शन और शिक्षा दोनों का ही जीवन से घनिष्ठ संबंध है। जीवन को उन्नतिशील बनाने के लिए दोनों की आवश्यकता हैं शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में दर्शन अपना योगदान देता है और 'शिक्षा-दर्शन' के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देती है अन्यथा वे कल्पना मात्र ही रह जाते। फिफ्टे के अनुसार-

''दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा के उद्देश्य कभी भी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो सकते हैं।''

7. शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण- शिक्षक को शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करने में दर्शन सहायता करता है। दर्शन जीवन के उद्देश्यों को निर्धारित करता है और जीवन के उद्देश्यों के अनुरूप ही शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण होता है। अतः जिस प्रकार का हमारे जीवन का दृष्टिकोण होगा उसी प्रकार के शैक्षिक उद्देश्य निर्धारित किये जायेंगे। उदाहरण के लिए प्राचीन भारत में जीवन का लक्ष्य ईश्वर को प्राप्त

करना था। इसीलिए शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिक विकास करना था। इसी तथ्य की पुष्टि जॉन ड्यूबी ने की है- ''दर्शन शिक्षा के साध्यों को निर्धारित करने से संबंधित है।''

8. शिक्षा प्रक्रिया का ज्ञान - शिक्षा के सिद्धान्त, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, छात्र, प्रकाशक आदि के आधार पर बनाये जाते हैं। इन सिद्धान्तों की सम्यक जानकारी होना अध्यापक के लिए आवश्यक है। अन्यथा वह सफल नहीं हो सकता।

9. शिक्षण विधियों का निर्माण- शैक्षिक उद्देश्यों और पाठ्यक्रम का निर्माण हो जाने के बाद शिक्षण-विधियों के निर्माण की आवश्यकता होती है। शिक्षण-विधियों का निर्माण करने में 'शिक्षा-दर्शन'' का अध्ययन आवश्यक होता है। शिक्षण विधियों का निर्माण दार्शनिक विचारों के अनुसार ही किया जाता है।

10. अनुशासन स्थापित करना- शिक्षक को कक्षा में अनुशासन स्थापित करने में 'शिक्षा-दर्शन' का ज्ञान सहायता करता है। दार्शनिक विचारधाराओं के अनुरूप ही अनुशासन के रूप पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए आदर्शवादी-दमनात्मक तथा प्रभावात्मक, प्रकृतिवादी-मुक्त्यात्मक और प्रयोजनवादी-सामाजिक अनुशासन के समर्थक हैं।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 चार प्रमुख दार्शनिकों के नाम लिखो।

प्र. 2 ''दर्शन और शिक्षा एक सिक्के के दो पक्ष हैं।'' यह कथन सत्य है अथवा असत्य ?

प्र. 3 ''दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा की प्रक्रिया सही मार्ग पर नहीं बढ़ सकती है।'' यह सत्य है अथवा असत्य ?

प्र. 4 '''दार्शनिक विचारों का व्यावहारिक रूप शिक्षा है।'' यह सत्य है अथवा असत्य ?

प्र. 5 ''शिक्षा और दर्शन दोनों में विरोधाभास है।'' यह सत्य है अथवा असत्य ?

3.3 आधुनिक काल में शिक्षा दर्शन की आवश्यकता

सभी आधुनिक शिक्षा-शास्त्री यह मानते हैं कि शिक्षक को न केवल विभिन्न प्रकार के विषयों का ज्ञान होना चाहिए बल्कि उसका एक अपना शिक्षा दर्शन भी होना चाहिए, जिसके बिना वह उन समस्याओं को कुशलतापूर्वक नहीं सुलझा सकता जो नित्य प्रति के शिक्षक जीवन में उसके सामने आती हैं। जर्मन दार्शनिक फिख्टे ने ठीक ही कहा था कि शिक्षा की कला दर्शन के बिना कभी भी पूर्णतया स्पष्ट नहीं हो सकती। अस्तु, इन दोनों में अन्तर्क्रिया आवश्यक है और इनमें से कोई भी दूसरे के बिना अपूर्ण और अपर्याप्त है। कुछ लोग विज्ञान की उपलब्धियों से इस कदर प्रभावित हैं कि वे शिक्षा के क्षेत्र में विज्ञान को दर्शन से ऊंची जगह देते हैं। मनोवैज्ञानिकों की राय है कि शिक्षा को मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए। दूसरी ओर सामाजिक तथ्यों के महत्व से परिचित समाजशास्त्री यह सुझाव देते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में उनका प्रभाव अधिक होना चाहिए। किन्तु ये लोग यह भूल जाते हैं कि शिक्षा के लक्ष्यों, पाठ्यक्रम, शिक्षण प्रणाली, अनुशासन इत्यादि से संबंधित अनेक प्रश्न ऐसे हैं, जिनका उत्तर मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्री नहीं दे सकते।

शिक्षा दर्शन की आवश्यकता के कुछ बिन्दु निम्नलिखित हैं:-

1. शिक्षा के उद्देश्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए- शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है। किन्तु इसके लिए व्यक्ति को जीवन-लक्ष्य का ज्ञान होना बेहद आवश्यक है। व्यक्ति के जीवन के अंतिम लक्ष्यों का निर्धारण दर्शन के द्वारा होता है और व्यक्ति के इन लक्ष्यों की प्राप्ति शिक्षा के द्वारा ही संभव है।

2. शैक्षिक समस्याओं के समाधान की दृष्टि से आवश्यकता- शैक्षिक समस्याओं का समाधान व्यक्ति शिक्षा-दर्शन की सहायता से ही कर सकता है। जो शिक्षक एक अच्छा दार्शनिक होगा वही सच्चे अर्थो में एक शिक्षक हो सकता है। एक अच्छे शिक्षक में अच्छे विचार होंगे और उसका आदर्श अपनाने योग्य होगा।

3. अनुशासन के दृष्टिकोण से आवश्यकता- अनुशासन की समस्याओं का समाधान तब तक संभव नहीं होता जब तक कि बालक तथा समाज के जीवन दर्शन का ज्ञान न हो। यही कारण है कि

विभिन्न कालों में जिस दार्शनिक विचारधारा को मान्यता प्रदान की गई उसी के अनुसार अनुशासन का स्वरूप भी रहा।

4. शिक्षा के पाठ्यक्रम का ज्ञान प्राप्त करने के लिए

5. शिक्षण विधियों का ज्ञान प्राप्ति हेतु

6. अध्यापक को आदर्शवान बनने में सहायता करने के लिए

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 कहानियां प्रायः असत्य पर आधारित होती हैं:-

(A) महात्मा गांधी (B) प्लेटो (C) मेडम माण्टेसरी (D) आचार्य विनोबा भावे

प्र. 2 किसने कहानियों को उपयोगी बताया है:-

(A) महात्मा गांधी(B) प्लेटो (C) मेडम माण्टेसरी (D) आचार्य विनोबा भावे

प्र. 3 ''दर्शन शिक्षा का सामान्य सिद्धान्त है।'' यह कथन है:-

(A) एडम्स(B) जॉन डी.वी. (C) फिक्टे (D) डेकार्ट

प्र. 4 ''प्रत्येक मनुष्य जन्मजात दार्शनिक होता है।'' यह कथन है:-

(A) एडम्स (B) जॉन डी.वी. (C) फिक्टे (D) शोपेनहार

प्र. 5 ''दर्शन शिक्षा के साध्यों को निर्धारित करने से संबंधित है।'' यह कथन है:-

(A) जॉन ड्यूवी (B) एडम्स (C) डेकार्ट (D) शोपेनहार

3.6 सारांश (SUMMARY)

शिक्षक को शिक्षा के क्षेत्र में कुछ ऐसी समस्याओं को सुलझाना पड़ता है, जिनका सुलझाव विश्व की उसकी अवधारणा के आधार पर ही हो सकता है। प्रत्येक व्यवहार और प्रक्रिया का अपना

सिद्धान्त होता है। अस्तु, शैक्षिक व्यवहार के भी अपने सिद्धान्त होने चाहिए। समस्त शैक्षिक व्यवहार के अंतर्गत यह सिद्धान्त शिक्षा-दर्शन से प्राप्त होता है। शिक्षा-दर्शन के माध्यम से ही हम पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों, शिक्षण प्रणालियों, मूल्यांकन की पद्धतियों और कसौटियों तथा अनुशासन बनाये रखने की प्रविधियों को निश्चित करते हैं। अस्तु, शिक्षक को शिक्षा दर्शन का अध्ययन करना चाहिए।

जी.डी.एच.कोल ने कहा है, ''जो शिक्षा व्यवस्था स्थापित करने का हम प्रयास करते हैं, उसे उस समाज के प्रकार पर आधारित होना चाहिए, जिसमें कि हम रहना चाहते हैं, नर-नारियों के उन गुणों पर जिनको कि हम सर्वोच्च मूल्य देते हैं, और हमारे उन अनुमानों पर आधारित होना चाहिए जो कि हम उच्चतर बौद्धिक और सौन्दर्यात्मक सामर्थ्यो से विभूषित लोगों तथा साधारण लोगों के विषय में बनाते हैं।'' शिक्षा दर्शन सैद्धान्तिक है किन्तु प्रत्येक सिद्धान्त का लक्ष्य व्यवहार का निर्देशन करना होता है। जान डीवी के शब्दों में, ''जब कभी दर्शन शास्त्र को गंभीरतापूर्वक लिया गया है, सदैव यह मान लिया गया है कि वह एक ऐसा ज्ञान प्राप्त करना है जो कि जीवनव के आचारण को प्रभावित करेगा।''

शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक मौलिक प्रश्न उसके लक्ष्य को लेकर उठाये गये हैं। इन प्रश्नों से मानव की प्रकृति और उसके संशोधन और परिवर्तन की संभावनाएं लगी हुई हैं। मानव की प्रकृति का विश्व में उसके स्थान से घनिष्ठ संबंध है। अस्तु, शिक्षा के लक्ष्य का प्रश्न विश्व की प्रकृति के लक्ष्य से जुड़ा हुआ है। यह किसी भी समाज में प्रचलित संस्कृति की अवधारणा से भी घनिष्ठ रूप से संबंधित है। इससे दर्शन और शिक्षा में घनिष्ठ संबंध स्थापित होता है। ब्लेंशार्ड और अन्य के शब्दों में, ''विश्वविद्यालयों में दर्शन शास्त्र का कार्य वास्तव में वही है जो किसी समाज के सांस्कृतिक विकास में उसका कार्य है। अर्थात् समुदाय की बौद्धिक अन्तरात्मा बनाना।'' शिक्षा पशु और मानव प्रकृति में अंतर पर आधारित है। साधारण रूप से उसका लक्ष्य मानव के विशिष्ट लक्षणों का विकास करना है।

राबर्ट रस्क के शब्दों में, ''वे शक्तियां और उनके उत्पाद जो कि मनुष्य की विशेषताएं हैं और उसे अन्य पशुओं से भिन्न ठहराती हैं वे विधायक विज्ञानों के क्षेत्र से परे हैं जैसे कि जैवकीय और मनोवैज्ञानिक के क्षेत्र से परे हैं। वे ऐसी समस्याएं उठाती हैं जिनको सुलझाने की आशा केवल दर्शन शास्त्र से की जा सकती है और इसलिए शिक्षा शास्त्र का एक मात्र आधार दार्शनिक होता है।''

शिक्षा का लक्ष्य ज्ञान प्रदान करना है। ज्ञान के लिए विश्वगत दृष्टिकोण और विभिन्न प्रकार की सूचनाओं तथा अनुभवों का समन्वय आवश्यक है। यह एक दार्शनिक क्रिया है, जिसके बिना कोई भी शिक्षा संभव नहीं है। अस्तु, शिक्षा के दार्शनिक आधार की आवश्यकता दर्शनशास्त्र की एक शाखा ज्ञानशास्त्र में आरम्भ होती है।

3.7 शब्दावली (Glossary)

व्यावहारिक विषय:-व्यावहारिक विषयों में आदर्श की स्थापना एवं उस आदर्श को प्राप्त करने के लिए साधनों एवं प्रयत्नों का भी वर्णन होता है।

शिक्षा-दर्शन :-'शिक्षा दर्शन' को दर्शन की एक शाखा के रूप में भी जाना जाता है। यह शिक्षा संबंधी विषयों का दार्शनिक दृष्टिकोण से अध्ययन करती है। कुछ विद्वानों के अनुसार 'शिक्षा-दर्शन' शिक्षा का ही एक अंग है।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)

भाग-एक (PART- I)

उ. 1 हरबर्ट स्पेन्सर

उ. 2 फिक्टे

उ. 3 श्री अरविन्द

उ. 4 जी.ई. पार्टिज

उ. 5 चेस्टर्टन

भाग-दो (PART-II)

उ. 1 सुकरात, प्लेटो, अरस्तू, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द

उ. 2 रॉस

उ. 3 सत्य

उ. 4 सत्य

उ. 5 असत्य

भाग-तीन (PART-III)

उ. 1 प्लेटो

उ. 2 मेडम माण्टेसरी

उ. 3 जॉन डी.बी.

उ. 4 शोपेनहार

उ. 5 शोपेनहार

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008).उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006).शैक्षिक समाजशास्त्र.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय.नई दिल्ली:रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). भारतीय शिक्षा शास्त्र. आगरा:रतन प्रकाशन मंदिर.

3.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री (USEFUL BOOKS)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). शैक्षिक समाजशास्त्र.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय.नई दिल्ली:रजत प्रकाशन.

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Types Questions)

प्र. 1. शिक्षा-दर्शन क्या है ? उसका क्षेत्र और प्रकृति बतलाईये।

प्र. 2. शिक्षा-दर्शन का शिक्षक के लिए क्या उपयोग है ? विस्तृत व्याख्या कीजिए।

प्र. 3. शिक्षा-दर्शन के महत्व का विवेचन कीजिए।

प्र. 4. कहा जाता है कि ''शिक्षा-दर्शन का गत्यात्मक अंश'' अथवा ''दार्शनिक सिद्धान्तों का क्रियात्मक रूप है।'' इस कथन की अच्छी तरह व्याख्या कीजिए।

प्र. 5. एक अध्यापक को शिक्षा दर्शन को पढ़ना चाहिए। क्या शिक्षा मनोविज्ञान पर्याप्त नहीं है ?

इकाई 4: वेदान्ता (Vedanta)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)
4.2 उद्देश्य (Objectives)
4.3 वेदान्त का शाब्दिक अर्थ (Literal Meaning of Vedant)
4.4 वेदान्त दर्शन (Vedant Philosophy)
4.4.1 वेदान्त दर्शन की तत्व मीमांसा
4.4.2 वेदान्त दर्शन की ज्ञान मीमांसा
4.4.3 वेदान्त दर्शन की मूल्य मीमांसा
4.5 वेदान्त दर्शन की परिभाषा (Definition of Vedant Philosophy)
4.6 वेदान्त दर्शन के मूल सिधांत(Fundamental Principles of Vedant Darshan)
4.7 अपनी उन्नति जानिए (Check Your Progress)
4.8 वेदान्त दर्शन और शिक्षा (Vedant Philosophy and Education)
4.9 अपनी उन्नति जानिए (Check Your Progress)
4.10 सारांश (Summary)
4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)
4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)
4.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Question)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय शिक्षा दर्शन की दो मुख्य विचार धाराएँ है- **प्रथम** वह जो ईश्वर या भगवान् को मानते हैं, जिन्हें आस्तिक या ईश्वरवादी कहते हैं। **द्वितीय** वह जो भगवान् या ईश्वर को नही मानते हैं, जिन्हें नास्तिक कहते हैं। ईश्वरवादी दर्शन अधिक प्राचीन माना जाता हैं। जिसका उदगम वेदों से माना जाता हैं। वेदों पर आधारित दो प्रमुख विचारधाराएँ हैं, जो निम्नवत हैं-

1. कर्मकाण्ड या मीमांसा दर्शन,
2. ज्ञानकाण्ड या वेदान्त दर्शन,

वेदान्त दर्शन भारतीय दर्शनों की एक महत्वपूर्ण शाखा है, जो कि वेदों के गहन अध्ययन और उनके तात्पर्य की समझ को विशेष रूप से ध्यान में रखती है। भारतीय समाज में साधारणतः वेद शब्द को ही वेदान्त समझा जाता है। वेदान्त दर्शन, भारतीय दर्शनों की एक प्रमुख परंपरा है, जो वेदों के शिखर और अंतिम भाग के रूप में प्रस्थापित होती है। इस वेदान्त दर्शन का विवरण भगवान व्यास द्वारा रचित "ब्रह्मसूत्र" नामक ग्रन्थ में मिलता है, जिसे वेदान्त सूत्र के नाम से भी जाना जाता है। वेदान्त दर्शन में मुख्य रूप से वेदों के आधार पर ब्रह्म की प्रमाणिकता और उसके स्वरूप की व्याख्या निर्भर है। इसके अनुसार ब्रह्म, अनन्त, निरंतर, निर्गुण, अविनाशी, अद्वितीय, अज्ञेय, अचिन्त्य और अव्यय है। इसके अतिरिक्त, वेदान्त दर्शन अनादि, अनन्त, और अविनाशी आत्मा या आत्मबोध के सिद्धांत पर भी आधारित है। वेदान्त का मूल सिद्धांत है अद्वैत वेदान्त, जिसके अनुसार ब्रह्म (अनंत, अज्ञेय, अनिर्वचनीय आदि) ही एकमात्र सत्य है, और सभी अन्य वस्तुओं की वास्तविकता ब्रह्म के अभिन्न अंश के रूप में है। इस दर्शन में, ब्रह्म को ज्ञान, आनंद, और सत्य का सर्वोत्तम स्रोत माना जाता है।

व्यावहारिक रूप में वेदान्त ही हिन्दुओं का धर्मग्रन्थ हैं। जितने भी आस्तिक दर्शन हैं, सभी इसी वेदान्त को अपना मुख्य आधार मानते हैं। यद्यपि भारत के सभी आस्तिक दर्शन वेदों पर आधारित हैं, परन्तु सभी के नाम अलग-अलग हैं। व्यास के अंतिम दर्शन पूर्ब प्रतिपादित दर्शनों की अपेक्षा वैदिक विचारों पर अधिक आधारित हैं। इसमें सांख्य और न्याय जैसे प्राचीन दर्शनों का वेदान्त दर्शन के साथ में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया हैं। इसीलिए इसे वेदान्त कहा गया हैं। वर्तमान समय में भारतीय समाज में न्याय-सूत्र ही वेदान्त दर्शन का आधार माना जाता हैं।

4.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात छात्र-

1. छात्र वेदान्त दर्शन के शाब्दिक अर्थ को समझ सकेंगे।
2. छात्र वेदान्त दर्शन को परिभाषित कर पाएंगे।
3. छात्र वेदान्त दर्शन के मूल सिधान्तों को समझ पाएंगे।
4. छात्र वेदान्त दर्शन की अवधारणा को समझ सकेंगें।
5. छात्र वेदान्त दर्शन और शिक्षा के महत्व को समझ सकेंगे।
6. छात्र वेदान्त दर्शन और शिक्षा के पाठ्यक्रम की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

4.3 वेदान्त का शाब्दिक अर्थ (Literal Meaning of Vedant)

वेदान्त का सामान्य अर्थ हैं वेद का अंत, अर्थात वेदों का अंतिम भाग, अथवा वेदों का सार। प्रारंभ में वेदान्त शब्द से उपनिषदों का बोध होता था। वस्तुतः वेदान्त वह सिधान्त हैं, जो वेदों के अंतिम भाग के रूप में प्रतिपादित किये गए हैं। वेदों के अंतिम भाग के रूप में उपनिषदों का वर्णन किया गया हैं। यही कारण हैं कि उपनिषदों के आधार पर जिन विचारों का विकास हुआ हैं उसके लिए वेदान्त शब्द व्यवहृत होने लगा। अतः उपनिषदों को ही अलग- अलग शब्दों में वेद का अंत कहा जा सकता हैं –

1. उपनिषद वैदिक युग का अंतिम साहित्य हैं। वैदिक काल में तीन प्रकार के साहित्य देखने में आते हैं। जो निम्नवत हैं-

    - **वैदिक मंत्र-** वैदिक मंत्र जो भिन्न-भिन्न संहिताओं जैसे ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद में संकलित हैं।
    - **ब्राह्मण-** ब्राह्मण भाग में वैदिक कर्मकांड की विवेचना की गयी हैं।
    - **उपनिषद-** उपनिषद भाग में दार्शनिक तथ्यों का व्यवस्थित वर्णन किया गया हैं।

वैदिक काल में इन तीनों प्रकार के साहित्य को समन्वित रूप में **'श्रुति' या 'वेद'** कहा जाता हैं।

2. वैदिक साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से उपनिषदों का क्रम सबसे अंत में आता हैं। वैदिक साहित्य का अध्ययन करते समय आरम्भ में संहिता भाग का अध्ययन करना पढता हैं। संहिता भाग के अध्ययन के पश्चात् गृहस्थ आश्रम में गृहस्थ कर्मकांड करने हेतु 'ब्राह्मण' ग्रंथों का अध्ययन करना पढ़ता हैं। तथा तत्पश्चात वानप्रस्थ या सन्यास लेने पर 'आरण्यक' का अध्ययन करना पढ़ता हैं। आरण्यक में अरण्य या वन में एकांत जीवन व्यतीत करते हुए लोग जगत का रहस्य और जीवन का उद्देश्य समझने की चेष्ठा करते थे। उपनिषदों का विकास भी इसी आरण्यक साहित्य से जुडा हुआ हैं।

3. उपनिषद को इस अर्थ में भी वेद का अंत माना जाता हैं क्योंकि उपनिषद वैदिक कालीन विचारधारा से ओत-प्रोत हैं। वेदों में निहित समस्त विचारों का चिंतन उपनिषदों में मिलता हैं। उपनिषद में भी कहा गया हैं कि- वेद, वेदांग आदि सभी शास्त्रों का अध्ययन कर लेने पर भी व्यक्ति का ज्ञान तब तक परीपक्व नही होता है जब तक व्यक्ति उपनिषदों की शिक्षा प्राप्त नही करता हैं।

वेद, ब्राह्मण, अरण्यक और उपनिषद के गहन और विस्तृत दार्शनिक चिंतन का अंतिम सार ही वेदान्त दर्शन हैं। वादरायण व्यास पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इन सभी भारतीय ग्रंथों का सार तत्व को एक सूत्र में प्रस्तुत किया हैं। उनके द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम 'ब्रह्म सूत्र' है। वादरायण व्यास ने ब्रह्म सूत्र में प्रतिपादित वेदान्त दर्शन की व्याख्या की, तथा इन व्याख्याओं से वेदान्त की अनेक शाखा तथा उप-शाखाओं का विकास हुआ। इसमें अद्वैतवाद के प्रवर्तक **शंकराचार्य**, विशिष्टाद्वैत वाद के प्रवर्तक **रामानुजाचार्य**, द्वैतवाद के प्रवर्तक **माधवाचार्य** तथा द्वैता-द्वैत वाद के प्रवर्तक **निम्बिकाचार्य** मुख्य हैं।

4.4 वेदान्त दर्शन (Vedant Philosophy)

किसी भी दर्शन की विचारधारा या चिंतन स्तर को समझने के लिए उस दर्शन की तत्व मीमांसा (Metaphysics), ज्ञान मीमांसा (Epistemology) तथा मूल्य मीमांसा (Axiology) को समझना अत्यंत आवश्यक होता हैं।

1. वेदान्त दर्शन की तत्व मीमांसा-

शंकराचार्य ने इस ब्रह्माण्ड के मूल में केवल ब्रह्मा की सत्ता स्वीकार की हैं। उनकी ब्रह्मा अनादि, अनंत तथा निराकार हैं। यही ब्रह्मा इस ब्रह्माण्ड का कर्ता और उपादान कारण हैं। यही संकर का अद्वैत हैं। शंकर के अनुसार सबसे पहले ब्रह्मा अपनी इच्छा से अपने अन्दर माया शक्ति का निर्माण करती हैं, और फिर इस माया शक्ति के द्वारा ही इस वस्तु जगत का निर्माण करता हैं। जगत के कर्ता के रूप में यह साकार ब्रह्म अथवा ईश्वर के नाम से बिभूषित होता हैं।शंकर आत्मा को ब्रह्म का अंश मानते हैं। क्योंकी ब्रह्मा अपने में पूर्ण, सर्वव्यापक, सर्व शक्तिमान एवं सर्व ज्ञाता हैं। अतः शंकर की सम्मति में आत्मा भी अपने में पूर्ण, सर्वव्यापक, सर्व शक्तिमान एवं सर्व ज्ञाता हैं। जीव के विषय में शंकर का

मानना हैं कि शरीर तथा इन्द्रिय समूह के अध्यक्ष और कर्मफल का भोक्ता आत्मा ही जीव हैं। तथा यही सूक्ष्म जीव शरीर के साथ एक जन्म से दूसरे जन्म में जाता हैं। जगत को शंकर नाशवान एवं असत्य मानते हैं। उनके अनुसार इस जगत एवं उसमें मानव जीवन की केवल व्यावहारिक सत्ता ही हैं। पदार्थ की अपनी स्वतंत्र सत्ता नही हैं, पदार्थ तो विचार शक्ति के तेजी से चक्कर काटने से उत्पन्न केवल भवर जाल मात्र हैं।

2. वेदान्त दर्शन की ज्ञान मीमांसा -

शंकर ने ज्ञान को दो भागों में बांटा हैं, जो निम्नवत हैं- परा (आध्यात्मिक ज्ञान), तथा अपरा (भौतिक या लौकिक)। वेद, पुराण,आरण्यक,उपनिषद,एवं गीता के ज्ञान को परा ज्ञान कहा हैं। उनके अनुसार यही ज्ञान सच्चा हैं, तथा इस ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य मात्र मुक्ति की प्राप्ति कर सकते हैं। इस वस्तु जगत एवं मनुष्य जीवन के विभिन्न पक्ष्यों के ज्ञान को अपरा ज्ञान कहा हैं। शकराचार्य के अनुसार इस ज्ञान को केवल व्यावहारिक रूप में उपयोग में लाया जा सकता हैं। इस प्रकार के ज्ञान से व्यक्ति अपने अंतिम उद्देश्य 'मुक्ति' की प्राप्ति नही कर सकता हैं। इन दोनों प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए शंकर ने श्रवण विधि, मनन विधि तथा निधिध्यासन विधि का समर्थन किया हैं। परन्तु परा ज्ञान के लिए श्रवण विधि,मनन विधि तथा निधिध्यासन विधि के साथ-साथ साधन चतुष्ठय को अत्यंत आवश्यक माना हैं।

3. वेदान्त दर्शन की मूल्य मीमांसा –

शंकर ने मानव जीवन को दो रूपों में विभाजित किया हैं, एक परा (आध्यात्मिक जीवन) दूसरा अपरा (व्यावहारिक जीवन)। व्यावहारिक दृष्टिकोण से शंकर ने मानव को अपने अपने वर्ण-कर्म को इमानदारी तथा निष्ठां के साथ करने की सलाह दी हैं। उनका मानना था कि जो व्यक्ति जितनी ईमानदारी एवं निष्ठां के साथ काम करेगा वह व्यक्ति व्यावहारिक दृष्टि से उतना ही सफल होगा।

शंकर के अनुसार मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति प्राप्त करना हैं। वेदान्त के अनुसार मुक्ति के मुक्ति के दो रूप स्वीकार किये गये हैं, जो निम्न है- **प्रथम-** जीवन मुक्ति, **द्वितीय-** विदेह मुक्ति। उनके मतानुसार किसी भी प्रकार की मुक्ति के लिए ज्ञान मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

4.5 वेदान्त दर्शन की परिभाषा- (Definition of Vedant Darshan)

शंकराचार्य के वेदान्त दर्शन की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा तथा मूल्य मीमांसा के आधार पर वेदान्त दर्शन को निम्नवत परिभाषित कर सकते हैं-

वेदान्त दर्शन भारतीय दर्शन की वह विचारधारा हैं, जो इस ब्रह्माण्ड को ब्रह्म द्वारा तथा ब्रह्मा द्वारा निर्मित मानती हैं, और यह मानती हैं, कि केवल ब्रह्मा ही सत्य हैं, और यह वस्तु जगत असत्य हैं। यह ईश्वर को ब्रह्मा का साकार रूप और आत्मा को ब्रह्मा का अंश मानती हैं, और यह प्रतिपादन करती हैं, कि मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति हैं, जो ज्ञान योग द्वारा प्राप्त किया जा सकता हैं।

4.6 वेदान्त दर्शन के मूल सिद्धांत- (Fundamental Principles of Vedant Darshan)

वेदान्त दर्शन की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा तथा मूल्य मीमांसा के आधार पर वेदान्त दर्शन के मूल सिद्धांत निम्नवत हैं-

- **यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मा द्वारा ब्रह्म से निर्मित हैं-** शंकराचार्य के वेदान्त के अनुसार ब्रह्म ही मूल तत्व हैं, और ब्रह्मा से ब्रह्मा के द्वारा ही इस ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ हैं। और उसी के द्वारा इसमें प्रतिदिन दृश्य तथा अदृश्य बदलाव होते रहते हैं। ब्रह्मा की वह शक्ति जिसके द्वारा वह ब्रह्माण्ड का निर्माण करता हैं उसे शंकरचार्य ने माया कहा हैं।शंकर के अनुसार ब्रह्मा अनादि,अनंत, निर्गुण और निर्वयव हैं। परन्तु उसमें जब माया के द्वारा संसार के निर्माण का गुण आरोपित किया जाता हैं तो वह सगुण हो जाता हैं। उपासना की दृष्टि भी हम उसे सगुण ब्रह्मा (ईश्वर) के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं परन्तु वह निर्गुण ही।
- **ब्रह्मा सत्य हैं, जगत मिथ्या हैं-** शंकराचार्य का मानना हैं कि इस जगत का निर्माण होता हैं और उसका नाश भी होता हैं। इसमें तो प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता हैं, इसलिए यह अनित्य हैं, असत्य हैं। उनके अनुसार केवल ब्रह्मा ही नित्य है और सत्य हैं। शंकर ने इस जगत की व्यावहारिक सत्ता को स्वीकार किया हैं और इसके बिना मोक्ष्य की प्राप्ति को असंभव बताया हैं।
- **आत्म ब्रह्मा का अंश हैं -** शंकर की दृष्टि से आत्मा ब्रह्मा का अंश हैं। मूल रूप में इसमें कोई भी भेद नही हैं ब्रह्मा की माया शक्ति के कारण ही आत्मा ब्रह्मा से प्रथक प्रतीत होती हैं। माया का पर्दा हटने पर भी आत्मा और ब्रह्मा में भेद नही दिखाई देता हैं।

- **मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति पाना हैं-** शंकर के अनुसार जब मानव ज्ञान के द्वारा इस संसार की असत्यता से परिचित हो जाये तो वह इससे विरक्त हो जाता हैं, तथा सांसारिक सुख-दुःख का अनुभव नही करता तो उसे जीवन मुक्त कहते हैं। जीवन से मुक्त व्यक्ति सभी प्राणियों में अपना स्वरुप देखता हैं जिस कारण से वह भेदभाव नही बरतता, सत्कर्म उसके व्यक्तित्व का सहज स्वभाव बन जाता हैं। शंकर के अनुसार इस जीवन मुक्त से आगे की स्थिति आत्मा ब्रह्मा में अभेद हैं, जिसमें मानव वास्तव में मुक्ति की प्राप्ति करता हैं और इसी स्थिति को शंकर ने विदेह मुक्ति कहा हैं। शंकर के अनुसार जीवन मुक्ति में मानव को आनंद की अनुभूति होती हैं, और विदेह मुक्ति में परमानंद की अनुभूति होती हैं।
- **मुक्ति के लिए ज्ञान परम आवश्यक हैं-** शंकर ने अनादि एवं अनंत ब्रह्म के सत्य को जानने को विद्या या ज्ञान तथा मायामय संसार के सत्य को जानने को अविद्या या अज्ञान कहा हैं। जब तक हम सभी कर्म और भक्ति के द्वारा अछे जीवन की उम्मीद करते रहेंगे तब तक हमें वही प्राप्त होगा,आत्मा-ब्रह्मा के अभेद को हम प्राप्त ही नही होंगे। इस अभेद को जाने के लिए उन्होंने ज्ञान की प्राप्ति पर बल दिया हैं।
- **ज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रवण-मनन-निदिध्यासन आवश्यक हैं-** शंकर की दृष्टि से ज्ञान दो प्रकार का होता हैं- परा (आध्यात्मिक) और अपरा (व्यावहारिक)। इन दोनों प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करने की एक मात्र विधि हैं श्रवण-मनन-निदिध्यासन। शंकर के अनुसार अनादि और अनंत ब्रह्मा को साक्षात करने के लिए वेद, पुराण, आरण्यक, उपनिषद, और गीता के श्रवण, अध्ययन अथवा मनन से प्राप्त ज्ञान का प्रतिदिन उपयोग करने से प्राप्त होता हैं।
- **मनुष्य अनंत ज्ञान एवं शक्ति का श्रोत हैं-** शंकर के अनुसार मानव आत्माधारी हैं और आत्मा ब्रह्मा का अंश हैं और जो सर्वव्यापक, सर्व शक्तिमान, और सर्वज्ञ हैं अतः मानव अपने आप में अनंत ज्ञान एवं शक्ति का श्रोत हैं। परन्तु माया के कारण मानव अपने इस अनंत ज्ञान एवं शक्ति को नही पहचान पाता हैं। जो व्यक्ति अपनी आत्मा को पहचान लेता हैं वह सब कुछ जान जाता हैं तथा वह सब कुछ करने में समर्थ होता हैं।

4.7 अपनी उन्नति जानिये (Check Your Progress)

प्रश्न.1- वेदान्त दर्शन का प्रमुख विषय क्या हैं?

प्रश्न.2- द्वैता-द्वैत वाद के प्रतिपादक कौन हैं?

4.8 वेदान्त दर्शन और शिक्षा (Vedant Philosophy and Education

वेदान्त दर्शन की केन्द्रीय समस्या ब्रह्मा की धारणा हैं और इस वेदांत दर्शन में ब्रह्मत्व के अन्वेषण पर बल दिया जाता हैं। वेदान्त दर्शन को उपनिषदों की सर्वाधिक प्रमाणिक टीका माना गया हैं वेदान्त समस्त दर्शनों का मुकुटमणि माना जाता हैं इसमें चेतन ब्रह्मा का प्रतिपादन बड़ी कुशलता के साथ किया गया हैं। शंकर के अनुसार मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति हैं और इस मुक्ति के लिए उन्होंने ज्ञान मार्ग का समर्थन किया हैं। उनकी दृष्टि से जब मानव को इस ज्ञान की प्राप्ति हो जाती हैं कि ब्रह्मा सत्य है और शेष सभी असत्य हैं तभी वह सांसारिक माया मोह से मुक्त होता हैं, तथा भेद की दृष्टि से भी मुक्त हो जाता हैं। शिक्षा के विषय में शंकराचार्य ने उपनिषदीय विचारों का समर्थन किया हैं। उनकी दृष्टि से शिक्षा वह है- जो मुक्ति दिलाएं अर्थात **(सा विद्या या विमुक्तये)**।

शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Education)

वेदान्त दर्शन के अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ब्रह्म-साक्षात्कार हैं-

''एकमेवाद्वितीयं नेह नानास्ति किंचन्''

अर्थात इस विश्व जगत में एक ही सत्ता हैं, अनेक की सत्ता नही हैं। अनेकता में एकता का दर्शन करने का लक्ष्य होना चाहिए और बालक को धीरे-धीरे इस दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए कि विश्व में नानात्व माया की देंन हैं और एकत्व ही सत हैं। ब्रह्मा तत्व ही वास्तविक तत्व हैं। जीव और ब्रह्मा में भेद नही हैं। जीव सर्वज्ञ, सर्व-व्यापी और सर्व-शक्तिमान हैं।

वेदान्त दर्शन के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य मानव के आत्मज्ञान और आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति है। इसका मूल उद्देश्य मनुष्य को उसकी अंतरात्मा की पहचान कराना है, जिसे अनन्त, अविनाशी और अज्ञेय माना जाता है। इस दर्शन के अनुसार, हमारा आत्मा ब्रह्म का ही अंश है और शिक्षा के

माध्यम से हमें इस सत्य की पहचान होनी चाहिए। वेदान्त शिक्षा में अन्य उद्देश्यों की भी बात होती है, जैसे नैतिकता, सामाजिक समझ, तकनीकी योग्यता, और विज्ञानिक ज्ञान। लेकिन ये सभी उद्देश्य आत्मज्ञान और आत्मसाक्षात्कार को प्राप्ति के माध्यम से ही पूर्ण होते हैं। इस दर्शन के अनुसार, सभी ज्ञान और कर्म आत्मा के प्रकट होने की दिशा में होने चाहिए, ताकि हम अपने असली स्वरूप को पहचान सकें और ब्रह्म के साथ एकता की प्राप्ति कर सकें। वेदान्त दर्शन के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को आत्मा के स्वरूप की समझ और उसके साथ एकता की प्राप्ति है, जो अंततः ब्रह्म की प्राप्ति में मदद करता है। शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थी को आत्मा के स्वरूप, उसके सम्पूर्णता और अविनाशित्व का ज्ञान प्राप्त होता है। इसके साथ ही, शिक्षा विद्यार्थी को सामाजिक मूल्यों, नैतिकता, धर्म, और संस्कृति की समझ प्रदान करती है, जिससे उसका व्यक्तित्व समृद्ध होता है। मनुष्य को अंततः सच्चे ज्ञान, आनंद और मुक्ति की प्राप्ति में मार्गदर्शन करना। यह शिक्षा का उद्देश्य आत्मा के आत्मज्ञान में समाहित है, जिससे मनुष्य अपने जीवन को समर्थ और सत्यान्वेषी तरीके से जी सकता है। शंकर के द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के इन उद्देश्यों को हम स्थूल से सूक्ष्म के क्रम में निम्नलिखित रूप में अभिव्यक्त कर सकते हैं-

साध्य उद्देश्य –

1- मुक्ति

साधन उद्देश्य –

1- शारीरिक विकास एवं शरीर शुद्ध,

2- मानसिक एवं बौध्हिक विकास,

3- नैतिक एवं चारित्रिक विकास,

4- वर्णानुसार कर्म (व्यवसाय) की शिक्षा,

5- इन्द्रिय निग्रह एवं चित्त शुध्ही की शिक्षा,

6- आध्यात्मिक विकास ,

शिक्षा का पाठ्यक्रम

शंकर के अनुसार शिक्षा की पाठ्यचर्या में मनुष्य के अपरा पाठ्यक्रम (व्यावहारिक) एवं परा पाठ्यक्रम (आध्यत्मिक) दोनों पक्ष्यों से सम्बंधित ज्ञान एवं क्रियाओं का समावेश होना चाहिए। व्यावहारिक जीवन के लिए उन्होंने पाठ्यचर्या में व्यावहारिक ज्ञान (भाषा, चिकित्साशास्त्र,)

वेदान्त दर्शन के पाठ्यक्रम के तहत, छात्रों को वेदान्त के मूल सिद्धांतों, भाष्यों, और उनके विभिन्न प्रस्थानों का अध्ययन किया जाता है। छात्रों को विभिन्न प्रस्थानों के सिद्धांतों को समझने और उन्हें अपने जीवन में लागू करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इसके अलावा, वेदान्त के विभिन्न शाखाओं और सम्प्रदायों के अध्ययन के माध्यम से छात्रों को वेदांतिक विचार की विविधता का अनुभव होता है।

वेदान्त दर्शन पाठ्यक्रमों के तहत कुछ महत्वपूर्ण विषय शामिल हो सकते हैं:

1- **उपनिषद्:** वेदान्त के मूल ग्रंथों में से एक।

2- **ब्रह्मसूत्र:** आदि शंकराचार्य द्वारा रचित ग्रंथ, जिसमें वेदान्त के मुख्य सिद्धांतों को समझाया गया है।

3- **भगवद्गीता:** वेदान्त के सिद्धांतों को समझने में महत्वपूर्ण।

4- **वेदान्त सूत्रों के विभिन्न भाष्य:** आदि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, और विशिष्टाद्वैत आदि सम्प्रदायों के भाष्य।

5- **आध्यात्मिक अनुभव और ध्यान:** छात्रों को आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से आध्यात्मिक अनुभव का महत्व समझाया जाता है।

वेदान्त दर्शन का यह पाठ्यक्रम विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों और आध्यात्मिक संस्थाओं में उपलब्ध होते हैं, जो छात्रों को वेदान्त के सिद्धांतों का अध्ययन कर उन्हें आध्यात्मिक अनुभव का मार्ग दिखाते हैं।

शिक्षण विधियाँ

वेदांत दर्शन के अनुसार शिक्षण विधियाँ अलग-अलग शैक्षणिक संस्थानों में गुरु-शिष्य परम्पराओं के अनुसार विभिन्न रूपों में प्रतिपादित की जा सकती हैं। यहां कुछ मुख्य शिक्षण विधियाँ हैं जो वेदांत दर्शन के सिद्धांतों पर आधारित हो सकती हैं, जो निम्नवत हैं-

- **श्रवण -** इस विधि के अनुसार, शिक्षार्थी को गुरु के उपदेशों को सुनना और समझना होता हैं। यह गुरुकुल प्रणाली का एक प्रमुख भाग है, जहां छात्र गुरु के पास बैठकर उनके उपदेशों को ध्यान से सुनते हैं।

- **मनन-** इस विधि के अनुसार, शिक्षार्थी को गुरु के उपदेशों को मनन करना होता हैं। यह उपदेशों के विचार को अपने मन में गहनता से ध्यानित करने की प्रक्रिया है।

- **निदिध्यासन -** इस विधि के अनुसार, शिक्षार्थी को गुरु के उपदेशों का अभ्यास करते समय आत्मचिंतन और ध्यान की प्रक्रिया को शामिल करना होता हैं। यह उपदेशों को आत्मा के साथ संबद्ध करने की विधि है।

- **अनुभव-** वेदांत के अनुसार, सच्ची शिक्षा का अनुभव सबसे महत्वपूर्ण है। शिक्षार्थी को स्वयं अपने अनुभवों के माध्यम से सत्य को अनुभव करना चाहिए।

- **आचार्योपासना -** इस विधि के अनुसार, शिक्षार्थी को गुरु के सम्मुख श्रद्धाभक्ति और सेवा का भाव रखना चाहिए। गुरु की प्रत्यक्ष प्रसाद के माध्यम से अध्ययन का मार्ग प्राप्त किया जाता है।

इन समस्त शिक्षण विधियों का पालन करने से शिक्षार्थी वेदांत दर्शन के सिद्धांतों को समझने और उन्हें अपने जीवन में लागू करने में समर्थ होता है।

अनुशासन

वेदांत दर्शन के अनुसार, अनुशासन का महत्व विशेष रूप से माना जाता है। वेदांत दर्शन के अनुसार, अनुशासन न केवल बाह्य नियमों और विधियों को पालन करने का अर्थ है, बल्कि यह आत्मविकास का माध्यम भी है। वेदांत दर्शन में अनुशासन का मुख्य उद्देश्य आत्मसमर्पण और साधना है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति को अपने आत्मा के एकीकरण और परमात्मा के साथ सम्पूर्ण एकता की ओर ले जाने के लिए अपने जीवन को विनियमित किया जाना चाहिए। इसके जरिए व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार की ओर प्रगति करता है और अपने असली स्वरूप को पहचानता है।

वेदांत में अनुशासन की दृष्टि से अन्याय, अहंकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के संसारिक बांधनों से मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग बताया जाता है। यह संसार के मोह में न पड़ने के लिए विवेकपूर्ण निर्णय और स्वाध्याय के माध्यम से अपने जीवन को नियंत्रित करने का उपदेश देता है। वेदांत दर्शन में अनुशासन का मतलब यह नहीं है कि व्यक्ति को केवल कठोर नियमों का पालन करना चाहिए, बल्कि यह उसे आत्मसमर्पण, सेवा, और आत्मविकास के माध्यम से अपने आत्मा के साथ सम्पूर्ण एकता की ओर ले जाता है। इसका पालन मानव जीवन को सार्थक और समृद्ध बनाने में सहायक होता है।

शिक्षक

वेदान्त दर्शन एक प्राचीन भारतीय दर्शन है जो ब्रह्म के स्वरूप, जगत के मूल कारण, और आत्मा की स्वाभाविक स्थिति के बारे में विचार करता है। यह वेदों के उत्तरोत्तर भाग में प्रस्थानत्रयी के भाग के रूप में जाना जाता है, जिसमें उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता शामिल हैं। वेदान्त के अनुसार, ब्रह्म अज्ञेय, अनन्त, निराकार, निर्गुण, नित्य, और सर्वव्यापी है। आत्मा ब्रह्म का अविनाशी अंश है, और जगत ब्रह्म के विविध विकारों का एक परिणाम है। वेदान्त में माया का भी महत्व है, जो ब्रह्म के अज्ञान से उत्पन्न होती है और संसार के रूप में परिणमित होती है। वेदान्त के अनुसार, आत्मा का मुक्त होना माया के अज्ञान को दूर करके होता है।

शंकर की दृष्टि से गुरु के मुख्यतः दो कार्य हैं- **पहला** कार्य शिष्य को व्यावहारिक जीवन के लिए तैयार करना, तथा शिष्य को आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति कराना, तथा **दूसरा** कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण हैं जो एक वेदांती शिक्षक अपने शिष्य को आरम्भ में ही उपदेश देता हैं कि **'तत्वमसि'** जिसका अर्थ हैं कि तू ही ब्रह्मा हैं। और शिष्य अंत में यह अनुभव करता हैं कि **'अहम् ब्रह्मास्मि'** अर्थात में ही ब्रह्मा हूँ। इस ब्रह्मज्ञान की चर्चा मुक्त व्यक्ति ही कर सकता हैं।अतः शिक्षक को भी जीवन मुक्त (सांसारिक सुख-दुःख से विरक्त,अभेद दृष्टि वाला एवं सबसे प्रेम करने वाला) होना चाहिए।

शिक्षार्थी –

वेदांत दर्शन के अनुसार, शिक्षार्थी या छात्र को आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए। शिक्षार्थी को आत्मा के स्वरूप, ब्रह्म के सत्य और जगत् की स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करने की दिशा में उनका उत्साह होना चाहिए। वेदांत दर्शन में, शिक्षार्थी को आत्मसाक्षात्कार के लिए ध्यान, ध्येय, धारण, और ध्यातृ की आवश्यकता को समझाया जाता है। छात्र को शास्त्रों का अध्ययन, संगठन, और अध्यापन के माध्यम से आत्मज्ञान का पाठ करना चाहिए।

वेदांत में शिक्षार्थी को गुरु की शिक्षा को प्राप्त करने के बाद स्वयं का अध्ययन, चिंतन, और अनुभव करने की शिक्षा भी मिलती है। इस प्रकार, वेदांत दर्शन में शिक्षार्थी का महत्व उनके स्वयं के अध्ययन और अनुभव के लिए उत्कृष्ट माना जाता है।

4.9 अपनी उन्नति जानिये (Check Your Progress)

प्रश्न.1- ब्रह्म सत्य तथा जगत मिथ्या हैं यह किसका कथन हैं?

प्रश्न.2- वेदान्त के अनुसार मुक्ति पाने मुख्य साधन क्या हैं?

4.10 सारांश – (Summary)

वेदांत दर्शन भारतीय धार्मिक और दार्शनिक परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसे भारतीय दर्शन की उच्चतम और अंतिम प्रस्थान माना जाता है, जो ब्रह्म के असीमता और एकता को स्वीकार

करता है। वेदों के उपयुक्त विवेचन के माध्यम से यह दर्शन विकसित हुआ, जो मुख्य रूप से उपनिषदों पर आधारित है। वेदांत दर्शन के मुख्य विचार ब्रह्म, आत्मा, और जगत् के सम्बन्ध के विषय में हैं। इसके अनुसार, ब्रह्म एकमात्र सत्य है, जो सब कुछ का आधार है। आत्मा, जिसे आत्मनिर्विषेष (अविकारी आत्मा) के रूप में भी जाना जाता है, ब्रह्म का अभिन्न अंश है। जगत् असल में ब्रह्म का विकासमान रूप है, जिसे माया के द्वारा प्रतिबिम्बित किया गया है। वेदांत दर्शन के अनुसार, मनुष्य का मुख्य लक्ष्य ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति है। इसके द्वारा वह आत्मा और ब्रह्म के एकत्व का अनुभव करता है और संसार में मोह और अज्ञान के प्रति मुक्त हो जाता है। यह दर्शन साक्षात्कार और अनुभव के माध्यम से सर्वोच्च सत्य की प्राप्ति को सदैव बढ़ावा देता है, जिससे व्यक्ति का आत्मनिर्माण और सम्पूर्णता होती है। वेदांत दर्शन के प्रमुख आचार्यों में आदि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निष्कामकर्मसिद्धि के अद्वैताचार्य, और चैतन्य महाप्रभु जैसे महान विचारक शामिल हैं। इन्होंने वेदांत दर्शन के विभिन्न पक्षों को समझाया और विस्तार से व्याख्या की। वेदांत दर्शन सांसारिक जीवन को अध्यात्मिक संदर्भ में समझने का प्रयास करता है और व्यक्ति को आत्मा के साथ उसका संबंध स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसका महत्वपूर्ण योगदान भारतीय दर्शन और धर्म की ऐतिहासिक और आध्यात्मिक विरासत के रूप में माना जाता है।

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

भाग 1-

उत्तर 1- वेदान्त दर्शन का मुख्य विषय वस्तु जीव और ब्रह्मा हैं।

उत्तर 2- द्वैता- द्वैत बाद के प्रवर्तक निम्बिकाचार्य हैं।

भाग 2-

उत्तर 1- ब्रह्म सत्य हैं और जगत मिथ्या है यह कथन शंकराचार्य जी का हैं।

उत्तर 2- मुक्ति पाने का मुख्य साधन ज्ञान की प्राप्ति हैं

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. लाल,रमन विहारी.(2017-18).शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार. मेरठ:आर लाल बुक डिपो.
2. रूहेला,एस.पी.(2014). शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशाश्त्रीय आधार. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.
3. पाण्डेय,राम शकल.उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.
4. मालवीय,राजीव.(2013).उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक. इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन.
5. भटनागर, सुरेश. (2008). भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास. मेरठ: आर लाल बुक डिपो.
6. सक्सेना,सरोज.शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार.आगरा: साहित्य प्रकाशन.
7. लाल,रमन विहारी एवं पलोड़,सुनीता.(2009).शैक्षिक चिंतन एवं प्रयोग. मेरठ: आर लाल बुक डिपो.
8. पाण्डेय,राम शकल.उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक.(2012).आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर.
9. पाठक,आर.पी. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिधान्त.(2012). आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.
10. सक्सेना,एन आर स्वरुप, चतुर्वेदी, शिखा, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक. मेरठ: आर लाल बुक डिपो.

4.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Question)

प्रश्न.1- वेदान्त दर्शन का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

प्रश्न.2- शंकराचार्य के वेदान्त दर्शन के मूल सिधान्तों की व्याख्या कीजिये।

प्रश्न.3- वेदान्त दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य,पाठ्यचर्या,एवं शिक्षण विधियों की व्याख्या कीजिये।

प्रश्न.4- शंकराचार्य के शैक्षिक विचारों की विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

इकाई- 5 उपनिषद (Upanishad)

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 उपनिषद का अर्थ
5.3.1 उपनिषद का इतिहास
5.3.2 उपनिषदों की उत्पत्ति
5.3.3. उपनिषदों का महत्व
5.4 उपनिषद के अनुसार शिक्षा
5.4.1 उपनिषद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य
5.4.2 उपनिषदों के अनुसार पाठ्यक्रम
5.4.3 उपनिषद के अनुसार शिक्षण विधियाँ
अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress
5.5 उपनिषद और शिक्षक
5.5.1 उपनिषद और शिक्षार्थी
5.5.2 उपनिषद और अनुशासन
5.6 उपनिषदीय शैक्षिक दर्शन
अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress
5.7 सांराश
5.8 शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.11 सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.1 प्रस्तावना

आध्यात्म विद्या से पूर्ण ग्रन्थों को उपनिषद कहा जाता है। उपनिषदों को वेदों के अन्तिम भागों में अवस्थित देखने के कारण उन्हें वेदान्त भी कहा गया है। उपनिषदों को ब्रह्मविद्या का समुद्र माना

जाना है। विश्व साहित्य की प्राचीनतम रचना वेद है। वेद भारतीय दर्शन की निधि है। डॉ. राधाकृष्णनन के अनुसार 'वेद मानव मन से प्रादुर्भूत ऐसे नितान्त आदिकालीन प्रमाणिक ग्रन्थ हैं, जिन्हें हम अपनी निधि समझते हैं।' इन्हीं वेदों के चार अंग है, जिन्हें हम क्रमशः संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषद् कहते हैं। उपनिषद् संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है - समीप बैठना। यानि ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिए शिष्य का गुरु के पास बैठना। यह शब्द 'उप' में 'नि' उपसर्ग तथा 'सद्' धातु से उत्पन्न हुआ है। यहाँ सद् धातु के तीन अर्थ हैं: विवरण-नाश होना; गति-पाना या जानना तथा अवसादन-शिथिल होना है। उपनिषद् में ऋषि और शिष्य के बीच बहुत गूढ संवाद है जो पाठकों को वेदों का वास्तविक मर्म बतलाता है। उपनिषद अध्यात्म विद्या का चरमोत्कर्म है। आत्मा को ब्रह्म-रूप से प्रतिष्ठित करने वाले स्थिर ज्ञान को उपनिषद कहा जाता है। उपनिषद शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। उपनिषद शब्द उप+नि+सद् धातुओं से मिलकर बना है, जिसका अर्थ हैः 'गुरू के पास शिष्य का बैठना' चूँकि गुरू के पास गूढ़ ज्ञान को गुप्त रूप से वन में ही सिखाया जाता था, इसलिए इनका नाम आरण्यक भी है।

'सद्' धातु का अर्थ है 'बैठना'। जब इसमें 'नि' उपसर्ग लगता है तो इसका अर्थ हो जाता है किसी प्रयोजन विशेष के लिए बैठना। 'उप' उपसर्ग का अर्थ है – समीप। इस प्रकार उपनिषद का अर्थ है किसी विशेष प्रयोजन के लिए समीप बैठना। प्रयोजन का अर्थ ज्ञान से लिया जाता है। यह गूढ़ज्ञान ब्रह्म या आत्मा का गूढ़ ज्ञान है। इसीलिए उपनिषद वस्तुतः अध्यात्म विद्या के मानसरोवर माने जाते रहे है। उपनिषद (रचनाकाल 1000 से 300 ई.पू. लगभग) भारत का सर्वोच्च मान्यता प्राप्त विभिन्न दर्शनों का संग्रह है। इसे वेदांत भी कहा जाता है। उपनिषद भारत के अनेक दार्शनिकों, जिन्हें ऋषि या मुनि कहा गया है, के अनेक वर्षों के गम्भीर चिंतन-मनन का परिणाम है। उपनिषदों को आधार मानकर और इनके दर्शन को अपनी भाषा में रूपांतरित कर विश्व के अनेक धर्मों और विचारधाराओं का जन्म हुआ।

5.2 उद्देश्यः-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

1. उपनिषद के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. उपनिषद के इतिहास का वर्णन कर सकेंगे।

3.उपनिषदों के उत्पत्ति का विश्लेषण कर सकेंगे।

4. उपनिषद के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे ।

5. उपनिषदों के अनुसार शिक्षा को समझ सकेंगे।

6. उपनिषदों के अनुसार शिक्षक तथा शिक्षार्थी के कर्तव्यों की व्याख्या कर सकेंगे।

7. उपनिषद के अनुसार कर अनुशासन का वर्णन कर सकेंगे।

8. वर्तमान समय के आधार पर उपनिषदों के गुण दोषों की व्याख्या कर सकेंगे।

5.3 उपनिषद का अर्थ

भारतीय-संस्कृति की प्राचीनतम एवं अनुपम धरोहर के रूप में वेदों का नाम आता है। 'ऋग्वेद' विश्व-साहित्य की प्राचीनतम पुस्तक है। मनीषियों ने 'वेद' को ईश्वरीय 'बोध' अथवा 'ज्ञान' के रूप में पहचाना है। विद्वानों ने उपनिषदों को वेदों का अन्तिम भाष्य 'वेदान्त' का नाम दिया है। इससे पूर्व वेदों के लिए 'संहिता' 'ब्राह्मण' और 'आरण्यक' नाम भी प्रयुक्त किये जाते हैं। उपनिषद ब्रह्मज्ञान के ग्रन्थ हैं। इसका शाब्दिक अर्थ है- समीप बैठना अर्थात् ब्रह्म विद्या को प्राप्त करने के लिए गुरु के समीप बैठना। इस प्रकार उपनिषद एक ऐसा रहस्य ज्ञान है जिसे हम गुरु के सहयोग से ही समझ सकते हैं। ब्रह्म विषयक होने के कारण इन्हें 'ब्रह्मविद्या' भी कहा जाता है। उपनिषदों में आत्मा-परमात्मा एवं संसार के सन्दर्भ में प्रचलित दार्शनिक विचारों का संग्रह मिलता है। उपनिषद वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग तथा सारभूत सिद्धान्तों के प्रतिपादक हैं, अतः इन्हें 'वेदान्त' भी कहा जाता है। इनका रचना काल 800 से 500 ई.पू. के मध्य है। उपनिषदों ने जिस निष्काम कर्म मार्ग और भक्ति मार्ग का दर्शन दिया उसका विकास श्रीमद्भागवतगीता में हुआ। उपनिषद शब्द 'उप' और 'ति' उपसर्ग तथा 'सद' धातु के संयोग से बना है। 'सद' धातु का प्रयोग 'गति',अर्थात् गमन, ज्ञान और प्राप्त के सन्दर्भ में होता है। इसका अर्थ यह है कि जिस विद्या से परब्रह्म, अर्थात् ईश्वर का सामीप्य प्राप्त हो, उसके साथ तादात्म्य स्थापित हो,वह विद्या 'उपनिषद' कहलाती है। उपनिषद में 'सद' धातु के तीन अर्थ और भी हैं - विनाश, गति, अर्थात् ज्ञान -प्राप्ति और शिथिल करना । इस प्रकार उपनिषद का अर्थ हुआ-'जो ज्ञान पाप का नाश करे, सच्चा ज्ञान प्राप्त कराये, आत्मा के रहस्य को समझाये तथा अज्ञान को शिथिल करे, वह उपनिषद है।'

अष्टाध्यायी में उपनिषद शब्द को परोक्ष या रहस्य के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में युद्ध के गुप्त संकेतों की चर्चा में 'औपनिषद' शब्द का प्रयोग किया गया है। इससे यह भाव प्रकट होता है कि उपनिषद का तात्पर्य रहस्यमय ज्ञान से है। अमरकोष उपनिषद के विषय में कहा गया है- उपनिषद शब्द धर्म के गूढ़ रहस्यों को जानने के लिए प्रयुक्त होता है।

5.3.1 उपनिषद का इतिहास

भारत अपनी प्राचीन और समृद्धशाली महान सभ्यता के लिए जाना जाता है। इसका मुख्य कारण है कि भारत अपने ज्ञान के कारण ही अन्य सभ्यताओं से ऊपर रहा है। भारत के ज्ञान का स्रोत यहाँ के महान ऋषि-मुनियों के द्वारा रचे गए धर्म ग्रंथ या वेद शास्त्र हैं और उपनिषद भी इन्ही का एक हिस्सा है। यूँ तो इतिहासकारों के बीच ये मतभेद है कि उपनिषदों की रचना कब हुई? लेकिन प्रसिद्ध इतिहासकार मैक्समूलर ने इनकी रचना का कालखण्ड 600 से 400 ईसा पूर्व बताया है।

वहीं श्रीराधाकृष्णन् के मतानुसार इनका रचनाकाल छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक माना जा सकता है। अब सवाल आता है कि उपनिषद की रचना कैसी हुई? इसकी उत्पत्ति के क्या कारण थे? यदि इस पर हम नज़र डालें तो यह ज्ञात होता है कि प्राचीन उपनिषदों में दार्शनिक चिंतन अधिक है। क्योंकि उपनिषदों की रचना हमारे ऋषि-मुनियों के द्वारा की गई सदियों की मेहनत का परिणाम है।

इसमें सृष्टि के उद्गम एवं उसकी रचना के संबंध में गहन चिंतन तथा स्वयंफूर्त कल्पना से उपजे रूपांकन को विविध बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। संक्षेप में कहा जाए तो संसार के गूढ़ ज्ञान तथा प्रत्यक्ष प्राकृतिक शक्तियों के स्वरूप को समझने के लिए तथा लोगों को इसके वास्तविक मर्म को समझाने के लिए हमारे ऋषि मुनियों ने इनकी रचनाएँ की थी। आरम्भिक दस उपनिषदों को प्रामाणिक एवं प्राचीन उपनिषद् बताया गया है। ये हैं - ईष, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरैय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक आदि। इसके अतिरिक्त कौशीतकि, श्वेताश्वर, मैत्रायणी भी तीन प्राचीन उपनिषद् माने गये हैं। इस प्रकार प्रमुख 13 उपनिषद है। उपनिषदों का संबंध वेद से न होकर तंत्र से है। मूल रूप से उपनिषदों की संख्या 108 है, जिन्हें अलग-अलग कालखंड के रूप में वर्गीकृत किया गया है। जैसे -

- ऋग्वेदीय - 10 उपनिषद

- शुक्ल यजुर्वेदीय - 19 उपनिषद्
- कृष्ण यजुर्वेदीय - 32 उपनिषद्
- सामवेदीय - 16 उपनिषद्
- अथर्ववेदीय - 31 उपनिषद्

हालाँकि 108 उपनिषदों में से 10 उपनिषदों को प्रमुख माना जाता है। इनमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य और बृहदारण्यक शामिल हैं। आदि गुरु शंकराचार्य ने इन्ही दस उपनिषदों पर अपना भाष्य दिया है। 'सत्यमेव जयते' मुण्डक उपनिषद से ही लिया गया है। वैसे कुछ विद्वान कौषीतकि और श्वेताश्वरतर की भी, मुख्य उपनिषदों में गणना करते हैं। हालाँकि कुछ उपनिषदों को वेदों की संहिताओं का अंश माना गया है।

विभिन्न उपनिषदों के पाश्चात्य विचारकों ने समय-समय पर प्रेरणा प्राप्त की भारतीय मनीषियों महात्मा गॉधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, अरविन्द, विवेकानन्द, राधाकृष्णन्, लोकमान्य तिलक आदि ने उपनिषदों से ही प्रेरणा ली है। विभिन्न उपनिषद अपने विभिन्न रूपों में ज्ञान के भण्डार हैं, जो अध्यात्मवादी दर्शन के सागर हैं। इन्हीं के आधार पर कई रूपों में अध्यात्मवादी धारा प्रवाहित होती रही है व होती रहेगी और वर्तमान व भविषय के मानव जीवन को प्रभावित करती रहेगी।

5.3.2 उपनिषदों की उत्पत्ति

उपनिषदों के रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों का एक मत नहीं है। कुछ उपनिषदों को वेदों की मूल संहिताओं का अंश माना गया है। ये सर्वाधिक प्राचीन हैं। कुछ उपनिषद 'ब्राह्मण' और 'आरण्यक' ग्रन्थों के अंश माने गये हैं। इनका रचनाकाल संहिताओं के बाद का है। उपनिषदों के काल के विषय में निश्चित मत नहीं है। विद्वानों ने **'उपनिषद'** शब्द की व्युत्पत्ति **'उप'+'नि'+'षद'** के रूप में मानी है। इनका अर्थ यही है कि जो ज्ञान व्यवधान-रहित होकर निकट आये, जो ज्ञान विशिष्ट और सम्पूर्ण हो तथा जो ज्ञान सच्चा हो, वह निश्चित रूप से उपनिषद ज्ञान कहलाता है. मूल भाव यही है कि जिस ज्ञान के द्वारा 'ब्रह्म' से साक्षात्कार किया जा सके, वही 'उपनिषद' है। इसे अध्यात्म-विद्या भी कहते है।

उपनिषद शब्द **'उप' और 'ति'** उपसर्ग तथा **'सद'** धातु के संयोग से बना है. 'सद' धातु का प्रयोग 'गति',अर्थात् गमन,ज्ञान और प्राप्त के सन्दर्भ में होता है. इसका अर्थ यह है कि जिस विद्या से परब्रह्म, अर्थात् ईश्वर का सामीप्य प्राप्त हो, उसके साथ तादात्म्य स्थापित हो,वह विद्या 'उपनिषद' कहलाती है। उपनिषद में 'सद' धातु के तीन अर्थ और भी हैं – विनाश, गति, अर्थात् ज्ञान -प्राप्ति और शिथिल करना. इस प्रकार उपनिषद का अर्थ हुआ-'जो ज्ञान पाप का नाश करे, सच्चा ज्ञान प्राप्त कराये, आत्मा के रहस्य को समझाये तथा अज्ञान को शिथिल करे, वह उपनिषद है.' अष्टाध्यायी में उपनिषद शब्द को परोक्ष या रहस्य के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में युद्ध के गुप्त संकेतों की चर्चा में 'औपनिषद' शब्द का प्रयोग किया गया है। इससे यह भाव प्रकट होता है कि उपनिषद का तात्पर्य रहस्यमय ज्ञान से है। अमरकोष उपनिषद के विषय में कहा गया है-उपनिषद शब्द धर्म के गूढ़ रहस्यों को जानने के लिए प्रयुक्त होता है। ब्राह्मणों की रचना ब्राह्मण पुरोहितों ने की थी, लेकिन उपनिषदों की दार्शनिक परिकल्पनाओं के सृजन में क्षत्रियों का भी महत्त्वपूर्ण भाग था। उपनिषद उस काल के द्योतक हैं जब विभिन्न वर्णों का उदय हो रहा था और क़बीलों को संगठित करके राज्यों का निर्माण किया जा रहा था। राज्यों के निर्माण में क्षत्रियों ने प्रमुख भूमिका अदा की थी, हालांकि उन्हें इस काम में ब्राह्मणों का भी समर्थन प्राप्त था।

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार उपनिषद शब्द की व्युत्पत्ति उप (निकट), नि (नीचे), और षद (बैठो) से है। इस संसार के बारे में सत्य को जानने के लिए शिष्यों के दल अपने गुरु के निकट बैठते थे। उपनिषदों का दर्शन वेदान्त भी कहलाता है, जिसका अर्थ है वेदों का अन्त, उनकी परिपूर्ति। इनमें मुख्यत: ज्ञान से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार किया गया है।

इन ग्रन्थों में परमतत्व के लिए सामान्य रूप से जिस शब्द का प्रयोग किया जाता है, वह है ब्रह्मन्. यद्यपि ऐसा माना जाता है कि 'यह' अथवा 'वह' जैसी अभिव्यंजनाओं वाली शब्दावली में इसके वर्णन है और इसीलिए इसे बहुधा अनिर्वचनीय कहा गया है। उपनिषदों में इसके लिए आत्मन् शब्द का प्रयोग किया गया है। अत: औपनिषदिक आदर्शवाद को, संक्षेप में, ब्रह्मन् से आत्मन् का समीकरण कहा जाता है। औपनिषदिक आदर्शवादियों ने इस आत्मन् को कभी 'चेतना-पुंज मात्र' (विज्ञान-घन) और कभी 'परम चेतना' (चित्) के रूप में स्वीकार किया है। इसे आनंद और सत के रूप में भी स्वीकार किया गया है।

5.3.3 उपनिषदों का महत्व

भारतीय मनीषियों द्वारा जितने भी दर्शनों का उल्लेख मिलता है, उन सभी में वैदिक मन्त्रों में निहित ज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ है। सांख्य तथा वेदान्त (उपनिषद) में ही नहीं, जैन और बौद्ध-दर्शनों में भी इसे देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति से उपनिषदों का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। इनके अध्ययन से भारतीय संस्कृति के अध्यात्मिक स्वरूप का सच्चा ज्ञान हमें प्राप्त होता है। उपनिषद् भारतीय वैदिक वांग्मय के महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं। इनका प्रमुख विषय ब्रह्मविद्या तथा आत्मा और परमात्मा के संबंध के बारे में है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर चलने की शिक्षा भी हमें उपनिषदों के माध्यम से ही प्राप्त होती है। ब्रह्म, जीव और जगत् का ज्ञान पाकर आत्मा का परिष्कार करना और अपने जीवन को संसार के विषय भोगों से विरक्त कर ब्रह्म की प्राप्ति के लिए समर्पित करने की शिक्षा भी हमें उपनिषदों के द्वारा ही प्राप्त होती है। उपनिषदों का यह चिंतन हम भारतवासियों को इनके रचना काल से ही प्रभावित करता आया है यही कारण है कि भारतवर्ष के लोग आज भी संसार के अन्य देशों के लोगों की अपेक्षा कम आपराधिक प्रवृत्ति के होते हैं। उनमें एक दूसरे के साथ समन्वय स्थापित कर चलने की एक ऐसी पवित्र भावना होती है जो उन्हें दूसरों के प्रति सहज, सरल, उदार और सहिष्णु बनाती है। यही कारण है कि गीता जैसे ग्रंथ पर भी उपनिषदों की छाया पड़ी है। गीताकार जितना भी हमें सांसारिक विरक्ति का पाठ पढ़ाता है, वह सब इसी बात का प्रमाण है कि गीता पर उपनिषदों की छाया है।

उपनिषदों ने प्राचीन काल से ही भारत के लोगों को यह शिक्षा देने का काम किया है कि संसार का माया मोह निरर्थक है। इसमें फंसने का अभिप्राय है कि व्यक्ति अपने आप को ही मार रहा है। उपनिषदों ने संसार को एक घोर घना जंगल माना है। जिसमें व्यक्ति आकर अपने वास्तविक ध्येय से अथवा मार्ग से भटक जाता है। इस भटकन को समाप्त कर अपने ध्येय पर ध्यान देना उपनिषदों की शिक्षा है। यही कारण है कि भारत के लोग भौतिकवादी चकाचौंध को अपने लिए कभी भी उचित नहीं मानते। भारत में अन्य देशों से अधिक लोग ऐसे हैं जो ईश्वर को याद रखते हैं और अपने कामों को बहुत अधिक ईमानदारी के साथ निष्पादित करने का प्रयास करते हैं। उपनिषदों की शिक्षा का ही प्रभाव है कि भारत के लोग भौतिकवादी चकाचौंध को अपने लिए उपयुक्त नहीं मानते। भारत के लोगों की ऐसी सोच का कारण उपनिषदों की दार्शनिक विचारधारा ही है।

उपनिषदों की एक बड़ी विशेषता यह है कि इनमें कथाओं के माध्यम से बड़ी बात को बहुत सरल ढंग से समझाने का प्रयास किया गया है। जिससे भारतीय जनमानस पर इनका अमिट प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। यह अलग बात है कि लोग संस्कृत नहीं जानते पर संस्कृति की स्वाभाविक रूप

से पालन करने की अद्भुत कला भारतीय लोगों में देखी जाती है। जिसे वे परम्परा से एक दूसरे से सीखकर , समझकर या सुनकर अपना लेते हैं और उसके अनुसार अपने जीवन को ढाल लेते हैं।

5.4 उपनिषदों के अनुसार शिक्षा

वैदिक युग की शिक्षा प्रणाली तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था से विकसित हुई थी जो उस समय के ऋषियों की कट्टर नैतिक, नैतिक और आध्यात्मिक समझ पर आधारित थी । वैदिक सिद्धांत के अनुसार सभी ईश्वर द्वारा बनाये गये हैं। दोनों इंसानों में कोई अंतर नहीं था। मनुष्य अपने कार्यों से या कर्मों से जाना जाता था। समाज में उनकी पहचान उनके जन्म से नहीं बल्कि उनके पेशे से थी। उनके कार्यों से ही मानव परिवार विभिन्न वर्णों या वर्गों में विभाजित हो गये। उपनिषद् में शिक्षा का अर्थ 'विद्या' के रूप में लिया गया है। विद्या को आत्मानुभूति का साधन माना गया है। (विद्या अमृतमष्नुते) आत्मानुभूति के साधन- ज्ञान, कर्म व योग है। अतः वास्तविक शिक्षा हमें ज्ञान प्राप्त करने, कर्म करने व योग के लिए प्रशिक्षित करती है व आत्मानुभूति प्राप्त करने के योग्य बनाती है।

कोई भी चीज़ हमें विद्या जैसी अंतर्दृष्टि नहीं देती ; आध्यात्मिक क्षेत्र में, यह हमें मोक्ष की ओर ले जाता है, सांसारिक क्षेत्रों में यह हमें सर्वांगीण प्रगति और समृद्धि की ओर ले जाता है। विद्या द्वारा हमें दी गई रोशनी बिखर जाती है, कठिनाइयों को दूर कर देती है और हमें जीवन के वास्तविक मूल्य का एहसास कराती है। जिस व्यक्ति के पास शिक्षा का प्रकाश नहीं है, उसे वास्तव में अंधा कहा जा सकता है। प्राचीन भारतीयों का यह विश्वास था कि विद्या के अलावा कोई भी चीज़ मानव बुद्धि को परिष्कृत और विकसित नहीं कर सकती । विद्या की प्राप्ति से शक्ति, दक्षता, तत्परता सब कुछ तेज किया जा सकता है । वह माँ की तरह हमारा पालन-पोषण करती है, पिता की तरह हमें उचित मार्ग पर ले जाती है, और पत्नी की तरह हमें प्रसन्नता और आराम देती है। भारतीय सभ्यता की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसे कभी भी धर्म के अलावा किसी अन्य चीज ने नहीं ढाला गया। भारतीय सभ्यता को आकार देने में राजनीति या अर्थशास्त्र या किसी भी अन्य प्रभाव ने कोई योगदान नहीं दिया या कोई उल्लेखनीय स्थान नहीं लिया या इसकी उन्नति में कोई ग्राफिक रास्ता नहीं बनाया।

हिंदू दर्शन में सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक आदि जैसे जीवन के मूलभूत पहलुओं को एक व्यापक सिद्धांत में ढालने के लिए धर्म को अलग किया गया था और इस प्रकार इसने प्राचीन भारतीयों

के चरित्र के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान लिया।उस समय हिंदू धर्म तत्कालीन लोगों के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन का एक समग्र और व्यापक सिद्धांत बन गया जिसने व्यावहारिक रूप से उनके दृष्टिकोण और व्यवहार को एक सैद्धांतिक मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया। यहां तक कि वास्तविकता, अंतरिक्ष और ब्रह्मांड पर गहन वैज्ञानिक चिंतन और एकाग्रता की धार्मिक प्रेरणा भी वैदिक संतों के मन में थी। इस प्राचीन समाज में धर्म में लोगों के आदर्श, अनुष्ठान और सामाजिक आचरण के तरीके शामिल थे ।

वैदिक काल में शिक्षा का अर्थ मनुष्य का सर्वांगीण विकास था जिसमें शारीरिक, नैतिक, नैतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक पहलू शामिल थे। वैदिक शिक्षा ने लोगों को न केवल जीवन के भौतिक पहलुओं को बल्कि आध्यात्मिक संभावनाओं को भी विकसित करने का अवसर दिया। वैदिक युग के प्रारंभिक काल में शिक्षा शिक्षक से छात्रों तक मौखिक प्रसारण के माध्यम से प्रदान की जाती थी। इस माहौल में शिक्षकों को भगवान के समान अत्यंत सम्मान और भक्ति के साथ माना जाता था।

5.4.1 उपनिषदों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

विभिन्न उपनिषद में शिक्षा के उद्देश्यों का अलग-अलग ढंग से वर्णन किया गया हैं। उपनिषदों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है:-

1. भौतिक जीवन की प्राप्ति- उपनिषद के अनुसार शिक्षा का पहला उद्देश्य भौतिक जीवन की प्राप्ति है। माना गया है कि शिक्षा से असत्य का नाश होता है और आनन्द की प्राप्ति होती है। आनन्द ब्रह्म या आत्मा का शाश्वत रूप है। आनन्द का प्रथम और निम्नतम लक्ष्य 'अन्नमय' है, अर्थात् जीवन के भौतिक पक्ष की प्राप्ति आनन्द का प्रारम्भिक लक्षण है।

2. स्वस्थ शरीर का निर्माण-शिक्षा की प्राप्ति स्वस्थ शरीर के निर्माण से संबंधित है। स्वस्थ शरीर में प्राण ही वह शक्ति है, जिसके द्वारा वनस्पति तथा प्राणी जगत श्वास लेता है। यह प्राणमय स्वरूप है। स्वस्थ शरीर में ही सकारात्मक विचारों की उत्पत्ति होती है।

3. मानसिक विकास- उपनिषदों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक का मानसिक विकास करना है। मानव जाति अन्य जीवों से उच्च मानी गई है, क्योंकि उसमें 'मनस' है। वह चिन्तन एवं विचार कर

सकती है। यह शिक्षा का मनोमय रूप है। मानसिक विकास के द्वारा ही मनुष्य में चिंतन, मनन, आत्मविश्वास, अनुशासन, निर्णय लेने की शक्ति आदि का विकास होता है।

4.निर्णय शक्ति का विकास- उपनिषदों के अनुसार शिक्षा का चौथा उद्देश्य बालक में अच्छाई-बुराई में अन्तर करने की समझ पैदा करना है, अर्थात बुद्धि का सही प्रयोग कर सकना है। यह विज्ञानमय रूप कहा गया है। बालक में अपने विवेक शक्ति के आधार पर निर्णय लेने की शक्ति का विकास किया जा सके।

5.आत्मानुभूति का विकास- उपनिषदों के अनुसार शिक्षा का पॉचवा उद्देश्य आत्मानुभूति है, अर्थात आत्मा या आनन्द का सर्वोच्य स्थान हैं। यह वह स्तर है, जहॉ व्यक्ति को ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान में समस्त भेदों का अन्तर समाप्त हो जाता है। यह छात्र की आत्मा का अन्तिम स्वरूप 'आनन्दमय' है। मोक्ष प्राप्ति ही शिक्षा का पूर्ण उद्देश्य है (सा विद्या या विमुक्तये)।

6- चारित्रिक विकास- उपनिषदों के अनुसार शिक्षा का छठा उद्देश्य चारित्रिक विकास होता है । बालक में चरित्र बल का गठन होना चाहिए तभी वह जीवन में उन्नति कर सकता है । उपनिषद के अनुसार चरित्र के बिना शिक्षा का कोई महत्व नहीं होता है ।

इन उद्देश्यों के अनुसार उपनिषदीय शिक्षा का छात्र एक ऐसा व्यक्ति है, जिसे जीवन पर्यन्त ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा है। वह ज्ञान प्राप्ति हेतु एक उपयुक्त गुरू की खोज में रहता है। ज्ञान प्राप्ति के लिए कोई आयु सीमा नहीं है। जीवन के किसी भी स्तर पर ज्ञान प्राप्त करने की लालसा उत्पन्न हो सकती है। ज्ञान प्राप्ति का समय नियत नहीं है, हालॉकि कुछ शिष्य वास्तविक ज्ञान प्राप्ति या आनन्दानुभूति कम प्रयासों से तथा कम समय में कर लेते हैं, जबकि कुछ अन्य विद्यार्थी सतत् प्रयासों द्वारा अधिक अवधि में प्राप्त करते हैं। उपनिषद सांसारिक ज्ञान और सांसारिक जीवन के ऋणों के क्षण को नजरअंदाज नहीं करते हैं, जिसके बिना दुनिया जारी नहीं रह सकती। कोई व्यक्ति गृहस्थ का जीवन जी सकता है और फिर भी एक संपूर्ण और नैतिक जीवन जीकर उसी उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है। उपनिषद लोगों को संतुलन और संयम का अभ्यास करने और दोनों प्रकार के ज्ञान को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करते हैं। व्यक्ति को अनिवार्य कर्तव्यों को पूरा करने और दुनिया और पारिवारिक वंश की स्थायित्व की गारंटी के लिए सांसारिक ज्ञान (अविद्या) का पालन करना चाहिए।

5.4.2 उपनिषद के अनुसार पाठ्क्रम

अधिकतर उपनिषद् ने सम्पूर्ण ज्ञान को दो भागों में विभक्त किया है-1. अपरा विद्या- जो सांसारिक ज्ञान, शारीरिक ज्ञान व ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अर्जित ज्ञान अपरा विद्या के अन्तर्गत आता है। 2. परा विद्या- आत्मा से संबधित ज्ञान, आत्म से संबंधित ज्ञान, ब्रह्मज्ञान सार तत्व ज्ञान सब कुछ परा विद्या के क्षेत्र में आता है।

उपनिषदों में पाठ्यक्रम की मुख्य पाठ्यवस्तु आत्म विषय व आत्मानुभूति है। अतः परा ज्ञान पर अधिक बल दिया गया है। इस का यह अर्थ नहीं है कि अपरा विद्या को नकारा गया है, अपितु तैतिरर्योपनिषद में तो इस बात पर बल दिया गया है कि परा विद्या के माध्यम से परा को जानो किन्तु यदि अपरा को ही सार जानोगे तो आत्मिक उन्नति अवरोधित हो जाएगी।

आनन्दमय कोष- आत्मानुभूति आवश्यकताए (दार्शनिकता का विकास, शब्दों मे अवर्णनीय, ज्ञानेन्द्रियों से परे ज्ञान ही वास्तविक सत्य है)।

विज्ञानमय कोष- वैज्ञानिक आवश्यकताए (प्रेयस व श्रेयस में अन्तर की योग्यता, इच्छित व इच्छा योग्य में अन्तर का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है)।

मनोमय कोष- बौद्धिक अवश्यकताए (मानसिक ज्ञान-सोचना, स्मरण, प्रत्यास्मरण, कल्पना ही वास्तविक सत्य है)।

जैविक आवश्यकताए- शारीरिक स्वास्थ्य- जीव संस्थानों का विकास ही वास्तविक सत्य है।

प्राथमिक आवश्यकताएँ - भूख, प्यास, काम आदि निम्न स्तर की पाश्विक आवश्यकताए ही वास्तविक सत्य है।

पंच कोषों में वर्णित चार पुरूषार्थ (अर्थ,काम,धर्म,मोक्ष) ही यदि देखा जाए तो चार वर्णाश्रमों- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास के अनुरूप है। इन्हें व परा, अपरा ज्ञान को सभी को उपनिषद्ओं के पाठ्यक्रम में आधार रूप से माना गया है। शिक्षा के आरम्भिक वर्षों में छात्र को शारीरिक सुरक्षा व बाह्य जगत का ज्ञान देना ही अपरा ज्ञान का समरूप है। तत्पश्चात् जीवन विज्ञान व मानव शास्त्र आदि विषयों का ज्ञान जो परा विद्या कें अन्तर्गत आता है, इससे छात्र को आत्मविद्या प्राप्त होती है। यह

आत्मज्ञान पाठ्यक्रम का अन्तिम चरण माना गया है। इसी क्रम के अनुरूप गणित, भौतिकी, रसायनशास्त्र, तकनीकी, जीवविज्ञान, मानवशास्त्र, खेलकूद, नीतिशास्त्र आदि समन्वित किये जाते हैं। इन विषयों का क्रम विस्तृत रूप में निम्न तालिका में दर्शाया जा सकता है-

इसप्रकार पाठ्यक्रम की विषय वस्तु को विभिन्न विषयों के अध्ययन द्वारा छात्र परा और अपरा ज्ञान को प्राप्त करते थे। विभिन्न कोषों के विकास द्वारा पुरूषार्थों को प्राप्त करते थे।

5.4.3 उपनिषद के अनुसार शिक्षण विधियॉं

औपनिषदिक विचारकों ने शिष्यों को ज्ञान देने की विभिन्न प्रकार की शिक्षण विधियॉं बताई है किन्तु इन सभी विधियों में स्वतः खोज विधि मुख्य है। प्राचीन विचारकों का मत था कि ज्ञान मनुष्य को उसके अपने प्रयासों से ही प्राप्त होता है। दूसरों द्वारा दिया गया ज्ञान केवल मौखिक स्तर का ही होता है और इसे पूर्णतः ग्रहण या प्राप्त नहीं किया जा सकता है।उपनिषद् ज्ञान के भण्डार हैं। एक जिज्ञासु शिष्य प्रश्न पूछता है और सद्गुरू उसके प्रश्नों के उत्तर देता है, उसकी समस्याओं का समाधान करता है और उसके लिए वह अनेक युक्तियो का प्रयोग करता है। उपनिषद्य शिक्षा में जिन उपकरणों या स्त्रोतों का वर्णन किया है, उनका आधार पूर्णतया मनोवैज्ञानिक है। कुछ भी हो, शिक्षक तो केवल छात्र को मार्ग प्रदर्शन मात्र कर सकता है। उपयुक्त पात्र के रूप में ग्रहण तो छात्र को स्वयं ही करना होगा।

उपनिषद्य शिक्षा व्यवस्था के गुरूकुलों से प्रायः सभी परिचित है, पर उस समय कुछ ऐसे ग्राम होते थे, जहॉं केवल पण्डित ही रहते थे। इन स्थानों को अग्राहारा कहते थे। यहॉं के पण्डितों को सारे ग्राम की आय मिलती थी ताकि वे बिना किसी अवरोध के अध्ययन-अध्यापन मे लगे रहे। यहॉं योग्य ब्राह्मण विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। यह स्थान ग्राम से बाहर अकेले स्थान पर होते थे अग्रहारा मे सैंकड़ो विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करने के लिए आते थे। कर्नाटक काडियोर अग्राहारा और मैसूर का सर्वजनापुरा अग्रहारा दो प्रसिद्ध स्थान विद्याप्राप्ति हेतु निश्चित व प्रसिद्ध थे।

इन अग्राहारा में अधिगम प्रक्रिया तीन सोपानों में विभक्त होती थी। यह सोपान व अवस्थाए भी कहलाते है- श्रवण, मनन व निद्धिध्यासन।

श्रवण- श्रवण द्वारा समस्त सूचना को सुनकर व पढ़कर एकत्र किया जात है, जिसे एक प्रकार से अदा प्रक्रिया या इनपुट (Input) सोपान का सम्प्रेषण है।

मनन (Contemplation)- इस सोपान मे वाद-विवादों द्वारा सन्देहों व भ्रान्तियों को दूर किया जाता है। यह वाद-विवाद विभिन्न विषयों पर छात्र-छात्र अथवा छात्र-शिक्षक के मध्य होते है, इसमें सूचनाओं को गहनता से विष्लेशण किया जाता है। यह 'प्रक्रिया' या 'प्रोसेस' (Process) सोपान कहलाता है।

निद्धिध्यासन (Meditation)- इस तीसरे सोपान के अंतर्गत समस्त सन्देहों को एकदम स्पष्ट किया जाता है। प्रत्यय स्पष्ट हो जाने पर, प्राप्त ज्ञान को, समस्याओं के हल करने में प्रयोग किया जाता है। इस सोपान के अंतर्गत ज्ञान छात्रों द्वारा अवशोशित (Imtibe) कर लिया जाता है, जिसके फलस्वरूप छात्र में व उसके व्यक्तित्व में व्यावहारिक परिवर्तन परिलक्षित होने लगते हैं। इसे आजकल की 'प्रदा' या आउटपुट (Output) सोपान माना जाएगा।

विभिन्न शिक्षण विधियॉ जो शिक्षण अधिगम हेतु बनाई गई है, कुछ निम्न प्रकार है-

1- सूत्र विधि- जब ज्ञान का स्वरूप अधिक विकसित एवं विस्तृत हो जाता है इतने विस्तार से स्मरण कर पाना कठिन हो जाता है, ऐसे ज्ञान को स्मरण करने के लिए सूत्रों (Formula), चिन्हों (Telli) का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। विज्ञान व गणित में सूत्रों का प्रयोग इसका अच्छा उदाहरण है। फूलों से सूत्र, दर्शन के सूत्र- तत्वमसि वह जो तुम हो आदि सूत्र के सामान्य उदाहरण है। यह उदाहरण श्वेताष्वर उपनिषद् में दर्शाया है।

2- शाब्दिक विधि- शब्दों का मूल अर्थ व मौलिक रूप एवं शब्द में अन्तर्निहित भाव, शाब्दिक विधि के अंतर्गत आते हैं, किसी भी अप्रत्यक्ष प्रत्यय का वर्णन, उस प्रत्यय के शाब्दिक अर्थों के गहन अध्ययन से किया जा सकता है। उदाहरणार्थ वृह्दारण्यक उपनिषद् में 'पुरूष' शब्द का शाब्दिक रूप 'पुरिष्य' से लिया गया है, जिसका अर्थ 'वह एक' से संबंधित है, जो एक किले के समान दिल में निवास करता है। इसी प्रकार अनेक शब्दों को शाब्दिक विधि द्वारा समझा जा सकता है।

3- कहानी विधि- प्राचीनकाल से ही नैतिक शिक्षा देने हेतु कथा-कहानियों का प्रयोग होता रहा है। देखा गया है कि सीधी-सादी नपी-तुली भाषा में दिये गये उपदेश प्रायः प्रभावहीन ही होते हैं, यहीं यह भी देखा गया है कि उपनिषद यदि कथा रूप में वर्णित किया जाता है, तो प्रभावकारी होता है। उदाहरणतया कठोपनिषद में मानव संवेगों को प्रायः इन्द्र व राक्षसों के मध्य युद्ध द्वारा कथा रूप में

वर्णित किया गया है। आजकल की पुस्तक 'पंचतत्र' इसी कथा प्रणाली विधि का प्रयोग है, जिसमें पशु-पक्षियों एवं जानवरों पर आधारित कहानियों से शिक्षा दी गई है।

4- तुलना विधि - कुछ अप्रत्यक्ष प्रत्यय जो तर्क-वितर्क द्वारा स्पष्ट नहीं होते। उन्हें सरलता से उपयुक्त उपमा आदि के प्रयोग से समझाया जा सकता है। उदाहरणतया याज्ञवल्क्य उपनिषद में व्यक्ति विशेष की आत्मा एवं सार्वभौमिक आत्म का प्रत्यय स्पष्ट करने हेतु क्रमशः नदी व सागर से तुलना की गई है। इसमें नदी को व्यक्ति से व सागर को ईश्वरीय आत्म से स्पष्ट किया गया है।

5- वाद-विवाद विधि- इस विधि का उपनिषद में अत्याधिक वर्णन हुआ है। इस विधि में छात्र व शिक्षक साथ बैठकर किसी समस्या पर विचार विमर्श करते है व किसी उपयुक्त व सर्व स्वीकृत उत्तर पर पहुच जाते है। आधुनिक प्रजातान्त्रिक शिक्षा प्रणाली में वाद-विवाद विधि का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है व इस विधि को सर्वाधिक प्रसिद्धि मिल रही है। यह विधि समस्या समाधान की एक तार्किक एवं विश्लेशणात्मक विधि मानी जाती है।

6- संश्लेषण विधि- यह वाद-विवाद विधि की पूरक विधि है। वाद विवाद द्वारा प्राप्त विषयों को संश्लेशित कर एक सामान्य निष्कर्ष या संक्षेपकर निचोड़ प्राप्त किया जाता है।

7- व्याख्यान विधि- उपनिषद में छात्रों को अभिप्रेरित करने हेतु व्याख्यानों को एक प्रभावकारी विधि माना गया है। व्याख्यानों द्वारा प्रायः कठिन प्रत्ययों और बिन्दुओं को स्पष्ट करने में सहायता मिलती है। कठिन व्याख्या भी व्याख्यानों द्वारा आसानी से समझाई जा सकती है।

8- अनुक्रमण विधि- इस विधि में पाठ्य वस्तु को प्रश्नों की एक लड़ी या क्रम के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। एक प्रश्न का उत्तर दूसरे प्रश्न के रूप में आगे आता है व एक तारतम्य रूप में प्रश्न हल किये जाते हैं। यही क्रम चलता रहता है व सीखने वाला समस्या के अन्तिम चरण पर जा पहुचता है। आजकल वैज्ञानिक व दार्शनिक विषयों में इसी विधि का प्रयोग फिर से होने लगा है। अभिक्रमित अधिगम व इसकी रेखीय प्रणाली प्राचीनकाल की तारतम्य विधि के समान ही है।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

भाग-1

प्रश्न.1 विश्व साहित्य की प्राचीनतम रचना क्या है?

प्रश्न.2 वाद-विवाद विधि की पूरक विधि है।

प्रश्न.3 अग्राहारा में अधिगम प्रक्रिया कितने सोपानों में विभक्त होती थी?

प्रश्न.4 औपनिषदिक विचारकों ने शिष्यों को ज्ञान देने की प्रमुख शिक्षण विधियॉं बताई है।

5.5 उपनिषद और शिक्षक

उपनिषद दर्शन में शिक्षक का बहुत महत्व है। उससे आशा की जाती है कि वह विद्यार्थी को अच्छा व्यवहार सिखायेगा जो कि धर्म का मूल मंत्र है, इसलिए शिक्षक का अत्यन्त योग्य होना आवश्यक है। शिक्षक ही विद्यार्थी को अज्ञान के अन्धकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाने वाला होता है। इसलिए उसका अत्यन्त आदर किया जाता है। ज्ञान के लिए शिक्षक का होना अनिवार्य है। कठोपनिशद के अनुसार 'न नरेणावरेण प्रोक्त एश सुविज्ञेयो बहुधा चिनयमानः' अर्थात् शिक्षक तथा विद्यार्थी का संबंध पिता एवं पुत्र की भॉंति होता है। शिक्षक विद्यार्थी से प्रेम करता है। वह उसके आचरण पर नियंत्रण भी रखता है। उसकी बीमारी में उसकी सेवा भी करता है।

शिक्षकों से अपेक्षा:-उपनिषद में शिक्षकों को कहा गया है कि 'सदा सत्य बोलो, अपना कर्तव्य करों। सीखने-सिखाने की उपेक्षा न करो। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् वैवाहिक जीवन व्यतीत करो, सत्यता, सद्व्यवहार, व्यक्तिगत सद्भावना व सम्पन्नता को नकारो मत। अपने माता-पिता, गुरूजन व अतिथि गणों के प्रति सत्कार भावना रखो। मेरे चरित्र में जो अनुकरणीय है उसे प्राप्त करो किन्तु मुझमें जो बुराई या अनैच्छिक है, उसका बहिष्कार करो। ज्ञानियों का सदा आदर करो। जब कभी भी तुम अनिश्चित या सन्देह में हो कि किसी परिस्थिति में कैसा व्यवहार किया जाए तो उस दशा में महान शिक्षक जनों का अनुसरण करो। उपनिषद में छात्र शिक्षक सम्बंध एक सूत्र द्वारा मार्ग दर्शन का कार्य करता है-

ऊँ सहना भवतु - एक दूसरे की रक्षा करें।

ऊँ सहनो भुनक्तु- अर्जित ज्ञानोपलब्धियों तथा सिद्धियों का मिलजुल कर उपयोग करें।

ऊँ सा विद्विषावहै- हम एक दूसरे से ईर्ष्या न करें।

ऊँ सह वीर्य करवावै - एक दूसरे की शक्ति में वृद्धि करें।

ऊँ तेजस्वीनाम अधीतोमस्तु- हम दोनों का तेज साथ-साथ बढ़े।

5.5.1 उपनिषद और शिक्षार्थी

विद्यार्थी के लिए उपनिषद में आचरण की विधियॉ स्पष्ट रूप से दी गई है। सर्वप्रथम यह आवश्यक माना गया है कि विद्यार्थी में सीखने की लगन हो, बिना लगन वाला विद्यार्थी कुछ नहीं सीख सकता। विद्यार्थी का शिक्षण के द्वारा चरित्र का उत्थान करना आवश्यक है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य चरित्र निर्माण है। बुद्धि का उचित विकास बिना चरित्र के विकास के संभव नहीं है। इसलिए विद्यार्थियों से आशा की जाती है कि वे ज्ञानार्जन के साथ-साथ चरित्र का विकास भी करते रहें। अपने गुरू की सेवा उनमें अच्छे गुणोंका विकास होना अनिवार्य समझा जाता है। विद्यार्थी को इन्द्रिय संयम द्वारा उचित कर्तव्यों का पालन करते रहना चाहिए व ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर विद्यार्जन को अपना परम लक्ष्य मानना चाहिए। 'विद्या' से तात्पर्य छात्र को ज्ञान, विज्ञान, सीखना, शिक्षा तथा दर्शन इत्यादि है। ज्ञान को हमारे दार्शनिक 'मनुष्य की तीसरी ऑख' कहते हैं, जो उसे अपने सब कार्यों में सूझ देता

5.5.2 उपनिषद और अनुशासन

उपनिषद शिक्षा प्रणाली में स्व-अनुशासन पर सर्वाधिक बल दिया गया है। इसकें अन्तर्गत अनुशासन के तीन अंग या भाग होते हैं-

1. प्रथम अंग के अन्तर्गत छात्र में ज्ञान प्राप्त करने की तीव्र इच्छा का होना है। यह छात्र में आन्तरिक अभिप्रेरक की अपेक्षा करता है। इससे छात्र में रूचि का विकास होगा। रूचि जागृत होने से अनुशासन की समस्या स्वतः हल हो जाती है।

2. स्वतः अभिप्रेरण के बाद आत्म प्रत्यय को विकसित करना आता है। अर्थात छात्र को यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाना चाहिए कि वह क्या बनना या सीखना चाहता है।

3. आत्म प्रत्यय निर्माण के पश्चात छात्र को आत्म-संयमी एवं आत्म निर्देशित होना चाहिए। इसका अभ्यास करने हेतु छात्र को समाज द्वारा स्वीकृत नैतिक सिद्धान्तों का पालन करना पड़ता है। इसी को

धर्म कहा गया है। यदि इस धर्म का पालन में कहीं सन्देह या द्वन्द आ जाए तो पात्र को समाज के महान व्यक्तियों के उदाहरणों से शिक्षा लेकर अग्रसरण करना चाहिए।

स्व-अनुशासन के साथ-साथ प्रभावात्मक अनुशासन (Impressionistic discipline) को भी स्वीकारा गया है। अर्थात छात्र को गुरू को आदर्श मानकर उसके अनुसार ही व्यवहार व आचरण करना चाहिए। उसकी आज्ञा को शिरोधार्य कर अपना पथ प्रदर्शन करना चाहिए।

5.6 उपनिषदीय शैक्षिक दर्शन

ब्रह्म विचार- उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म ही वह परम सत्ता या तत्व है जिससे विश्व की उत्पत्ति होती है व अन्त में विश्व ब्रह्म में विलीन हो जाता है। ब्रह्म के दो रूप उपनिषदों में वर्णित है- परब्रह्म और अपरब्रह्म। परब्रह्म अमूर्त है जबकि अपरब्रह्म मूर्त है। परब्रह्म निर्गुण है, स्थिर है, जबकि अपरब्रह्म सगुण व अस्थिर है। परब्रह्म की व्याख्या 'नेति-नेति' कहकर की गई है, जबकि अपरब्रह्म की व्याख्या 'इति-इति कहकर की गई है। फिर भी देखा जाए तो दोनों ही ब्रह्म के दो पक्ष है। ब्रह्म नित्य व शाश्वत है। वह काल के अधीन नहीं है। ब्रह्म की विशेषताओं से परे है। अर्थात वह विश्व में व्याप्त भी है और विश्व से परे भी है। वह उत्तर, पूर्व, पश्चिम, दक्षिण किसी भी दिशा में सीमित नहीं है।

ब्रह्म को ज्ञान का अनन्त आधार कहा गया है। ब्रह्म ज्ञान का विषय नहीं है पर सभी उपनिषदों का लक्ष्य है। ब्रह्मज्ञान के बिना कोई भी ज्ञान संभव नहीं। हालॉकि ब्रह्म को निर्गुण कहा गया है पर ब्रह्म गुणों से शून्य नहीं है। ब्रह्म के तीन स्वरूप लक्षण बतलाए गए हैं। विशुद्ध सत्, विशुद्ध चित् और विशुद्ध आनन्द। परन्तु यह सत्-चित्-आनन्द व्यावहारिक जगत के सम्-चित्-आनन्द से परे है। अतः स्वभावतः ब्रह्म को 'सच्चिदानन्द' कहा गया है। जीव और आत्मा: आत्मा उपनिषदों के अनुसार परम तत्व है। आत्मा और ब्रह्म अभिन्न है। शंकराचार्य ने भी आत्मा व ब्रह्म को एक माना है। 'तत्वमसि' (वही तू है) व 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) कह कर सम्बोधित किया गया है। आत्मा मूल चैतन्य है, वह ज्ञाता नहीं, ज्ञेय है। आत्मा जरा से मुक्त है, रोग व मृत्यु से मुक्त है, पाप, शोक, भूख, प्यास से मुक्त है। प्रजापति से प्रेरणा पाकर, देवताओं के प्रतिनिधि इन्द्र तथा दानवों के प्रतिनिधि विरोचन बत्तीस वर्ष की कठिन तपस्या के बाद जब प्रजापति के पास आए तो प्रजापति ने उपदेश देते हुए कहा कि 'जल मे झॉकने पर या दर्पण में देखने पर जो पुरूष दिखाई देता है, वही आत्मा है' तो प्रजापति ने अन्त में शंका निवारण

हेतु उपदेश दिया 'वास्तविक आत्मा आत्म चैतन्य, साक्षी, स्व प्रकाश है। यह स्वतः सिद्ध है। वह प्रकाशों का प्रकाश है।'

उपनिषदों के अनुसार जीव और आत्मा में भेद है। जीव वैयक्तिक आत्मा और आत्मा परमात्मा है। जीव और आत्मा एक ही शरीरर में अन्धकार व प्रकाश में निवास करते हैं। जीव कर्मफल भोगता है, सुख-दुःख अनुभव करता है।। अज्ञान के फलस्वरूप उसे दुःख व बंधन का सामना करना पड़ता है। आत्मा ज्ञानी हैं, कर्म और पाप पुण्य से परे है। आत्मा का ज्ञान हो जाने से जीव दुःख और बंधन से छूट जाता है। उपनिषदों में जीवात्मा के स्वरूप पर भी प्रकाश डाला गया है, वह शरीरर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि से अलग तथा परे है। उसका पुनर्जन्म होता है। पुनर्जन्म कर्मों के अनुसार नियमित होता है। जीवात्मा की चार अवस्थाए भी उपनिषदों में वर्णित हैं- जागृत, स्वप्न, सुशुप्ति व तुरीयावस्था। जागृत अवस्था में जीवात्मा विश्व कहलाता है। वह बाह्य इन्द्रियों द्वारा सांसारिक विषयों का भोग करता है। सुशुप्ति अवस्था में जीवात्मा प्रज्ञा कहलाता है, जो शुद्ध चित्त के रूप में विद्यमान रहता है। आन्तरिक वस्तुओं को नहीं देखता, तुरीयावस्था में जीवत्मा को आत्मा कहा जाता है।

उपनिषद के शैक्षिक दृष्टिकोण को समझने हेतु सर्वप्रथम पूर्व में वर्णित तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं आचार मीमांसा के आधार पर मूल सिद्धान्तों की समीक्षा का पुनरावलोकन निम्न रूप में सामने आता है। ब्रह्म की अपरोक्ष अनुभूति वाणी द्वारा न होकर, इन्द्रिय ज्ञान से परे, परम ज्योतियों की भी ज्योति है, जिसके द्वारा संसार के सभी जाज्वल्यमान पदार्थ सूर्य, चन्द्र, तारे प्रकाशमान है। जीव अनन्त ज्ञान व शक्ति का स्त्रोत है। पंचकोष, षट्चक्र, तीन शरीरर, पंचमहाभूत से सुशोभित है। उपनिषद के अनुसार आत्मतत्व की अनुभूति के लिए निम्नलिखित प्रथम चार कोषों का विकास आवश्यक है। अन्नमय कोष स्वस्थ हो, प्राणमय कोष क्रियाशील हो, मनोमय कोष (मन) वश में हो तथा विज्ञानमय कोष (बुद्धि) विकसित हो तो आनन्दमय कोष (आत्मतत्व) की अनुभूति होना स्वाभाविक है। उपनिषद में कहा गया है कि ब्रह्म और आत्मा एक है। उपनिषद् में सर्वाधिक व्याख्या आत्मतत्व की ही है। कुछ उपनिषद् में आत्मा, ब्रह्म, सत्य और आनन्द को एक ही अर्थ में लिया गया है। कुछ आत्मा और ब्रह्म को एक मानते है। कुछ आत्मा को ब्रह्म का अंश मानते है। कुछ आत्मा को भोक्ता मानते हैं व ब्रह्म सृष्टा व दृष्टा कुछ भी हो आत्मा नित्य, सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान है व ब्रह्म रूप में प्रतिष्ठित है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ईश्वर द्वारा निर्मित है। मूर्त व अमूर्त रूप में देवताओं की शक्तियॉ ब्रह्म पर ही निर्भर है। आत्मानुभूति के निमित्त ज्ञान, कर्म, योग, साधना आवश्यक है। मानव जीवन का अन्तिम उद्देश्य

आत्मानुभूति है। इससे दुःखों से निवृति व आनन्द की अनुभूति होती है। ब्रह्म सर्वव्यापी है। पृथ्वी, अंतरिक्ष व आकाश तीनों लोको को तीन देवता अग्नि, वायु व सूर्य में बॉट दिया है। प्रथम चार कोषों के लिए अन्तिम कोष का प्रकाश आवश्यक माना है। परन्तु साथ-साथ यह भी माना है कि प्रथम चार कोषों का विकास तब तक नहीं होता जब तक अन्तिम कोष आनन्दमय कोष के प्रकाश से प्रकाशित नहीं होते। सबसे पहले मनुष्य को अपने आत्मतत्व में विश्वास होना चाहिए, जिज्ञासा होनी चाहिए, फिर आदर्श आचरण द्वारा अपने प्रथम चार कोषों (शरीरर, प्राण, मन, बुद्धि) का विकास करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य आत्मानुभूति कर सकता है।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

भाग -2

प्रश्न 1 उपनिषद शिक्षा प्रणाली में किस अनुशासन पर सर्वाधिक बल दिया गया है?

प्रश्न 2 ब्रह्म के कौन से दो रूप उपनिषदों में वर्णित है?

प्रश्न 3 उपनिषद के अनुसार विद्यार्थी को अज्ञान के अन्धकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाने वाला होता है।

प्रश्न 4 ऊँ सहना भवतु का क्या अर्थ है?

5.6 सारांश (Summary)–

उपनिषद शिक्षा का संबंध किसी इतिहास के अनुबंधित एवं विशेष समय की सीमा से नहीं है। यह शिक्षा तो सार्वभौमिक शिक्षा के रूप में है, जो आगे आने वाले समय में भी प्रयोग की जायेगी क्योंकि इस शिक्षा के समस्त पहलुओं का संबंध आत्मा एवं आत्मन् अथवा स्वयं से संबंधित है। यह शिक्षा मानव जीवन के विभिन्न सोपानों को पंच कोषो के अन्तर्गत वर्णित करती है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय व आनन्दमय कोषों को वर्णन व विकास, मानव जीवन के क्रमित विकास के साथ चरम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक है। उपनिषद शिक्षा व्यवस्था आज के संदर्भ में शिक्षा के उद्देश्यों का उपयुक्त वर्गीकरण करती है, आज भी हमें जीविकोपार्जन, उत्तम स्वास्थ्य, बौद्धिकता, ज्ञान, तत्वज्ञान

एवं नैतिकता के विभिन्न पहलूओं के संदर्भ में शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त कर सफल जीवन जीना है। उपनिषदीय शिक्षा इन उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक है। शिक्षा के पाठ्यक्रम में विषय वस्तु में परा-अपरा का ज्ञान व उनसे संबंधित पुरूषार्थ एवं विषयों का ज्ञान, छात्र को न केवल विकसित करते हैं, अपितु उसे चेतन, आत्मोव्रत आत्मन् के प्रति उन्नत रूप प्राप्त करने में सहायक हैं, जो आज के युग में भी आत्म शांति से भरपूर जीवन जीने की प्रेरणा देता है। पाठ्यक्रम की विषय वस्तु को छात्र के लिए बोधगम्य बनाने हेतु जो विधियॉं उपनिषद में वर्णित हैं, उनका वहीं व विकसित स्वरूप आज भी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को सरल व प्रभावशाली बनाने में सफल सिद्ध हो रहा है। व्याख्या विधि, सूत्र प्रणाली, संश्लेषण, वाद-विवाद, कहानी विधि व तारतम्य प्रणाली आदि के साथ स्वतः शिक्षण या स्वतः अन्वेषण विधि आज की प्रगतिशील शिक्षण संस्थाओं का नारा है।

उपनिषद अनुशासन का सकारात्मक दृष्टिकोण छात्रों को स्वअनुशासन के प्रति प्रेरित करता था। यह छात्रों के आत्म प्रत्यय के विकास में सहायता देता है। दण्ड का प्रयोग कभी-कभी करने से छात्रों में बदले की भावना एवं विरोधी अभिवृत्ति पनपने नहीं पाती थी। यह छात्र-शिक्षक सम्बंध भी उपनिषदीय शिक्षा के अनुसार आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। शिक्षक एक पथ प्रदर्शक, मित्र एवं परामर्शदाता होने के साथ-साथ एक आदर्श अभिभावक की भूमिका भी निभाते हैं, जो छात्र के उचित विकास के लिए अन्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है। इसमें अग्रहारा में शिक्षण-अधिगम व्यवस्था, शिक्षण व अधिगम हेतु आदर्श वातावरण प्रस्तुत करते हैं। यह आजकल के विश्वविद्यालयों की भूमिका निभाते हैं। जहॉं छात्र अपने जीवन लक्ष्यों की प्राप्ति करते हैं और एक सफल जीवन व्यतीत करते हैं। उपनिषदों ने प्राचीन काल से ही भारत के लोगों को यह शिक्षा देने का काम किया है कि संसार का माया मोह निरर्थक है। इसमें फंसने का अभिप्राय है कि व्यक्ति अपने आप को ही मार रहा है। उपनिषदों ने संसार को एक घोर घना जंगल माना है। जिसमें व्यक्ति आकर अपने वास्तविक ध्येय से अथवा मार्ग से भटक जाता है। इस भटकन को समाप्त कर अपने ध्येय पर ध्यान देना उपनिषदों की शिक्षा है। यही कारण है कि भारत के लोग भौतिकवादी चकाचौंध को अपने लिए कभी भी उचित नहीं मानते। आज जब भारत पश्चिम की भौतिकवादी चकाचौंध में चुंधियाया हुआ है तब भी भारत में अन्य देशों से अधिक लोग ऐसे हैं जो ईश्वर को याद रखते हैं और अपने कामों को बहुत अधिक ईमानदारी के साथ निष्पादित करने का प्रयास करते हैं। उपनिषदों की शिक्षा का ही प्रभाव है कि भारत के लोग भौतिकवादी चकाचौंध को अपने लिए उपयुक्त नहीं मानते। भारत के लोगों की ऐसी सोच का कारण उपनिषदों की

दार्शनिक विचारधारा ही है। उपनिषदों की एक बड़ी विशेषता यह है कि इनमें कथाओं के माध्यम से बड़ी बात को बहुत सरल ढंग से समझाने का प्रयास किया गया है। जिससे भारतीय जनमानस पर इनका अमिट प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है । यह अलग बात है कि लोग संस्कृत नहीं जानते पर संस्कृति की स्वाभाविक रूप से पालन करने की अद्भुत कला भारतीय लोगों में देखी जाती है। जिसे वे परम्परा से एक दूसरे से सीखकर, समझकर या सुनकर अपना लेते हैं और उसके अनुसार अपने जीवन को ढाल लेते हैं।

5.7 शब्दावली (Glossary)

श्रवण- श्रवण द्वारा समस्त सूचना को सुनकर व पढ़कर एकत्र किया जात है, जिसे एक प्रकार से अदा प्रक्रिया या इनपुट (Input) सोपान का सम्प्रेषण है।

मनन (Contemplation)- इस सोपान मे वाद-विवादों द्वारा सन्देहों व भ्रान्तियों को दूर किया जाता है। यह वाद-विवाद विभिन्न विषयों पर छात्र-छात्र अथवा छात्र-शिक्षक के मध्य होते है, इसमें सूचनाओं को गहनता से विष्लेशण किया जाता है। यह 'प्रक्रिया' या 'प्रोसेस' (Process) सोपान कहलाता है।

निद्धिध्यासन (Meditation)- इस तीसरे सोपान के अंतर्गत समस्त सन्देहों को एकदम स्पष्ट किया जाता है। प्रत्यय स्पष्ट हो जाने पर, प्राप्त ज्ञान को, समस्याओं के हल करने में प्रयोग किया जाता है। इस सोपान के अंतर्गत ज्ञान छात्रों द्वारा अवशोशित (Imtibe) कर लिया जाता है, जिसके फलस्वरूप छात्र में व उसके व्यक्तित्व में व्यावहारिक परिवर्तन परिलक्षित होने लगते हैं। इसे आजकल की 'प्रदा' या आउटपुट (Output) सोपान माना जाएगा।

आत्मानुभूति का विकास- उपनिषदों के अनुसार शिक्षा का शिक्षा का पॉचवा उद्देश्य आत्मानुभूति है, अर्थात् आत्मा या आनन्द का सर्वोच्य स्थान हैं। यह वह स्तर है, जहॉ व्यक्ति को ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान में समस्त भेदों का अन्तर समाप्त हो जाता है। यह छात्र की आत्मा का अन्तिम स्वरूप 'आनन्दमय' है। मोक्ष प्राप्ति ही शिक्षा का पूर्ण उद्देश्य है (सा विद्या या विमुक्तये)।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

भाग -1

उत्तर.1 वेद।

उत्तर. 2 संश्लेषण विधि

उत्तर. 3 तीन

उत्तर. 4 स्व-खोज विधि

भाग -2

उत्तर. 1 उपनिषद्य शिक्षा प्रणाली में स्वअनुशासन पर सर्वाधिक बल दिया गया है।

उत्तर. 2 परब्रह्म और अपरब्रह्म ।

उत्तर. 3 शिक्षक

उत्तर. 4 एक दूसरे की रक्षा करें।

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008).*उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006).*शैक्षिक समाजशास्त्र*.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (USEFUL BOOKS)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008).*उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006).*शैक्षिक समाजशास्त्र*.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5.11निबन्धात्मक प्रश्न

1. उपनिषदों के अर्थ पर प्रकाश डालिए तथा उपनिषदों के अनुसार शिक्षक की भूमिका का वर्णन कीजिये?

2. उपनिषदों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य क्या है? विस्तार से वर्णन कीजिये।

3. उपनिषदों के अनुसार शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया क्या थी? उपनिषदों में वर्णित शिक्षण विधियों का उल्लेख कीजिए?

4. उपनिषदों में वर्णित शिक्षार्थी की भूमिका का उल्लेख कीजिए।

5. उपनिषदों के अनुसार अनुशासन के महत्व का वर्णन कीजिये।

इकाई 6 : सांख्य दर्शन

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 सांख्य दर्शन का अर्थ एवम् विशेषताएँ
6.4 सांख्य दर्शन की तत्व मीमांसा
6.5 सांख्य दर्शन की ज्ञान मीमांसा
6.6 सांख्य दर्शन की मूल्य मीमांसा
6.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
6.8 सांख्य दर्शन के मूल सिद्दांत
6.9 सांख्य दर्शन और शिक्षा
6.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
6.11 सारांश
6.12 शब्दावली
6.13 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
6.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.15 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना – (Preface)

षठ्-दर्शनों में सांख्य दर्शन सबसे प्राचीन दर्शन है, सांख्य एक स्वतंत्र दर्शन है जिसमें शुद्ध ज्ञान का विवेचन किया गया है महर्षि कपिल वह पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने वेद साहित्य में निहित दार्शनिक सिद्धांतों का विवेचन शुद्ध रूप में करके सांख्य दर्शन का प्रतिवेदन किया। कपिल के दो ग्रंथ पाए जाते हैं एक **तत्व समास** दूसरा **संख्या सूत्र** । तत्व समास सांख्य दर्शन का प्राचीनतम ग्रंथ है। तत्व समास 22 मे सूत्र है, और सांख्य सूत्र 537 सूत्र हैं। यह अद्वैत वेदांत से सर्वथा विपरीत मान्यताएँ रखने वाला दर्शन हैं । इसकी स्थापना करने वाले व्यक्ति महर्षि कपिल कहे जाते हैं । किसी समय भारतीय संस्कृति में सांख्य दर्शन का स्थान अत्यंत ऊँचा था । सांख्य दर्शन भारतीय दर्शन की वह विचारधारा है जो इस ब्रह्मांड को प्रकृति एवं पुरुष के योग से निर्मित मानती है और यह मानती है कि

प्रकृति एवं पुरुष दोनों ही अनादि और अनंत हैं। यह ईश्वर के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं करती और आत्मा को पुरुष चेतन तत्व मानती है और यह प्रतिपादन करती है कि मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति है जो विवेक, ज्ञान एवं योग साधना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। महाभारतकार ने यहां तक कहा है कि इस लोक में जो भी ज्ञान है वह सांख्य से आया है। महाभारत में दार्शनिक विचारों की जो पृष्ठभूमि है उसमें सांख्यशास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है, शांति पर्व के कई स्थलों पर सांख्य दर्शन के विचारों का बड़े काव्यमय और रोचक ढंग से उल्लेख किया गया है। सांख्य दर्शन का प्रभाव गीता में प्रतिपादित दार्शनिक पृष्ठभूमि पर पर्याप्त रूप से विद्यमान है, सांख्य दर्शन की सबसे बड़ी महानता यह है कि इसमें सृष्टि की उत्पत्ति भगवान के द्वारा नहीं मानी गई है बल्कि इसे एक विकासात्मक प्रक्रिया के रूप में समझा गया है , और माना गया है कि सृष्टि अनेक- अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरने के बाद अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुई है । कपिलाचार्य को कई अनीश्वरवादी मानते हैं पर सत्यार्थप्रकाश जैसे ग्रंथों में इस धारणा का निषेध किया गया हैं।

6.2 उद्देश्य: (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

1. सांख्य दर्शन के अर्थ को समझ पायंगे |
2. सांख्य दर्शन की विशेषताओ को जान सकेंगें ||
3. सांख्य दर्शन की तत्व-मीमांसा को समझ सकेंगे |
4. सांख्य दर्शन की ज्ञान-मीमांसा को समझ सकेंगे
5. सांख्य दर्शन की मूल्य मीमांसा को समझ सकेंगे
6. सांख्य दर्शन के सिद्वांतों का वर्णन कर सकेंगें
7. सांख्य दर्शन और शिक्षा का अवलोकन कर पायंगे।

6.3 सांख्य दर्शन का अर्थ (Meaning of Sankhya Philosophy)

सांख्य दर्शन जिसका शाब्दिक अर्थ संख्या अथवा अंक है, इसका उल्लेख प्रत्यक्ष तौर पर भगवतगीता में भी है और अप्रत्यक्ष रूप में उपनिषदों में भी है इसके प्रवर्तक महर्षि कपिल मुनि थे।

सांख्य दर्शन जैन धर्म से संबंधित है | सांख्य दर्शन एक द्वैतवादी दर्शन हैं जिसमें दो स्वतंत्र तत्व स्वीकार किये गये हैं – पुरुष और प्रकृति । पुरुष सांख्य दर्शन का आत्म तत्व हैं जो शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि से भिन्न हैं, वह चैतन्य स्वरूप हैं । सांख्य दर्शन का दूसरा तत्व प्रकृति हैं, जिसे त्रिगुणात्मिका कहा गया हैं। सांख्य के अनुसार 25 मूल तत्व होते हैं । जिनमें प्रकृति, बुद्धि, महत, चेतना, आकाश, वायु, अग्नि ,जल, पृथ्वी, स्पर्श, दृष्टि, स्वाद, गन्ध, पांच कर्मेंद्रियां - वाक्, धारणा , गति, उत्सर्जन, एवं प्रजनन, मस्तिष्क, पुरुष इत्यादि हैं | मूल तत्वों की प्रकृति प्रथम है, प्रकृति का तात्पर्य यहां द्रव्य (Matter) से है। इस दर्शन के अनुसार सृष्टि अथवा विकास किसी दैविक शक्ति की प्रक्रिया नहीं है बल्कि प्रकृति के अंतरवर्ती स्वभाव का परिणाम है। इसके अनुसार प्रकृति से बुद्धि महत का उदय होता है और परिणामत: आत्म चेतना की उत्पत्ति होती है। आत्म चेतना या अहंकार पांच अन्य सूक्ष्म तत्वों को जन्म देता है जो है क्रमशः - आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी है। इन पांच सूक्ष्म तत्वों से पांच भौतिक तत्व अर्थात पांच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। पुनः इसके आधार पर पांच ज्ञानेंद्रियों श्रुति, स्पर्श, दृष्टि, स्वाद, एवं गँध तथा पांच कर्मेंद्रियों वाक्, धारणा, गति, उत्सर्जन एवं प्रजनन की उत्पत्ति होती है।

सांख्य दर्शन की परिभाषा- सांख्य दर्शन भारतीय दर्शन की वह विचारधारा है जो इस ब्रह्मांड को प्रकृति एवं पुरुष के योग से निर्मित मानती है। और यह मानती है कि प्रकृति एवं पुरुष दोनों ही अनादि और अनंत है। यह ईश्वर के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं करती और आत्मा को पुरुष (चेतन तत्व) मानती है और यह प्रतिपादन करती है कि मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति है जो विवेक, ज्ञान एवं योग साधना द्वारा प्राप्त किया जा सकता हैं।

6.3.1 सांख्य दर्शन की विशेषताएँ - Features of Sankhya Philosophy

सांख्य दर्शन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1- प्रकृति और पुरुष दोनों मूल तत्व हैं।
2- पुरुष की स्वतंत्र सत्ता हैं और वह अनेक हैं।
3- मानव प्रकृति एवम पुरुष का योग हैं।
4- यह सृष्टि प्रकृति एवम् पुरुष के योग से निर्मित हैं।

5- मुक्ति के लिये विवेक ज्ञान आवश्यक होता हैं।

6- मानव के जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति प्राप्त हैं।

7- विवेक ज्ञान के लिये योग साधना मार्ग आवश्यक हैं ।

8- योग मार्ग के अनुयायी के लिये नैतिक आचरण की आवश्यकता हैं।

9- मानव का विकास उसके जड़ एवम् चेतन दोनों तत्वों पर निर्भर करता हैं।

6.4 सांख्य दर्शन की तत्व मीमांसा – (Metaphysics of Sankhya Philosophy)

सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि की रचना प्रकृति एवं पुरुष दो तत्वों के योग से हुई है इसलिए सांख्य को द्वैतवादी दर्शन की संज्ञा भी दी जाती है। इसमें प्रकृति को सत, रज तथा तम इन तीन गुणों का समन्वय माना गया है। संसार का उपादान पदार्थजन्य से हुआ है और पुरुष चेतन तत्व है जिसे आत्मा का पर्याय मानते हैं। संसार के प्रत्येक जीव में एक स्वतंत्र आत्मा की सत्ता रहती हैं। सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरुष दोनों ही अनादि तथा अनंत हैं। प्रकृति को जड़ तथा पुरुष को चेतन तत्व माना गया है बिना जड़ (प्रकृति) माध्यम के चेतन (पुरुष) कोई क्रिया नहीं कर सकता। अतः सृष्टि की रचना के लिए प्रकृति और पुरुष का सहयोग आवश्यक है और इनकी अपनी - अपनी सत्ता है। सांख्य - दर्शन में प्रकृति तथा पुरुष के बीच अन्य 23 तत्वों को भी माना गया है, इस प्रकार सांख्य दर्शन में तत्वों की संख्या 25 है।

सृष्टि की रचना के संबंध में संख्या ने **सत्कार्यवाद** सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धांत के अनुसार कार्य कारण में पहले से ही निहित होता है। यह सृष्टि भी प्रकृति में पहले से ही निहित थी, तभी तो इसकी उत्पत्ति संभव हुई। प्रकृति कारण है और सृष्टि इसका कार्य। कारण के कार्य रूप में परिवर्तित होने का नाम उत्पत्ति है और कार्य के पुनः कारण के रूप में परिवर्तित होने का नाम विनाश है । सांख्य ने सृष्टि के विकास क्रम को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है इसके अनुसार प्रकृति और पुरुष के योग से सर्वप्रथम महत् की उत्पत्ति हुई सांख्य में महत् का अर्थ है **- ब्रह्मांड बुद्धि** (Cosmic Intelligence) । इसके बाद महत् से अहंकार की उत्पत्ति हुई, अहंकार ब्रह्मांड की विभिन्नता का आधार है, आत्मभाव (Ego) का जन्मदाता है। अहंकार और सत् के योग से मनस और पांच ज्ञानेंद्रियो एवं पांच कर्मेंद्रियों की उत्पत्ति होती है । अहंकार और रजस के योग से पांच महाभूतों

(पृथ्वी, जल, तेज, ,वायु और आकाश) की उत्पत्ति होती है, और अहंकार और तमस के योग से पाँच तन्मात्राओं (रस, सुगंध, स्पर्श,ध्वनि,और दृश्य) की उत्पत्ति होती है।

भोग और मुक्ति के विषय में सांख्य मत अन्य वैदिक मतों से भिन्न है। इसके अनुसार पुरुष और प्रकृति के योग से जीव की उत्पत्ति ही भोग का प्रारंभ है और पुरुष के प्रकृति से अलग होने का नाम मुक्ति है, मोक्ष है। पुनर्जन्म के विषय में सांख्य उपनिषद दर्शन से सहमत है। इसके अनुसार हमारे सारे अनुभव सूक्ष्म शरीर पर एकत्रित होते हैं और सूक्ष्म शरीर अन्त:करण (मन बुद्धि अहंकार) और पांच तन्मात्राओं का योग है, यही सुख-दुख का अनुभव करता है और यही अनुभवों को संचित करता है।

6.5 सांख्य दर्शन की ज्ञान एवम् तर्क मीमांसा – (Knowledge and logic of Sankhya Philosophy)

सांख्य दर्शन ने ज्ञान को दो भागों में बाँटा है - एक पदार्थ ज्ञान, इसे वह यथार्थ ज्ञान कहता है और दूसरा प्रकृति- पुरुष के भेद का ज्ञान, इसे वह विवेक ज्ञान कहता है। सांख्य के अनुसार हमें पदार्थों का ज्ञान इंद्रियों द्वारा होता है। इंद्रियों से यह ज्ञान मन, मन से अहंकार, अहंकार से बुद्धि और बुद्धि से पुरुष को प्राप्त होता है, दूसरी ओर सांख्य यह मानता है कि पुरुष बुद्धि को प्रकाशित करता है, बुद्धि अहंकार को जाग्रत करती है, अहंकार मन को क्रियाशील करता है और मन इंद्रियों को क्रियाशील करता है, उनके और वस्तु के बीच संसर्ग स्थापित करता है। सांख्य का स्पष्टीकरण है कि इंद्रियां, मन, अहंकार, और बुद्धि यह सब प्रकृति से निर्मित है अतः ये जड़ है और जड़ में ज्ञान का उदय नहीं हो सकता। दूसरी ओर पुरुष केवल चेतन तत्व है, बिना जड़ प्रकृति के माध्यम के वह भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रकृति (जड़) और पुरुष (चेतन) दोनों का संयोग आवश्यक होता है। सांख्य ज्ञान प्राप्त करने के केवल तीन प्रमाण (साधन) मानता है - **प्रत्यक्ष, अनुमान** और **शब्द**। वस्तु जगत के ज्ञान के लिए यह तीनों प्रमाण (साधन) आवश्यक होते हैं। परंतु पुरुष तत्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें शब्दों पर ही निर्भर रहना होता है। शब्द द्वारा प्राप्त पुरुष तत्व के ज्ञान की अनुभूति के लिए सांख्य योग साधन मार्ग का समर्थन करता है।

6.6 सांख्य दर्शन की मूल्य एवम् आचार मीमांसा (Value and Ethics of Sankhya Philosophy)

सांख्य के दर्शन का आरंभ तीन दुखों से हुआ है - **भौतिक, अध्यात्मिक** और **आधिदैविक** । सांख्य के अनुसार दु:ख का मुख्य कारण अज्ञान है, अज्ञान का अर्थ है जब पुरुष बुद्धि के कार्य को अपना कार्य बना लेता है और प्रकृति, सत्, रज, और तम गुणों की अनुभूति करने लगता है तो उसे अज्ञान कहते हैं और इसी कारण वह सुख-दु:ख का उपभोक्ता हो जाता है। पदार्थों के वास्तविक स्वरूप को जानना, बुद्धि अहंकार, मन तथा इंद्रियों के कार्यों को समझना ही ज्ञान है। ज्ञान की स्थिति में ही मनुष्य सुख-दु:ख से अलग हो सकता है इसकी प्राप्ति के लिए सांख्य योग साधन मार्ग - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान समाधि, प्रत्याहार तथा धारण आदि को आवश्यक मानता है। यम का अर्थ यहां मन, वचन, तथा कर्म के संयम से माना जाता है। योग के अनुसार नियम पांच है। सांख्य - दर्शन मोक्ष के इच्छुकों को इन सब को अपने आचरण में उतारने का आदेश देता है। आचरण का संबंध जीवन के मूल्य से होता है। सांख्य के मार्गदर्शन ही जीवन के मूल्य है जिसका अनुसरण करना चाहिए।

6.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

प्रश्न : 1 सांख्य दर्शन का प्रतिपादन किसने किया ?

प्रश्न : 2 सांख्य दर्शन में कितने तत्वों की संख्या बतायी गयी हैं ?

6.8 सांख्य दर्शन के मूल सिद्वांत (Basic principles of Sankhya Philosophy)

सांख्य दर्शन की तत्व मीमांसा, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा और मूल्य एवं आचरण मीमांसा को यदि हम सिद्धांतों के रूप में क्रमबद्ध करना चाहे तो निम्नलिखित रूप में कर सकते हैं -

(1) यह सृष्टि प्रकृति और पुरुष के योग से निर्मित हैं - सांख्य के अनुसार यह सृष्टि प्रकृति और पुरुष के योग से निर्मित है। उसका तर्क है कि प्रकृति केवल जड़ तत्व है, बिना चेतन के सहयोग के उसमें क्रिया नहीं हो सकती और बिना क्रिया के सृष्टि की रचना नहीं हो सकती। दूसरी ओर पुरुष केवल चेतन तत्व है बिना जड़ तत्व की सहायता के

वह क्रिया नहीं कर सकता और क्रिया के अभाव में सृष्टि की रचना नहीं हो सकती। अतः सृष्टि की रचना के लिए प्रकृति पुरुष का सहयोग आवश्यक है।

(2) प्रकृति और पुरुष दोनों मूल तत्व हैं - सांख्य प्रकृति और पुरुष दोनों को मूल तत्व मानता है, अनादि और अनंत मानता है, सत्य मानता है, पर प्रकृति को वह जड़ और पुरुष को चेतन मानता है। सांख्य के अनुसार सृष्टि की रचना की दृष्टि से प्रकृति और पुरुष दोनों एक दूसरे के पूरक हैं

(3) पुरुष की स्वतंत्र सत्ता है और वह अनेक है – सांख्य पुरुष अर्थात आत्मा को स्वतंत्र सत्ता मानता है। वह उसे ब्रह्म का अंश नहीं मानता, उसे अपने में मूल तत्व मानता है। सांख्य प्रत्येक प्राणी में एक स्वतंत्र आत्मा की सत्ता स्वीकार करता है, वह अनेकात्मवादी दर्शन है।

(4) मनुष्य प्रकृति और पुरुष का योग है – सांख्य के अनुसार मनुष्य सृष्टि का ही एक अंश है अतः उसकी रचना भी प्रकृति पुरुष के सहयोग से होना निश्चित है महर्षि कपिल के अनुसार मनुष्य का स्थूल शरीर माता-पिता के रज-वीर्य से और सूक्ष्म शरीर अंत:करण और पांच तन्मात्राओ के योग से बनता है। उसके सूक्ष्म शरीर पर जन्म-जन्म के अनुभव संचित होते हैं और यही एक जन्म से दूसरे जन्म में प्रवेश करता है।

(5) मनुष्य का विकास उसके जड़ एवं चेतन दोनों तत्वों पर निर्भर करता है – सांख्य के अनुसार मनुष्य प्रकृति एवं पुरुष का योग होता है और उसका विकास इन्हीं दो तत्वों पर निर्भर करता है। सांख्य की दृष्टि से मानव विकास की तीन दिशाएं होती हैं - शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक।

(6) मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति है – सांख्य के अनुसार मनुष्य जीवन सप्रयोजन है, उसका उद्देश्य दु:खत्रय से छुटकारा पाना है इसे ही वह मुक्ति कहता है। जब मनुष्य अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचान लेता है तब वह दु:खत्रय से छुटकारा पा सकता है। मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य इसी जीवन में दु:खत्रय के अनुभव से मुक्त हो जाता है उसे सांख्य में जीवन्मुक्त कहते हैं और जो शरीर के नाश होने पर दु:खत्रय के अनुभव से मुक्त होता है उसे विदेह मुक्त कहते हैं।

(7) मुक्ति के लिए विवेक ज्ञान आवश्यक होता है – सांख्य की दृष्टि से मुक्ति के लिये विवेक ज्ञान अर्थात प्रकृति पुरुष के भेद को जानना आवश्यक होता है इस स्थिति में पुरुष

अपने आप को प्रकृति से अलग कर सुख-दुख से अलग हो सकता है, कर्मफल भोग से मुक्त हो सकता है।

(8) विवेक ज्ञान के लिए योग साधन मार्ग आवश्यक है – संख्या विवेक ज्ञान के लिए योग द्वारा निर्दिष्ट साधन मार्ग (आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) को आवश्यक मानता है।

(9) योग मार्ग के अनुयायी के लिये नैतिक आचरण आवश्यक हैं - योग साधन मार्ग का प्रथम पद है – यम। यम का अर्थ है मन, वचन और कर्म का संयम। इसके लिए योग सत्य, अहिंसा, अस्तेय अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन आवश्यक मानता है। योग साधन मार्ग का दूसरा पद है - नियम। योग के अनुसार नियम भी पांच हैं, योग के अनुसार इन पांच व्रत और पांच नियमों का पालन करने के बाद ही साधक आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की क्रियाएं कर सकता है इन्हें ही आज की भाषा में नैतिक नियम कहा जाता है।

6.9 सांख्य दर्शन और शिक्षा - (Sankhya and Education)

सांख्य दर्शन में शिक्षा के संबंध में स्वतंत्र रूप से कोई विचार नहीं किया गया है परंतु उसकी तत्व मीमांसा से शिक्षा के अंतिम उद्देश्य ज्ञान मीमांसा से शिक्षा के स्वरूप शिक्षा की पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियां तथा अचार में मिंस से शिक्षा के सामान्य उद्देश्य पाठचार्य अनुशासन और शिक्षक शिक्षार्थी संबंध के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है मनुष्य की बाह्य एवं आंतरिक रचना के संबंध में संख्या मनोविज्ञान आधुनिक मनोविज्ञान से अधिक विकसित है यहां हम शाम के दर्शन के में निहित शिक्षा संबंधी विचारों को क्रमबद्ध करने का प्रयास करेंगे।

सांख्य शिक्षा का अर्थ एवम प्रक्रिया - (Meaning and Process)

सांख्य - दर्शन में **प्रकृति** तथा **पुरुष** दोनों को मूल तत्व माना जाता है और इन दोनों में मूलभूत अंतर भी किया है। इस प्रकार शिक्षा की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जो प्रकृति और पुरुष के भेद का ज्ञान प्रदान कर सके, मनुष्य की बाह्य तथा आंतरिक रचनाओं के संबंध में ज्ञान प्रदान कर सके। इसके

अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक नियमों पर आधारित होनी चाहिए जिससे बालक की प्रकृति के अनुसार उसका विकास किया जा सके, शिक्षण प्रक्रिया बाल केंद्रित मानी गई है |

शिक्षा के उद्देश्य - (Objectives of Education)

सांख्य दर्शन के अंतर्गत ज्ञान मीमांसा अधिक मिलती है, जबकि योग दर्शन में साधना के लिए नैतिक आचरण का उल्लेख मिलता है। शिक्षा के उद्देश्यों की दृष्टि से सांख्य तथा योग दर्शन में अधिक समानता प्रतीत होती है, अंतर केवल इतना है कि सांख्य सैद्दांतिक पक्ष है तथा योग व्यावहारिक पक्ष है। सांख्य दर्शन के अनुसार शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं-

(1) शारीरिक विकास करना - इसमें इंद्रियों तथा ज्ञानेंद्रिय का विकास सम्मिलित किया है
(2) मानसिक विकास करना
(3) भावनात्मक विकास करना
(4) बौद्धिक विकास करना
(5) नैतिक विकास करना
(6) मोक्ष प्राप्त करना - उपरोक्त उद्देश्य इसी की प्राप्ति मे सहायक होते हैं
(7) सद् तथा असद् को समझना तथा उचित आचरण करने का विकास करना
(8) सर्वांगीण विकास करना।

शिक्षा की पाठ्यचर्या – (Education Curriculum)

सांख्य मनुष्य के विकास क्रम से परिचित है उसके अनुसार भिन्न-भिन्न आयु वर्ग के बच्चों के लिए भिन्न-भिन्न पाठ्यचर्या होनी चाहिए। सांख्य के अनुसार **शिशु काल** में बच्चों की कर्मेंद्रियों और ज्ञानेंद्रियों का विकास बहुत तेजी से होता है। अतः इस काल में सबसे अधिक बल उनके उचित विकास पर ही देना चाहिए। बच्चों की इंद्रियों के विकास के लिए उचित पर्यावरण की आवश्यकता होती है, बच्चों को खुले आकाश के नीचे, खुली हवा में, खेलने-कूदने, दौड़ने-उछलने के अवसर देने चाहिए इससे उनकी कर्मेंद्रियों का विकास होता है तन्मात्राओं के अनुभव की शक्ति विकसित होती है। आधुनिक युग में इटली की **डॉ0 मोंटेसरी** ने भी इसी तथ्य पर बल दिया है।

सांख्य **बाल्यकाल** मनोविज्ञान से भी परिचित है, इसके अनुसार इस अवस्था पर बच्चों की इंद्रियों का विकास चालू रहता है और इसके साथ-साथ उसके अंतःकरण का विकास भी होने लगता है अतः इंद्रियों के विकास एवं प्रशिक्षण की प्रक्रिया चालू रहनी चाहिए और इसके साथ-साथ मन, अहंकार और बुद्धि तत्व के विकास के लिए पाठ्यचर्या में भाषा, साहित्य, सामाजिक विषय, पदार्थ विज्ञान और गणित को सम्मिलित करना चाहिए।

सांख्य के अनुसार **किशोरावस्था** पर अहंकार स्थयी होने लगता है, बुद्धि में निर्णय लेने की शक्ति आने लगती है अतः इस आयु के बच्चों की पाठ्यचर्या में तर्क आधारित विवेचनात्मक विषयों को स्थान देना चाहिए। सांख्य ने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विस्तृत पाठ्यचर्या का विकास किया है ,वह मानव विकास क्रम से भी परिचित है। पाठ्यचर्या निर्माण संबंधी सांख्य मत आज भी बड़ा उपयोगी है , सांख्य का प्रमाण विवेचन भी बड़ा वैज्ञानिक है। उसका सीखने संबंधी मनोविज्ञान आधुनिक मनोविज्ञान से अधिक विकसित प्रतीत होता है, प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द विधियों का जितना वैज्ञानिक विश्लेषण सांख्य ने किया है वह अत्यंत दुर्लभ है, सीखने में अंतःकरण की भूमिका का विश्लेषण सांख्य की अपनी विशेषता है। आज के मनोवैज्ञानिकों को सांख्य मनोविज्ञान को समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

शिक्षण विधियां – (Teaching Methods)

सांख्य दर्शन ज्ञान मीमांसा का दर्शन है, इसमें ज्ञान के स्रोत के संबंध में मनोविज्ञान की विधियों को महत्व दिया गया है। मनोविज्ञान की विधियों में ज्ञानेंद्रियों तथा कर्मेंद्रियों को ही ज्ञान की प्रक्रिया में क्रियाशील किया जाता है, जबकि सांख्य दर्शन के तत्वों की प्रकृति भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार की है इसलिए सांख्य दर्शन के अनुसार शिक्षण विधियों में दोनों प्रकार - भौतिक तथा आध्यात्मिक विधियों को प्रयुक्त किया है। प्रमुख तीन विधियाँ है - **प्रत्यक्ष विधि, अनुमान विधि** तथा **शब्द विधि**। **प्रत्यक्ष विधि** में ज्ञानेंद्रियों तथा कर्मेंद्रियों को क्रियाशील बनाया जाता है, जिससे अनुभव तथा प्रत्यक्षीकरण का अवसर मिलता है। **अनुमान विधि** में इंद्रियों से परे चेतना जिसमें अनुभूति के लिए अवसर दिया जाता है इसमें भाव पक्ष प्रधान होता है। **शब्द विधि** के अंतर्गत दृष्टांतों, उदाहरणों का उपयोग किया जाता है, जिससे ज्ञान की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

सांख्य दर्शन के अनुसार शिक्षण की प्रमुख विधियां इस प्रकार हैं- (1) सूत्र विधि, (2) प्रत्यक्ष विधि, (3) अनुमान विधि, (4) व्याख्यान विधि, (5) कहानी विधि, (6) तर्क विधि, (7) क्रिया एवं अभ्यास की विधि।

अनुशासन – (Discipline)

सांख्य योग अनुशासन का समर्थक है। योग अनुशासन का पहला पद है - यम। यम का अर्थ है मन,वचन और कर्म का संयम। इसके लिए योग सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य इन पांच व्रतों के पालन पर बल देता है। योग अनुशासन का दूसरा पद है - नियम। योग के अनुसार नियम भी पांच है- शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और प्रणिधान। सांख्य के अनुसार जो व्यक्ति इन पांच व्रत और पांच नियमों का पालन जितनी सीमा तक करता है वह उसी सीमा तक अनुशासित माना जाना चाहिए। सांख्य का स्पष्ट मत है, कि बिना इस अनुशासन का पालन किये मनुष्य अपने शरीर को स्वस्थ और मन, अहंकार एवं बुद्धि को निर्मल नहीं बन सकता और जब तक वह अपने शरीर को स्वस्थ और मन, अहंकार और बुद्धि को निर्मल नहीं बनाता तब तक वह पदार्थ अथवा आत्मतत्व का वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता।

शिक्षक एवं शिक्षार्थी – (Teacher and Learner)

सांख्य के अनुसार शिक्षक को अपने विषय का ज्ञाता होना चाहिए, उसे यदि प्रकृति - पुरुष के भेद का स्पष्ट ज्ञान हो तो सोने में सुहागा समझिए। उस स्थिति में वह शिष्य में विवेक ज्ञान विकसित कर सकता है, सांख्य की शिक्षक से यह भी आशा करता है, कि उसे ज्ञान प्राप्ति के साधनों का स्पष्ट ज्ञान हो और वह उनकी सहायता से शिष्यों में ज्ञान का विकास करने में सक्षम हो, निपुण हो। वह शिक्षक को अनुशासन का पालन करने का उपदेश देता है।

संख्या अनेकात्मकवादी दर्शन है। वह छात्र के व्यक्तित्व का आदर करता है, वह उसके व्यक्तिव विकास का पक्षधर है, पर वह यह भी मानता है कि आत्म तत्वों के साथ उसमें प्रकृति तत्व भी है – सत्, रज और तम गुण भी है। अतः वह छात्र को नैतिक आचरण का उपदेश देता है अनुशासन में रहने का उपदेश देता है इस स्थिति में शिष्य पदार्थ और आत्मतत्व का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

विद्यालय - (School)

सांख्य दर्शन तथा योग दर्शन समकालीन है। इनके विकास के समय भी विद्यालयों का स्वरूप विकसित नहीं हुआ था। योग की शिक्षा एवं अभ्यास गुरु अपने शिष्यों को अपने घरों तथा आश्रमों में दिया करते थे। गुरु अपने घरों तथा आश्रमों में ही अष्टांग-योग मार्ग का प्रशिक्षण देते थे और अभ्यास के आधार पर उन्हें सिद्धियां प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। सांख्यकारो के समय गुरु-ग्रह ही विद्यालय थे और वहां का पर्यावरण एकदम आध्यात्मिक था। सांख्यकार आज की विद्यालयों की कल्पना तो नहीं कर सके परंतु उनकी दृष्टि से विद्यालयों का पर्यावरण आध्यात्मिक होना चाहिए।

शिक्षा के अन्य पक्ष - (Other Aspects of Education)

जन शिक्षा (Public Education)- सांख्य मनुष्य के जड़ और चेतन दोनों तत्वों को समान महत्व देता है। वह मनुष्य की भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों के विकास का पक्षधर है, उसकी दृष्टि से मानव जीवन सप्रयोजन है, मनुष्य का अंतिम उद्देश्य मुक्ति है। तब संख्या की दृष्टि से सभी मनुष्यों (स्त्री और पुरुषों) का भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास होना चाहिए। इससे यह स्पष्ट होता है कि सांख्य दर्शन जन शिक्षा का समर्थन है परंतु उसका जन शिक्षा से तात्पर्य है आज की जन शिक्षा से भिन्न है। सांख्यकार व्यावसायिक शिक्षा के संदर्भ में मौन नजर आते हैं।

धर्मिक एवम् नैतिक शिक्षा (Religious and Moral Education)- सांख्यकारों का पूरा ध्यान आध्यात्मिक विकास पर केंद्रित रहा और उसी की प्राप्ति के लिए उन्होंने मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास पर बल दिया है, सांख्यकार धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा के प्रबल समर्थक हैं।

6.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions)

प्रश्न: 3 - सांख्य के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने की मुख्य तीन विधियां कौन सी हैं ?

प्रश्न : 4 - योग अनुशासन का पहला पद क्या हैं ?

6.11 सारांश - (Summary)

सांख्य दर्शन महर्षि कपिल द्वारा उत्पन्न और **'तत्व समाज'** और **'सांख्य सूत्र'** ग्रंथों में उल्लिखित वास्तविकता की प्रकृति, व्यक्तिगत आत्मा और मुक्ति के मार्ग को समझने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करता है। इसके सिद्धांत जैसे द्वैतवाद, गुणों का प्रभाव, आत्म-बोध और ज्ञान का महत्व शिक्षा के लिए निहितार्थ रखते हैं, छात्रों की समझ, आत्म-जागरूकता और आध्यात्मिक विकास का मार्गदर्शन करते हैं। सांख्य दर्शन भारतीय शिक्षा को ठोस आधार प्रस्तुत करता है। उसका मनोविज्ञान तो आज के मनोवैज्ञानिकों के लिए चुनौती है, काश! आज के मनोवैज्ञानिक मनोविज्ञान को समझ सकें तो वे शिक्षा जगत को बहुत कुछ और दे सकेंगे। शिक्षा में सांख्य दर्शन जीवन के आध्यात्मिक और भौतिक दोनों पहलुओं, समग्र विकास, एक विविध और व्यापक पाठ्यक्रम, बाल विकास को समझना, शिक्षक के दृष्टिकोण पर विचार करना, व्यक्तिगत व्यक्तित्वों को महत्व देना, और स्वतंत्र अस्तित्व को पहचानना पर जोर देता है। शैक्षिक निहितार्थ सांख्य दर्शन के अनुसार शिक्षण और सीखने के दृष्टिकोण को आकार देते हैं। सांख्य शिक्षा दर्शन में अनुशासन आंतरिक और बाह्य दोनों पहलुओं को समाहित करता है । आंतरिक अनुशासन आत्म नियंत्रण, संकल्प, भावनात्मक विनियमन और स्थिर बुद्धि विकसित करने पर केंद्रित है। बाह्यअनुशासन को अष्टांग-योग के अभ्यास द्वारा समर्थित किया जाता है, जिसमें नैतिक सिद्धांतों का पालन, शारीरिक मुद्राएं, सांस पर नियंत्रण, इंद्रियों की वापसी, एकाग्रता, ध्यान और परमात्मा के साथ अंतिम मिलन शामिल है साथ में यह अनुशासन शिक्षा के सांख्य दर्शन में व्यक्तियों के समग्र विकास, आत्म- प्राप्ति और आध्यात्मिक विकास में योगदान करते हैं। शिक्षा का सांख्य दर्शन द्वैतवाद, आत्म-बोध, व्यक्तियों के व्यापक विकास की अवधारणाओं पर केंद्रित है । प्रकृति और पुरुष की दोहरी प्रकृति को पहचान कर सांख्य दर्शन द्वारा निर्देशित शिक्षा का उद्देश्य आत्म-प्राप्ति और प्रकृति और मानवता के बीच अंतर को समझने की सुविधा प्रदान करता है।

6.12 शब्दावली (Glossary)

सांख्य - सांख्य का शाब्दिक अर्थ - संख्या संबंधी या विश्लेषण से माना जाता हैं अर्थात जो संख्या रुप में एक हो।

दर्शन - दर्शन का शब्दिक अर्थ ज्ञान, अनुराग अथवा ज्ञान से प्रेम हैं।

भौतिक - भौतिक अर्थात भौतिक तत्व संदर्भी इसका तात्पर्य किसी पदार्थ या पर्यावरण के गुणों से होता हैं।

आध्यात्मिक - जिसमें आत्मा और ब्राह्म के सम्बंध तथा स्वरुप का विचार या विवेचन हो। आध्यात्म से सम्बंध रखने वाला।

6.13 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर (Answer the Practice Questions)

उत्तर: **(1)-** महर्षि कपिल, **(2)** - 25, **(3)-** प्रत्यक्ष विधि, अनुमान विधि तथा शब्द विधि, **(4)**- यम।

6.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). शैक्षिक समाजशास्त्र. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स

लाल , रमन बिहारी, (2017) शिक्षा के दर्शनिक एवम् समाज शास्त्रीय आधार , मेरठ: आर लाल बुक डिपो .

लाल, रमन बिहारी एवम् पलोड, सुनीता (2009), शैक्षिक चिन्तन एवम् प्रयोग, मेरठ: आर लाल बुक डिपो.

सलैक्स, (डॉ) शी. मैं. (2008). शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय.नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

गुप्त, रा. बा. (1996). भारतीय शिक्षा शास्त्र. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर

सक्सैना, (डॉ) सरोज. शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

लाल बि. र. (2008). शिक्षा के दार्शनिक एवम् समाजशास्त्रीय आधार. आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ.

शर्मा, ए. आर.(2010). शिक्षा के दार्शनिक एवम् सामाजिक मूल आधार. आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ.

6.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Long Answer Type Question)

शिक्षा के दार्शनिक आधार (Philosophical Foundation of Education)

BAED-N-102, Semester. II

---

1. सांख्य दर्शन से आप क्या समझते हैं ? सांख्य की शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियों की विवेचना कीजिये।

2. सांख्य दर्शन का अर्थ स्पष्ट करते हुये उसके सिद्धांतों का वर्णन किजिये।

3. सांख्य दर्शन क मनोविज्ञान आधुनिक मनोविज्ञान से अधिक विकसित हैं। सीखने सिखाने के संदर्भ में इस कथन की अपने विचारों के माध्यम से विवेचना कीजिये।

इकाई 7 योग (Yoga)

7.1 प्रस्तावना (Introducation)
7.2 उद्देश्य (Objective)
7.3 योग दर्शन का अर्थ एवं परिभाषा (Yoga Darshan-Meaning and Defination)
7.4 योग दर्शन की विशेषताएँ (Characteristics of Yog Dershan)
अपनी उन्नति जाँचे (Know your progress)
7.5 योग दर्शन की तत्वमीमांसा(Metaphysics of Yoga Darshan)
7.6 योग दर्शन की ज्ञानमीमांसा (Epstimology of Yoda Darshan)
7.7 योग दर्शन की मूल्यमीमांसा(aximology of Yoga Darshan)
7.8 योग दर्शन के मूल तत्व एवं सिद्धांत(fundamental elements and Principles of Yoga darshan)
7.9 योग दर्शन पर आधारित शिक्षा (Education releted to Yoga Darshan)
7.10 योग दर्शन की शिक्षा का अर्थ एवं प्रक्रिया(Meaning and process of Yoga Darshan
7.10.1 योग दर्शन के उद्देश्य (Objective of Yoga Darshan)
7.10.2 योग दर्शन का पाठ्क्रम(Curriculum of Yoga Darshan)
7.10.3 योग दर्शन की शिक्षण विधियाँ(Methods of Yoga Darshan)
7.10.4 योग दर्शन का अनुशासन(Discipline of Yoga darshan)
अपनी उन्नति जाँचे (Know your progress)
7.11 सारांश (Summary)
अभ्यास प्रश्नों के उत्तर(Answer of practice Quastions)
7.12 संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibalogrphy)
7.13 निबंधात्मक प्रश्न (Eassy type Queastion)

7.1 प्रस्तावना(Introduction)

योग दर्शन भारत की अति प्राचीन आध्यात्मिक दर्शन एवं प्रक्रिया है। वेद तथा उपनिषदों में भी योग का वर्णन मिलता है। बौद्ध और जैन दर्शन में भी इसका उल्लेख है। समाज के प्रायः सभी वर्गों ने योग के अध्ययन तथा अभ्यास में रुचि ली है। वर्तमान में योग का आधुनिक स्वरूप बहुत व्यापक हो गया है। पिछले कुछ वर्षों में योग अपने भारतीय स्वरूप से हटकर अंतरराष्ट्रीय की ओर, व्यक्तिगत साधन मात्र से हटकर व्यापक समाज परक उपयोगिता की ओर तथा आध्यात्मिकता से हटकर वैज्ञानिकता की ओर अग्रसर हो रहा है। आज का बहुचर्चित योग अपने प्राचीन औपनिषादिक स्वरूप से भिन्न है। भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने 2014 में संयुक्त राष्ट्र महासभा के अपने संबोधन में 21 जून की तारीख अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में प्रतिवर्ष मनाने का सुझाव दिया था, क्योंकि यह उत्तरी गोलार्ध में वर्ष का सबसे लंबा दिन है और दुनिया के कई हिस्सों में इसका विशेष महत्व है। 2015 से अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस प्रतिवर्ष 21 जून को दुनिया भर में मनाया जाता है।

योग शास्त्र में विभिन्न प्रकार की विधियों ,मार्गो तथा अभ्यासों का वर्णन है। जिसके द्वारा साधक को अपने अंतिम तथा अन्तरिम लक्ष्यों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार योग विज्ञान मनुष्य के अन्तस्तत्व का विज्ञान है, मनुष्य के चेतना के विकास का विज्ञान है अथवा मनुष्य की संभावनाओं का विज्ञान है। यह एक विशिष्ट प्रकार का विज्ञान है जो पदार्थ, जीवन तथा चेतना को एक साथ लेकर चलता है तथा विज्ञान एवं आध्यात्मिक की खाई पर बाँध का कार्य करता है। औपनिषदिकपरंपरा में योग एक उच्च अवस्था है जिसमें पांच ज्ञानेंद्र तथा की वृत्तियां रुक जाती हैं और बुद्धि भी स्थिर हो जाती है। इस प्रकार इंद्रिय नियंत्रण से ध्यान स्थिर होता है। पतंजलि के योग सूत्र के अनुसार योग चित्तवृत्ति-निरोध की अवस्था है। भगवत गीता के अनुसार योग दुख या वेदनाओ से मुक्ति की अवस्था है योग अभ्यास से मन स्थिर हो जाता है और सत्य से विचलित नहीं होता है।

7.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद शिक्षार्थी -

- योग दर्शन की शिक्षा के मूल तत्वों को समझ सकेंगे एवं परिभाषित कर सकेंगे ।
- योग दर्शन की मौलिक अवधारणा तथा योग के लाभों को समझ सकेंगे।

- शिक्षा में योग दर्शन की विधियाँ, पाठ्यक्रम को प्रक्रिया को समझ सकेंगे।

7.3 योग दर्शन का शाब्दिक अर्थ (Meenning of yoga Darshan)

योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'युजिर योगे'धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'सम्मिलित होना' एक होना। इस एकीकरण का अर्थ है- जीवात्मा तथा परमात्मा का एकीकरण अथवा मनुष्य के व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक पक्षों के एकीकरण अथवा व्यक्ति तथा समाज के एकीकरण या समन्वय से लिया जा सकता है। दूसरे शब्दों योग का शाब्दिक अर्थ समाधि होता है| पतंजलि के अनुसार योग का अर्थ होता है- **चित्तवृत्तियों का निरोध,** चित्त से उनका अभिप्राय अन्त:करण (मन ,अहंकार तथा बुद्धि) से होता है और चित्तवृत्तियों के निरोध से आशय है **चित्तवृत्तियों को भोग से हटकर ईश्वर में लगाना है।** इस प्रकार योग का अर्थ आत्मा का परमात्मा से संयोग। इसके लिए योग दर्शन ने सांख्य के अष्टांग मार्ग को दिया है।

योग दर्शन का अर्थ(Meenning of Yoga Darshan)

योग दर्शन भारतीय दर्शन की वह विचारधारा है जो इस ब्रह्मांड को ईश्वर द्वारा प्रकृति एवं पुरुष के योग से निर्मित मानती है और यह मानती है की **प्रकृति, पुरुष और ईश्वर तीनों अनादि और अनंत है** यह ईश्वर को कर्मफल के भोग से मुक्त और आत्मा को कर्मफल का भोक्ता मानती है और यह प्रतिपादन करती है कि मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य परमानन्दानुभूति है जो अष्टांग योग मार्ग साधन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। योग दर्शन की व्यापक अर्थ को समझने के लिए इसकी तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा .मूल्यमीमांसा तथा तर्कचिंतन का अध्ययन करने की आवश्यकता है।

7.4 योग दर्शन की विशेषताएँ (Charactristics of Yoga Darshan)

पतंजलि योग सूत्र में जिस विषय का मुख्यतः प्रतिपादन किया गया है वह है, **चित्तवृत्ति निरोध** अर्थात अन्य विषयों से चित्त को खींचकर एक ही विषय में एकाग्र करना। मन को एकाग्र करने की शक्ति निरंतर अभ्यास और सांसारिक भोगों से मुंह मोड़ने से प्राप्त होती है। पतंजलि मुनि कहते हैं कि ईश्वर- प्रणिधान से अथवा जिस विषय में अपनी रुचि हो उसी पर ध्यान जमाने(यथाभिमाध्यानाद्धा) से चित्त की स्थिर करने की शक्ति प्राप्त होती है। ईश्वर का इस रूप में ध्यान किया जा सकता है कि वह

सर्वशक्तिमान सर्वव्यापी सगुण परमेश्वर है अथवा इस रूप में भी ध्यान किया जा सकता है कि वह निर्गुण-निरंजन परम ब्रह्म है जिसमें प्रेम, द्वेष, दया, सृष्टि, स्थित, संहार आदि कोई गुण नहीं है।

- योग दर्शन की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है।
- प्रकृति पुरुष एवं ईश्वर तीनों मूल तत्व हैं।
- यह सृष्टि ईश्वर द्वारा प्रकृति तथा पुरुष के योग से बनी है।
- ईश्वर कर्मफल से अलग रहता है।
- जीवात्मा ही कर्मफल भोगती है।
- मनुष्य प्रकृति(जड़), पुरुष (चेतन)तथा ईश्वर का योग है।
- मनुष्य का विकास प्रकृति पुरुष तथा ईश्वर तीनों तत्वों पर निर्भर है।
- चित्तिवृत्तियों के निरोध के लिए अष्टांग योग मार्ग आवश्यक है।
- मुक्ति के लिए चित्तवृत्ति का निरोध ही मुख्य साधन है।
- अष्टांग योग मार्ग साधन के लिए नैतिक आचरण आवश्यक है।
- मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति प्राप्त करना है, जिसमें आनंद की प्राप्ति होती है अथवा परमानन्द की अनुभूति होती है।
- योग दर्शन सांख्य दर्शन का व्यावहारिक पक्ष है।

अपनी उन्नति जाँचे

प्रश्न 1- योग दर्शन का शाब्दिक अर्थ समाधि है । (सत्य/ असत्य)

प्रश्न 2- योग दर्शन एक व्यावहारिक दर्शन है। (सत्य/ असत्य)

प्रश्न 3 - योग दर्शन के प्रवर्तक पतंजलि है । (सत्य/ असत्य)

प्रश्न 4 - पतंजलि के अनुसार यम का अर्थ मन .....और कर्म का संयम है।

योग और शिक्षा के सम्बन्ध (Relation between Yoga Darshan and Education)

योग और शिक्षा में सम्बन्ध – योग दर्शन में शिक्षा के संदर्भ में स्वतंत्र रूप से कोई विचार नहीं किया गया हैं परन्तु उसकी तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा और आचार मीमांसा से शिक्षा संबंधी अनेक तथ्यों की जानकारी होती है। मनुष्य के अंतः करण (मन, अहंकार और बुद्धि) का वैज्ञानिक विश्लेषण योग दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता है। यहां हम योग दर्शन के शिक्षा संबंधी विचारों को क्रमबद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

शिक्षा का आधार है मानव जाति का सम्पूर्ण विकास टिका हुआ है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान व कला कौशल में वृद्धि व व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। दृष्टिकोण दार्शनिकों का विचार केन्द्र मनुष्य होता है। ये मनुष्य के वास्तविक स्वरूप की जानने तथा उसके जीवन का अंतिम उद्देश्य निश्चित करने का प्रयत्न करते हैं। मानव जीवन के अंतिम उद्देश्य की प्राप्ति का साधन मार्ग निश्चित करने में भी दार्शनिकों की रुचि होती है और इन सबके ज्ञान एवं प्रशिक्षण के लिए वे शिक्षा को आवश्यक मानते हैं। इस प्रकार दार्शनिकों की दृष्टि से शिक्षा मनुष्यजीवन के अंतिम उद्देश्य की प्राप्ति का साधन होती है।

7.5 योग दर्शन की तत्व मीमांसा (Metaphysics of Yoga Darshan)

योग दर्शन की तत्वमीमांसा सांख्य दर्शन की तत्व मीमांसा की समान है| इसे हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि योग दर्शन सांख्य दर्शन की तत्व मीमांसा को स्वीकार करता है अंतर मात्र इतना है की सांख्या दर्शन प्रकृति, जगत और पुरुष तीनों को तत्व मानता है |योग दर्शन इन तीनों तत्वों के अतिरिक्त ईश्वर तत्व को भी स्वीकार करता है| इस प्रकार योग दर्शन के चार तत्व- प्रकृति, जगत , पुरुष और ईश्वर होते हैं योग दर्शन ईश्वर की सत्ता में विश्वास करता है| ईश्वर सृष्टि का निमित्त(कर्ता) है कारक करता है जबकि सांख्या प्रकृति को स्वयं कारण बताया है और उसका कार्य सृष्टि माना है| योग दर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरुष उसके आधार-भूत साधन है| योग दर्शन ईश्वर का अनादि, अनंत सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान मानता है| उनके अनुसार आत्मा शरीर में निवास करती है और ईश्वर सभी में रहता है आत्मा को भोक्ता माना तथा ईश्वर को भोग से मुक्त रहता है योग दर्शन में पतंजलि का महत्वपूर्ण

योगदान रहा है| इन्होंने चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए अष्टांग योग मार्ग को दिया है , जिससे ईश्वर की प्राप्ति की जाती है|

योग दर्शन में चित्तवृत्तियों को विशेष महत्व दिया गया है| इसका अर्थ होता है कि आत्मा का प्रतिबिंब चित्त पर पड़ने से वह भी चेतना के समान कार्य करने लगता है| ये चित्रवृतियों अज्ञान के कारक हैं | चित्रवृतियों पांच प्रकार की होती है - प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति |चित्तविक्षेप के कारण को योग दर्शन में उल्लेख किया गया है,वह कारण इस प्रकार से है- रोग, संशय, प्रमाद आलस्य तथा अकर्मण्यता आदि |

7.6 योग दर्शन की ज्ञान मीमांसा (Epistemology of Yoga Darshan)

योग दर्शन की ज्ञानमीमांसा भी सांख्य दर्शन के समान है| योग दर्शन भी वस्तु जगत की ज्ञान के लिए इंद्रियों और आंतरिक उपकरणों(मन, बुद्धि तथा अहंकार) को आवश्यक मानता है| अंतर केवल इतना है कि वह आंतरिक उपकरणों के समुच्य को चित्त की संज्ञा देता है | योग दर्शन के अनुसार मनुष्य को पदार्थ का ज्ञान ज्ञानइंद्रियों तथा चित्त के माध्यम से होता है और उसमें आत्मा का भी सहयोग रहता है, परंतु उनकी दृष्टि से योगी को यह ज्ञान सीधे चित्त द्वारा प्राप्त होता है | योग क्रियाओ का अंतिम सोपान समाधि की अवस्था है जिसमें आत्मा का परमात्मा से योग होता है और परमात्मा ही सर्वज्ञ है | मनुष्य को इसके बाद जानना शेष नही रह जाता है , क्योंकि उसके संयोग से मनुष्य भी सर्वज्ञ हो जाता है |

7.7 योग दर्शन की मूल्य मीमांसा (Axiologhy of Yoga Darshan)

योग दर्शन की मूल्यमीमांसा पतंजलि ने चित्तवृर्ती का निरोध माना । और इस प्रक्रिया के लिए उन्होंने अष्टांग योग का मार्ग दिया |अष्टांग योग मार्ग के मुख्य कार्य (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) है| पतंजलि के अनुसार यम का अर्थ है- मन वचन और कर्म का संयम| इसके लिए पतंजलि ने सत्य, अहिंसा, अस्तेय अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य व्रत के पालन को आवश्यक बताया है पतंजलि के अनुसार नियम भी पांच है –शौच , संतोष, तप, स्वाध्याय और प्राणिधान| उनका स्पष्ट मत है कि जब तक मनुष्य प्राणिधान (ईश्वर में विश्वास, समर्पण एवं श्रद्धा)

नहीं रखता तब तक वह योग साधन के मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता है| आसन से तात्पर्य शरीर को ऐसी अवस्था से होता है जिसमें बहुत देर तक थकान न हो, जिसमें बहुत देर तक चिंतन-मनन किया जा सके और प्राणायाम, प्रत्यहार, धारणा, ध्यान और समाधिक की क्रियायें की जा सकें।

योगशास्त्र में प्राणायाम का बहुत बड़ा महत्व है| प्राणायाम का अर्थ श्वसन नियंत्रण| इसके तीन अंग होते हैं -पूरक (श्वांस भरकर खींचना), कुंभक (श्वांस को अंदर रोके रखना) तथा रेचक(श्वांस को धीरे-धीरे बाहर निकलना)| प्राणायाम द्वारा शरीर स्वस्थ, मन निर्मल और ह्रदय स्वच्छ होता है और मनुष्य में प्राण शक्ति की संवर्धन होता है| योग क्रिया का अलग पद है प्रत्याहार| प्रत्याहार का अर्थ होता है इंद्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर मन के अधीन करना प्रत्याहार से आगे की क्रिया का नाम है –धारण| धारण में मनुष्य अपने चित्त को किसी अभीष्ट विषय पर केंद्रित करता है| ध्यान धारण और समाधि के बीच की स्थिति है| ध्यान का अर्थ है चित्त को अभीष्ट विषय पर लंबे समय तक केंद्रित करना| समाधि योग अनुशासन की अंतिम अवस्था है, इस स्थिति में ध्यान क्रिया और ध्यान का विषय दोनों सामंत हो जाते हैं. ज्ञेय और ज्ञाता का अंतर समाप्त हो जाता है| मनुष्य परमानंद की अनुभूति करता है।

पतंजलि का स्पष्ट मत है कि बिना सत्य हिंसा असते अपिग्रह और ब्रह्मचर्य व्रत तथा शौच ,संतोष,तप, स्वाध्याय और प्रानिधान नियमों का पालन करें बिना कोई व्यक्ति योग साधना नहीं कर सकता |अतः योग साधक को इन्हें आचरण का अंग बनाना चाहिए| यह आचरण मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास के लिए आवश्यक है |

7.8 योग दर्शन के मूल तत्व एवं सिद्धांत(fundamental elements and principles of yoga philosophy)

योग दर्शन की तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा,और मूल्यमीमांसा को यदि हम सिद्धांत के रूप में क्रमबद्ध करना चाहे तो निम्नलिखित रूप में कर सकते हैं-

- यह सृष्टि प्रकृति पुरुष के योग से ईश्वर द्वारा निर्मित है-योग दर्शन ईश्वर ईश्वर को इस सृष्टि का निमित्त कारण और प्रकृति पुरुष को उत्पादन कारण(आधारभूत तत्व) मानता है |

उसका स्पष्टीकरण है कि जब प्रकृति- पुरुष का संयोग होता है तो इसका कोई कर्ता अवश्य होना चाहिए| उसकी दृष्टि से यह करता ईश्वर है

- प्रकृति पुरुष और ईश्वर तीनों मूल तत्व है-संख्या प्रकृति और पुरुष दो मूल तत्व मानता है, योग, प्रकृति, पुरुष और ईश्वर तीन मूल तत्व मानता है| वह ईश्वर को प्रकृति- पुरुष में संयोग करने वाला मानता है ,जब कार्य है तो उसका कर्ता भी होना चाहिए|
- आत्मा कर्मफल का भोक्ता है और ईश्वर कर्म फल से अलग रहता है-योग के अनुसार प्राणी की जीवात्मा ही कर्मफल भोगती है, ईश्वर नहीं | ईश्वर तो वह तत्व है जो सब प्राणियों में समान रूप से विद्यमान रहता है ,प्रकृति और पुरुष में संयोग करता है , सृष्टि की रचना एवं संहार करता है|
- मनुष्य प्रकृति पुरुष और ईश्वर का योग है-संख्या मनुष्य को प्रकृति (जड़) और पुरुष (चेतन) का योग मानता है परंतु योग दर्शन के अनुसार मनुष्य में एक तीसरा तत्व ईश्वर और होता है| उसकी दृष्टि से ईश्वर सब प्राणियों में समान रूप से विद्यमान रहता है|
- मनुष्य का विकास प्रकृति, पुरुष और ईश्वर तीन तत्वों पर निर्भर करता है- योग के अनुसार मनुष्य प्रकृति, पुरुष और ईश्वर का योग है, तब उसका विकास भी इन तीनों पर निर्भर करना चाहिए|
- मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति है- सांख्य की दृष्टि में मुक्ति का अर्थ दु:खत्रय से मुक्ति| सांख्य के अनुसार मुक्त अवस्था वह अवस्था है जिसमें मनुष्य सुख-दु:ख भोग रहित हो जाता है परंतु योग की दृष्टि से मुक्ति की अवस्था में मनुष्य ईश्वर की प्राप्ति करता है ,आनंद की प्राप्ति करता है| उस स्थिति में उसे परमानन्दानुभूति होती है|
- मुक्ति के लिए चित्तवृत्तियों का निरोध आवश्यक है- योग के अनुसार हमारा चित्र बड़ा चंचल होता है, यह बाह्य विषयों की ओर आकर्षित रहता हैं इसी से हम नाना प्रकार के क्लेश भोकते हैं| मुक्ति के इच्छुक को चित्तवृत्तियों का आवश्यक है
- चित्र वृत्तियों के निरोध के लिए अष्टांग योग्य आवश्यक है- चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए पतंजलि ने अष्टांग योग (यम , नियम ,आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) का विकास किया है |इसे विद्वानों ने राजभोग का नाम दिया है| इस योग

अनुशासन का पालन करने वाला व्यक्ति चित्तवृत्तियों का निरोध कर मुक्ति प्राप्त करता है।

- अष्टांग योग साधना के लिए नैतिक आचरण आवश्यक है-योग साधना का पहला पद है- यम| यम यह का अर्थ है- मन, वचन और कर्म का संयम। इसके लिए पतंजलि ने सत्य, अहिंसा,अस्तेय , अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य व्रत के पालन को आवश्यक बतलाया है| योग क्रिया का दूसरा पद है- नियम। पतंजलि के अनुसार योग साधक को पांच नियमों का पालन करना आवश्यक होता है; यह नियम हैं – सोच , संतोष, तप , स्वाध्याय और प्राणिधान। उनके अनुसार जब तक मनुष्य इन पांच व्रतों और पांच नियमों को अपने आचरण में नहीं उतरता तब तक वह योग्य साधना के आगे के पदों का अनुसरण नहीं कर सकता हैं।

योग का अष्टांग मार्ग

- **यम** (नैतिक आचरण सिद्धांत के वह कार्य जिन्हें करने से व्यक्ति को बचना चाहिए) : दूसरों को कष्ट देना, असत्य, चोरी करना, असंयम (अनियंत्रित यौन आवेग), लालचीपन
- **नियम** (अपनाये जाने योग्य आध्यात्मिक गुण तथा आचरण) : शरीर और मन की शुद्धता, सभी परिस्थितियों में संतोष, आत्म-नियंत्रण, स्वाध्याय (चिन्तन), और गुरु व ईश्वर के प्रति भक्ति।
- **आसन**: उचित आसन।
- **प्राणायाम**: शरीर की सूक्ष्म प्राण-शक्ति को नियंत्रित करना।
- **प्रत्याहार**: इन्द्रियों को भौतिक जगत से हटाकर चेतना को अन्तर्मुखी करना।
- **धारणा**: सकेंद्रित एकाग्रता; चित्त को एक विचार अथवा वस्तु पर केन्द्रित करना।
- **ध्यान**: ईश्वर की अनन्त अभिव्यक्तियों – जैसे सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त परमानन्द, शांति, दिव्य प्रकाश, दिव्य नाद, प्रेम, ज्ञान आदि – में से किसी एक में लीन होना।
- **समाधि**: वैयक्तिक आत्मा का परमात्मा के साथ एकरूप होने की अधिचेतन अवस्था।

7.10 योग दर्शन पर आधारित शिक्षा (Education based on Yoga Darshan)

योग दर्शन के अनुसार प्रकृति, पुरुष तथा ईश्वर इन तीनों के योग को महत्व दिया गया है इसमें ईश्वर को आनंद स्वरूप माना गया है| योग- दर्शन के अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जो प्रकृति, पुरुष तथा ईश्वर के संबंध का ज्ञान प्रदान कर सके तथा उस ईश्वर तत्व की ओर आकर्षित कर सके जिससे वह अपने जीवन में मोक्ष प्राप्त कर सके तथा आनंद की अनुभूति कर सके।

योग शिक्षा का अर्थ एवं प्रक्रिया(Yoga Education: Meaning & Process)

पतंजलि ने चित्तवृत्तिनिरोध को योग माना इसके लिए उन्होंने अष्टांग योग मार्ग दिया है |उनके अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जो मन, वचन तथा कर्म के संयम का प्रशिक्षण दे सके तथा ब्रह्मचारी व्रत का पालन कर सके।

योग दर्शन के चार पाद हैं -समाधि पाद ,साधन पाद , विभूति पाद एवं कैवल्य पाद | ये चारों पाद एक दूसरे से ऐसे जोडे गए हैं जो एक -मात्र या अंतिम सत्य की प्राप्ति कराते हैं| इनमें भी शिक्षा की प्रक्रिया निहित है| इस दृष्टि से हम शिक्षा को अपना अंतिम सत्य कैलव्य को प्राप्त करने की प्रक्रिया मान सकते हैं| कैलव्य का तात्पर्य यथार्थ ज्ञान से होता

7.10.1 योग दर्शन की उद्देश्य (Objective of Yoga darshan)

साधना , योग तथा प्रणायाम से मनुष्य को आनंद की प्राप्ति होती है| साधना का आधार शरीर होता है| इसलिए योग साधना के लिए शारीरिक विकास,जिसके अंतर्गत कर्मचारियों तथा ज्ञानेंद्रियों का प्रशिक्षण देना आवश्यक है ||योग- दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य सांख्य- दर्शन ही समान है, परंतु उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए योग दर्शन कुछ सहायक उद्देश्यों को भी दिया गया है| इसमें से प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार है-

- योग साधना के लिए नैतिक आचरणों का विकास करना|
- मन, वचन तथा कर्म के संयम का प्रशिक्षण देना|

- पतंजलि के पांच नियमों को अनुसरण करना- सोच, संतोष तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर में विश्वास|
- ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना|
- अष्टांग योग का अभ्यास करना|
- नैतिक गुणों का विकास करना|
- लोक कल्याण की भावनाओं का विकास करना|
- अच्छे संस्कारों का निर्माण करना तथा पूर्णता की प्राप्ति करना|
- आत्म बोध एवम् संयम का विकास करना |

7.10.2 योग दर्शन का पाठ्यक्रम (Curriculum of Yoga darshan)

योग- दर्शन में अष्टांग योग को प्राथमिकता दी जाती है योग के पाँचों नियमों के पालन को भी पाठ्यवस्तु में सम्मिलित किया जाता है अंत:करण –मन, अहंकार तथा बुद्धि के विकास के लिए योग साधना ही एकमात्र साधन है| इसलिए योग दर्शन के अनुसार पाठ्यवस्तु में चित्तवृत्ति निरोध को आधार बनाया जाए |

पतंजलि 'योग सूत्र' संपूर्ण जीवन बिताने से लेकर के कैवल्य प्राप्ति तक व्यवस्था बताता है |शिक्षा जीवन है या जीवन के विभिन्न पक्षों के विकास की विशिष्ट प्रक्रिया है| ऐसी स्थिति में योगशिचत्तवृत्तिनिरोध में जो संकेत मिलते हैं| उनसे शिक्षा के पाठ्यचर्या भी ज्ञात होती है| चित्तवृत्ति उनसे शिक्षा की पाठ्यचर्या भी ज्ञात होती है| चित्तवृत्ति निरोध जैसे सूत्र में योग क्या है? चित् क्या है ? और उसकी क्या विशेषता है निरोध के लिए अष्टांग योग की क्या साधन हैं ,| इनकी सिद्धि कौन-कौन हैं और कैसे होती हैं ? यदि प्रश्न का उत्तर पाठ्यक्रम की ओर संकेत करता है |पतंजलि के 'अनुशासन'(उपदेश) से ज्ञात होता है कि मानव को धर्म एवं आध्यात्म का ज्ञान देने के लिए उन्होंने सूत्रों की रचना की है| इस आधार पर शिक्षा के पाठ्यक्रम में धर्मशास्त्र ,दर्शनशास्त्र ,नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान ,शरीर विज्ञान,तथा योगाभ्यास और अन्य शारीरिक क्रियायें रखी गई है |

7.10.3 योग दर्शन की शिक्षण विधियाँ (Teaching methods of Yoga Darshasn)

योग दर्शन के अनुसार ज्ञान आत्मा का विषय है। इसलिए आत्मज्ञान के लिए शिक्षक को प्रत्यक्ष विधि, अनुमान विधि तथा शब्द विधि तीनों को ही समन्वित रूप से प्रयुक्त किया जाना चाहिए है। योग दर्शन के अनुसार प्रमुख शिक्षण की विधियां निम्नलिखित है-

- उपदेश विधि
- व्याख्यान विधि
- विश्लेषण तथा संश्लेषण विधि
- सूत्र विधि
- श्रवण, मनन, ध्यान धारण की विधि
- अभ्यास या क्रिया विधि तथा
- तर्क विधि या अनुमान विधि

बालक की शिक्षा का मूल आधार प्रत्यक्षज्ञान है |बाद में जो ज्ञान भाषा के आधार पर प्राप्त किया जाता है, उसके लिए जिन संज्ञाओं ,क्रियाओं, विशेषणों, आदि का प्रयोग किया जाता है,वे सब आरंभ से प्रत्यक्ष विधि द्वारा निर्मित होते हैं, आरंभिक कक्षाओं में सभी विषयों के अध्ययन के लिए प्रत्यक्षविधि का प्रयोग किया जाना चाहिए| योग दर्शन के अनुमान विधि के प्रयोग की बात कही गई है ,माध्यम से ज्ञये विषय का अनुमान लगाया जाता है| योग दर्शन में शब्द विधि का अर्थ है -आप्त मनुष्यों की मुख से सुनकर अथवा ग्रन्थों का अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त करना। विद्यार्थी इस प्रकार प्राप्त ज्ञान को अपने प्रत्यक्ष ज्ञान तथा तर्क की कसौटी पर कस कर ही ग्रहण करें| योग विधि वह विधि है जिसमें आत्मज्ञान को सीधे प्राप्त करती है |योग की स्थिति में ज्ञेय और ज्ञात में भेद नहीं रह जाता है परंतु इस विधि से सामान्य विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं |इस विधि का प्रयोग योगी ही कर सकते हैं |

7.10.4 योग दर्शन का अनुशासन(Discipline of Yoga Darshan)

अनुशासन को योग शिक्षा का एक आवश्यक तत्व माना गया है, कहा गया है- योगेन चित्तस्य पदेन वाचां अनुशासनम्| शिक्षा का उद्देश्य अविद्या का नाष्ट व विवेक ज्ञान की प्राप्ति करना है, इसके लिए अनुशासन की आवश्यकता होती है| ज्ञान प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति का चित्त निर्मल स्थिर हो क्योंकि शुद्ध हृदय और शांत मन से ही साधना संभव है|योग दर्शन दोनों प्रकार के अनुशासन आत्मानुशासन और लौकिकानुशासन पर बल देता हैं| चित्त व वाणी का अनुशासन आंतरिक अनुशासन है व व्यवहारों पर नियंत्रण लौकिकानुशासन है | अनुशासन के लिए पतंजलि ने अष्टांग योग का साधन बताया है| अष्टांग योग में आठ अंग है- यम , नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान, समाधि |अनुशासन के लिए अष्टांग योग मार्ग को अपनाना ही अनुशासन का प्रतीक माना गया है

अपनी उन्नति जाँचे

प्रश्न-1 योग दर्शन के मूल तत्व है

(a)प्रकृति (b) ईश्वर (c) पुरुष (d)उपरोक्त सभी

प्रश्न -2 चित्तवृतियों मानी जाती हैं।

(a)प्रमाण (b) निद्रा व स्मृति (c) विपर्यय व विकल्प (d) उपरोक्त सभी

प्रश्न-3 योग दर्शन के अनुसार शिक्षा के उदेश्य होने चाहिए।

(a) नैतिक गुणों का विकास करना

(b) मन वचन तथा कर्म का संयम

(c)ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना

(d) उपरोक्त सभी

प्रश्न 4 योग दर्शन में अनुशासन के लिए कितने सूत्रों का उल्लेख हैं

(a) 8 (b) 9 (c) 12 (d) 18

7.11 सारांश (Summary)

वर्तमान समय में योग एक बहुत चर्चित एवं महत्वपूर्ण विषय है। समाज के सभी वर्गों ने योग के अध्ययन एवं अभ्यास में रुचि ली है विभिन्न वर्गों के लोगों योग को अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। योग भारतीय स्वरूप से हटकर अंतरराष्ट्रीय स्वरूप की ओर, व्यक्तिगत साधन मात्र से हटकर व्यापक समाज- परक उपयोगिता की ओर, तथा आध्यात्मिकता से हटकर वैज्ञानिकता की ओर अग्रसर होता रहा है अनेक आधुनिक समय में योग के प्रशिक्षकों तथा योग में रुचि रखने वाले लोगों को योग की मौलिक स्वरूप में भ्रम है और वह उसे लगातार भौतिक विद्या के रूप में विकसित करने जा रहे हैं परंतु कई विचारको का मानना है कि आजकल जो योग के बारे में देखा और सुना जा रहा है वह योग का केवल एकमात्र पक्ष है।

योग की मूल धारा आध्यात्मिक है। योग दर्शन में अनुशासन के लिये अष्टांग मार्ग (सूत्र) का उल्लेख किया गया है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि वर्णित है योग सूत्र में यम के पांच भाग किए गए हैं (अहिंसा, सत्य,अस्तेय, ब्रह्मचार्य और अपरिग्रह) नियम भी पांच भागों में बताया है(शौच,संतोष, तप, स्वाध्याय और प्राणिधान), आसन से ही आजकल लोग सामान्यत: योग का अर्थ ग्रहण करते हैं परंतु इसे योग के आठ अंगों में से मात्र एक अंग समझना चाहिए फिर भी हठयोग का प्रमुख आधार आसन ही है। प्राणायाम - प्राणवायु का शरीर में प्रविष्ट होना तथा वायु को बाहर निकलना। प्रत्याहार- इंद्रियों को वाह्य विषयों से हटाकर मन के अधीन करना प्रत्याहार से आगे की क्रिया का नाम है-धारण | धारण में मनुष्य अपने चित्त को अभीष्ट विषय पर केन्द्रित करता है| ध्यान का अर्थ है चित्त को अभीष्ट विषय पर लम्बे समय तक केन्द्रित करना |कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि योग दर्शन भारतीय शिक्षा को ठोस आधार तो प्रस्तुत करता है परन्तु उस पर पूर्ण इमारत खडी नहीं कर सकता |

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -1

Answer (1) प्रश्न 1 - सत्य प्रश्न 2 - सत्य प्रश्न 3- सत्य प्रश्न 4 - वचन

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -2

Answer (2) (d) उपरोक्त सभी प्रश्न-2 (d) उपरोक्त सभी प्रश्न-3(d) प्रश्न-4 (a)

7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- शर्मा, डॉ आर . ए(2010) " शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार'' आर. लाल बुक डिपो ,मेरठ
- त्यागी, गुरसरनदास (2015) "शिक्षा के सिद्धांत" अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा
- *लाल, प्रो . रमन बिहारी व पलोड सुनीता (2010)) " शिक्षा* के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार''
- चौबे डॉ.सरयू प्रसाद तथा चौबे डॉ . अखिलेश (2005) "शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार" इंटरनेशनल पब्लिकेशन
- सक्सेना ,डॉ सरोज (2004) शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार" साहित्य प्रकाशन आगरा

7.13 निबंधात्मक प्रश्न (Eassy type Queastion)

प्रश्न 1 - योग दर्शन का अर्थ बताइए| इसके तत्व विचार एवं प्रमाण विचार का वर्णन कीजिए|

प्रश्न 2 - योग दर्शन पर आधारित शिक्षा के प्रमुख घटकों का वर्णन कीजिए| तथा इसके अनुसार पाठ्यक्रम कैसा होना चाहिए ?

इकाई - 8 श्रीमद्भगवतगीता (ShriMad Bhagwadgeeta)

8.1 प्रस्तावना-
8.2 उद्देश्य-
8.3 श्रीमद्भगवतगीता का अर्थ
8.3.1 गीता का महत्व
8.3.2 गीता के अनुसार शिक्षा का अर्थ
अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress
8.4 गीता के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य
8.4.1 गीता के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम
8.4.2 गीता के अनुसार शिक्षण विधियाँ
8.4.3 गीता के अनुसार शिक्षक
8.4.4 गीता के अनुसार शिक्षार्थी
अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress
8.5 गीता का दार्शनिक चिंतन
8.6 वर्तमान शिक्षा में गीता का योगदान
अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress
8.7 सारांश
8.8 शब्दावली Vocavolary
8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर Answer of Practice Question
8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची References
8.11 उपयोगी सहायक ग्रन्थ Useful Books
8.12 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न Long Answer Type Question

8.1 प्रस्तावना-

श्रीमदभगवत गीता हिंदू धर्म के पवित्र ग्रन्थों में से एक हैं, जिसे मनुष्य के जीवन का सार माना जाता हैं। इसे श्रीमद्भगवद्गीता व गीतोपनिषद् भी कहा जाता है। अक्सर मन में यह सवाल आता है कि

ज़िन्दगी क्या हैं और हमारे जीवन का उद्देश्य क्या हैं या फ़िर मौत के बाद क्या होता है ,आदि तो आपको श्रीमद्भागवत गीता को पढ़ना चाहिए क्योंकि इसमें जीवन के सभी सवालों के जवाब दिये गए है। गीता में जीवन का अनमोल ज्ञान दिया गया है इसलिए इसे वैज्ञानिक, मनस्विद, राजनीतिज्ञ, संन्यासी, दार्शनिक, शिक्षक या विद्यार्थी कोई भी हो सभी को जीवन के सार्थकता एवं सकारात्मकता के लिए भगवदगीता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिसे मनुष्य अपने जीवन को औऱ बेहतर बना सकते हैं क्योंकि यह जीवन के हर मोड़ पर मार्गदर्शन करती है। श्रीमद्भागवद्गीता भगवान कृष्ण के मुखारविन्दु से निकला हुआ सुमधुर गीत है। यह महाभारत के भीष्मपर्व का एक भाग है। इस पवित्रतम धार्मिक ग्रन्थ की रचना किन परिस्थितियों में हुई यह समझना आवश्यक है। अर्जुन युद्ध के लिए युद्धभूमि में उतरता है। रण में युद्ध के बाजे बज रहे हैं परन्तु अपने सगे संबन्धियों को युद्ध-भूमि में देखकर अर्जुन का हृदय भर जाता है। यह सोचकर कि मुझे अपने आत्मीयजनों की हत्या करनी होगी, वह किकंर्तव्यविमूढ़ और अनुत्साहित होकर बैठ जाता है। अर्जुन की अवस्था दयनीय हो जाती है। वह निराश हो जाता है। उसकी वाणी में रूदन है। वह कौरवों की हत्या नहीं करना चाहता है। अर्जुन की यह स्थिति अध्यात्म जगत में आत्मा के अन्धकार की स्थिति कही जाती है। श्रीकृष्ण अर्जुन की इस स्थिति को देखकर उसे युद्ध करने का निर्देश देते है और यही निर्देश ईश्वरीय वाणी है वे कहते हैं-

सर्व धर्मान परित्यज्य मामेक शरणं व्रज।

अहं त्वं सर्व पापेभ्यों मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। गीता

सभी पूर्वाग्रह को त्याग कर हे पार्थ तू मेरी शरण में आ। मैं तूझे सभी पापों से मुक्त कर दूगा। हे! पार्थ तू सोच मत कर। गीता का संदेश सार्वभौम है, यह हमारे जीवन में हम सबके हृदय में घटित होने वाला युद्ध ही है। आज प्रत्येक व्यक्ति जीवन में द्वन्द्व की स्थिति में है, वस्तुतः गीता मनुष्य के जीवन को एक मोड दिखाती है। महात्मा गॉधी कहा करते थे- 'जब मैं निराशा से घिर जाता हू, जीवन में प्रकाश की कोई किरण नहीं दिखाई देती तो मैं गीता की शरण में जाता हूँ। उससे मुझे कोई न कोई ऐसी किरण मिल जाती है जो मेरे जीवन को प्रकाश प्रदान करती है।"

श्रीमद्भागवत गीता का ज्ञान श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रवेश कर के काल ब्रह्म ने अर्जुन को ज्ञान उपदेश के रूप में दिया था ।जिसमें पूर्ण परमात्मा को पाने का एवं मनुष्य जीवन का मूल कर्तव्य क्या है, यह निष्कर्ष निकाल करके बताया गया है, लेकिन इसके वास्तविक ज्ञान को केवल तत्वदर्शी संत ही बता सकते हैं। उसका असली सार क्या है? यह केवल वही संत बता सकते हैं जो तत्वदर्शी है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

1. गीता के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे ।
2. गीता के दार्शनिक चिंतन का विश्लेषण कर सकेंगे।
3. गीता के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे ।
4. गीता के अनुसार शिक्षा को समझ सकेंगे।
5. गीता के अनुसार शिक्षा शिक्षा के उद्देश्यों वर्णन कर सकेंगे।
6. गीता के अनुसार शिक्षक तथा शिक्षार्थी के कर्तव्यों की व्याख्या कर सकेंगे।
7. गीता के अनुसार कर अनुशासन का वर्णन कर सकेंगे।
8. वर्तमान शिक्षा में गीता के योगदान की व्याख्या कर सकेंगे।

8.3 भगवतगीता का अर्थ

भारतीय परम्परा के अनुसार गीता को उपनिषदों का सार तत्व माना गया है, तथापि कुछ आधुनिक लेखकों ने इसे विविध वैचारिक प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण बताया है। एक रूप में गीता को मानव जाति का सर्वभौम नीतिशास्त्र माना जा सकता है। वैचारिक प्रवृत्तियों में बाहरी विविधताओं के बावजूद गीता एक अनोखा उद्देश्य प्रदर्शित करता है और इसमें सिद्धान्त की दृष्टि से एकत्व है। जिसे व्यवहार में प्राप्त किया जा सकता है।

हमारा जीवन मानसिक दबावों व तनाव से भरा पड़ा है। यह पीड़ा, व्यथा, विशाद, क्लेश इत्यादि से आक्रान्त है। किसी भी परीक्षा कि घड़ी में हम विरोधी आवेगों के मध्य लड़खड़ा जाते है,

और यह निश्चय नहीं कर पाते की कौनसा मार्ग अपनायें अथवा क्या करें। वास्तव में मनुष्य की समस्या यह है कि जब परस्पर विरोधी आवेग हमारे समस्त प्रयत्नों को गतिहीन व अशक्त कर दे और हम अपने आप को पूर्ण अनिश्चित्ता की स्थिति में पायें तो उस अवस्था में एक संतुलित जीवन कैसे बितायें? कैसे अपनी बृद्धि व मानसिक शांति को बनाये रखें? शोक और पीड़ा आदि को किस प्रकार शांतिपूर्वक सहन करें, परीक्षा के क्षणों में शांति और ईमानदारी से अर्थात् अंतःकरण की आवाज के अनुकूल कार्य करें?

इन समस्याओं को हल करने के मार्ग पर चलते हुए गीता मानव-जीवन से संबंधित लगभग प्रत्येक समस्या का समाधान है। समस्या यह है कि हम एक कर्मठ, तेजस्वी, उत्साही व रस पूर्ण जीवन कैसे व्यतीत करें? इन प्रश्नों के आशिंक रूप से उत्तर ढूंढ़ने पर भारत में और पश्चिमी देशों में बहुत से विचारको अथवा चिंतन पद्धतियों द्वारा प्रयत्न किये गये हैं, परन्तु गीता के सिवाय किसी एक दर्शन में अथवा किसी एक ग्रंथ में सम्पूर्ण समस्याओं का उत्तर नहीं मिलता। शुभ और अशुभ, अच्छाई अथवा बुराई अभी तक अनिर्णीत रही है, फिर भी मनुष्य को इसके नैतिक संघर्ष में जो चिजें थामें रहती है, वह है-उसका धर्मनिष्ठ विश्वास कि अंत में अच्छाई की बुराई पर विजय अवश्य होती है।

सभी भारतीय पद्धतियों के अनुसार मुसीबत तथा संघर्ष, हर्ष और पीड़ा इत्यादि वेदनाएँ'संसार' के अभिन्न लक्षण है। संसार व्युत्पतीय दृष्टि से जीवन, मरण व पूनर्जन्म के चक्कर के रूप में निरन्तर घूमने वाली प्रक्रिया का नाम है। यह संभावना की अनादि और अनंत प्रक्रिया है। मानव प्राणी के सुख-दुखात्मक अनुभव इस संसार में प्रतिभागित्व के कारण उसकी इसके साथ अपने एकात्मीकरण या तादात्मयक के कारण होते हैं। जीवन की इस प्रक्रिया के कारण व्यक्ति अपने नैसर्गिक स्वभाव गुणातीतत्व का अतिक्रमण कर बैठता है। यह उलंघन उस तथ्य को न जानने के कारण है कि 'मैं स्वयं क्या हूँ?' यह व्यक्ति का प्रारम्भिक अज्ञान है, जिसे उसका अकरण या अनाचरण का दोष कहेगें। दूसरी प्रकार से उलंघन वह तब करता है, जब वह स्वयं का इस सांसारिक प्रक्रिया के साथ पूर्ण एकात्मीकरण कर बैठता है, इसे ही अपना जीवन कहता है, और तदनुसार उसमें जीता है। यह उसका कारण दोष या उसका अनाचरण दोष कहलाता है।

गीता का ध्यान पूर्वक अध्ययन करने पर हमे पता चलता है कि कर्तव्य का कोई भी सिद्धान्त अर्जुन को इस दलदल से कोई बाहर नहीं निकाल पा रहा है। उसे क्या करना चाहिए, उसका अन्तिम

निर्णय वह यथार्थ के उस ज्ञानोदय से प्राप्त करता है जो उसके धर्म तत्वज्ञ दिव्य गुरू से मिलता है। यथार्थ स्थिति का ज्ञान उसकी अनिर्णय अथवा गलत निर्णय की स्थिति पर काबू पाने में सहायता करता है। उसे उसके वास्तविक कर्तव्य का बोध कराता है एवं प्रायोगिक निर्णयों का स्त्रोत व सैद्धान्तिक ज्ञान होता है।

हमें सुख की अनुभूति हमारे इस ब्रह्माण्डीय प्रवाह में प्रतिबंधित भागीदारी के कारण होती है। ऐसी स्थिति में प्रांसगिक किसी समस्या के समाधान के लिए गीता व्यक्ति को निष्काम कर्म का आदेश देती है। यह ऐसा कर्म है, जो परिस्थिति के अनुकूल किसी भी कर्मफल की इच्छा किए बिना मनोवेग रहित ढ़ंग से किया हो। कोई भी मानवकर्का, जो मुक्ति की इच्छा रखता हो अधिकार क्षेत्रउन कार्यों तक सीमित होता है, जो निस्वार्थ भाव से और किसी भी अवस्था में इन कर्मफलों के उपभोग की इच्छा न हों। अद्वैत वादियों की भॉति यह ज्ञानयोगियों का मार्ग है। गीता असाम्प्रदायिक है। सभी मानव बुराइयों के उत्कृष्ट समाधान के लिए इसकी निष्काम कर्म की संस्तुति सभी व्यक्तियों के लिए और बिना किसी धार्मिक अथवा सांस्कृतिक सम्बंध का ध्यान रखें सभी मानव संदर्भों में प्रभावी है। इस अर्थ में गीता एक सार्वभौम नीतिशास्त्र होने का दावा करती है। मानव क्षमताए अलग-अलग व्यक्तियों की अलग-अलग होती है। इस हेतु व्यक्ति अपनी वैयक्तिक भावनाओं का दमन कर निष्काम भाव की अभिवृत्तिया का विकास करे। इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु ऐसे व्यक्तियों के लिए गीता एक अलग मार्ग बताती है, वह मार्ग 'भक्ति' मार्ग है। यह अहम्भाव तथा वैयक्तिक भाव से ईश्वर के प्रति आत्म-समर्पण करके छुटकारा पाने का मार्ग है।

गीता अपने निष्काम कर्म के संदेश के साथ उपनिषद पर एक उपयुक्त टीका है। इसमें यह विशेषता है कि इसके अट्ठारहअध्यायों में से प्रत्येक अध्याय को किसी न किसी प्रकार का योग कहते हैं। गीता विशाद योग से आरम्भ होती है जिसमे विशेष रूप से एक ऐसी मानव स्थिति को प्रस्तुत किया गया है, जो तनाव, संदेह व आशंका, नैराश्य और अनिश्चितता से परिपूर्ण है। इसका समाधान मोक्षयोग के विवेचन से होता है, जो अन्तिम रूप से तनाव मुक्त करता है, संदेह को दूर करता है, रहस्य को सुलझाता है और शांति का मार्ग प्रशस्त करता है।

8.3.1 गीता का महत्व

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 में भारत के पारंपरिक ज्ञान को संदर्भित करता है जो उपयोगी है और सभी के कल्याण के लिए प्रयास करता है। लिहाजा भारत को इस शताब्दी में भारतीय ज्ञान प्रणाली के माध्यम से नॉलेज पावर बनने के लिए अपनी विरासत को समझना होगा और इसके बाद दुनिया को अपनी संस्कृति और सभ्यता के पैमाने पर काम करने का 'भारतीय तरीका' सिखाना जाना चाहिए। यह सर्वविदित और सर्वमान्य है कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता में वेद और गीता आधार स्तंभ रहे हैं। शिक्षा का उद्देश्य कभी भी किताबी ज्ञान देना नहीं है। शिक्षा उच्च मानवीय मूल्यों, सकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण, मानसिक और नैतिक उन्नति, अधिकारों और कर्तव्यों को प्रदर्शित कर सही अर्थ में मनुष्य के निर्माण में सहायक होती है। और यह सीख सबसे पहले विद्यार्थियों को इसलिए दी जाती है क्योंकि यही देश की नींव होती है जो देश के भविष्य का निर्धारण करते हैं।

भगवद गीता का सार को समझना बच्चों को प्रेरित कर सकता है और उन्हें अच्छे मूल्यों के विकास करने में मदद कर सकता है। भगवद गीता, या गीता, कुरुक्षेत्र युद्ध की शुरुआत से पहले भगवान कृष्ण और अर्जुन के बीच होने वाला प्रवचन है। भगवान कृष्ण की शिक्षाओं ने जीवन के बारे में अर्जुन के दृष्टिकोण और इस प्रकार, उनके जीवन पथ को बदलने में मदद की। गीता कई सदियों पुरानी है, इसके हर शब्द में निहित तर्क और ज्ञान इसे एक कालातीत मार्गदर्शक बनाते हैं। भगवद गीता के चिरस्थायी मार्गदर्शक सिद्धांतों को समझने से हमें रोजमर्रा की जिंदगी में कैसे और क्यों की गहरी अंतर्दृष्टि प्राप्त करने में मदद मिल सकती है। भगवदगीता हमें हमारी समृद्ध संस्कृति और परंपरा से परिचित कराती है। श्रीमद्भगवत् गीता के श्लोकों का जिक्र करने से हमें रोजमर्रा की जिंदगी की विभिन्न समस्याओं का समाधान खोजने में मदद मिल सकती है। गीता को पढ़ना हमें जीवन के बारे में सच्चाई से परिचित कराता है और अंधविश्वास और झूठी मान्यताओं से मुक्ति पाने में हमारी मदद करता है। गीता से प्राप्त ज्ञान हमारे संदेहों को दूर करता है और हमारे आत्मविश्वास का निर्माण करता है। भगवद गीता के श्लोक हमें मनुष्य के रूप में हमारे कर्तव्यों के बारे में बताते हैं। श्रीमद् भगवत् गीता को पढ़ने से हमें आत्म-नियंत्रण के महत्व और इसका अभ्यास करने के तरीके को समझने में मदद मिलती है।

भगवद गीता की शिक्षाएँ हमें बताती हैं कि बिना इच्छा के निष्काम कर्म या क्रिया का अभ्यास कैसे करें। भगवत गीता को पढ़कर, हम भौतिकवाद और दोषों से दूर रहना सीखते हैं।भगवद गीता को पढ़ने से हमें जीवन का एक अलग नजरिया मिलता है। श्रीमद् भगवत् गीता के अनुभवों के आधार पर, हम एक निश्चित तरीके से सोचना सीखते हैं। धीरे-धीरे, हम यह मानने लगते हैं कि केवल हमारी

मान्यताएँ ही सही हैं, और जो हमसे भिन्न हैं, वे गलत हैं। इसलिए, अपने बच्चे को यह सीखने में मदद करें कि दूसरों की भावनाओं को समझना जरूरी है, लेकिन उनकी राय से सहमत होना अनिवार्य नहीं है। यह मनुष्य को दूसरों के दृष्टिकोण से स्थितियों को देखने के लिए प्रोत्साहित करता है। शिक्षा का जीवन में क्या महत्व है, यह आज किसी से छिपा नहीं है। आदि अनादि काल से शिक्षा का महत्व रहा है। गीता भी शिक्षा पर बल देती है। धर्मनगरी गीता के इस संदेश को भी भलीभांति चरितार्थ कर रही है। आज कुरुक्षेत्र धर्म के साथ साथ शिक्षा का भी प्रमुख केंद्र बन चुकी है। प्राचीन समय में भी कुरुक्षेत्र शिक्षा का हब रहा है। आज भी यह एक महत्वपूर्ण शिक्षा केंद्र है। शिक्षा शब्द का संस्कृत में अर्थ विद्या एवं शिल्प के उपादान या देने की कला है।

8.3.2 गीता के अनुसार शिक्षा का अर्थ

श्रीकृष्ण के अनुसार सच्ची शिक्षा का अर्थ गुणों के ज्ञान का अवबोध है। गुणों का ज्ञान वह है, जिसके द्वारा हम एकता में अनेकता का अनुभव करते हैं। वह हर प्राणी में ईश्वर का आभास मानते है। गीतादर्शन के अनुसार हम कह सकते हैं, कि 'वास्तविक शिक्षा वह है, जो हमें इस योग्य बनाती है कि हम प्राणी की आत्मा में ईश्वर की सत्ता ही देखें।' आरम्भ में जब अर्जुन युद्ध के प्रति भ्रमित था, तब श्रीकृष्ण ने अपने ब्रह्मरूप को दिखाकर जिसमें सबका वास था, अर्जुन को यह अनुभव कराया, कि युद्ध में वह किसी की आत्मा को नहीं मार सकता क्योंकि आत्मा का वास्तविक वास तो ब्रह्म में है। दरअसल, हाल ही में केंद्र सरकार ने एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों के जरिए श्रीमद भगवद गीता और वेदों की शिक्षा देने का निर्णय किया है। निर्णय के अंतर्गत एनसीईआरटी की कक्षा छह और सात की पाठ्यपुस्तकों में वेदों का ज्ञान और श्रीमद भगवद गीता के संदर्भ शामिल किए जाने चाहिए, जबकि कक्षा 11 और 12 की वरिष्ठ कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों में इन ग्रंथों के अर्थ सहित श्लोक शामिल किए जाने चाहिए। चूंकि सरकार ने यह लक्ष्य सुनिश्चित किया है कि वैश्विक स्तर पर भारतीय ज्ञान प्रणाली का उन्नयन किया जाना चाहिए। 2020 में अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (एआईसीटीई) में भारतीय ज्ञान प्रणाली (आईकेएस) प्रभाग की स्थापना भी इसी उद्देश्य से की गई।

गीता में श्रीकृष्ण का यह मन्तव्य है कि व्यक्ति को शिक्षित करके इतना ज्ञानी बना देना चाहिए कि उसका अनुसरण सब करें तथा उनका नेतृत्व सब सम्मति से स्वीकार करें। यथा, गीता का प्रमुख शैक्षिक उद्देश्य आध्यात्मिक विकास के द्वारा समभाव को प्राप्त करके सर्वत्र समत्व का दर्शन करना है।

जिस चारित्रिक पवित्रता एवं आध्यात्मिक, नैतिक दृष्टि की आवश्यकता है उसका वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता में प्राप्त होता है। दूसरा,श्रीमद्भगवद्गीता आत्मनिर्धारणवाद के सिद्धान्त को स्वीकार करती है, इसमें मनुष्य स्वयं अपने विचारों को प्रबल कर लक्ष्य प्राप्त करता है। गीता में संसार की सत्यता तथा असत्यता के बोध का विराट स्वरूप दिखाई देता है। श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षा वैयक्तिक स्वतन्त्रता और राजनीतिक आदर्श संप्रत्यय की संपोषक है,जिसके मूल में कर्म और लोक संग्रह की भावना है। अपने व्यक्तिगत हितों को समष्टिगत हित में समाहित कर देना कर्म सिद्धान्त का प्रतिमान है।

गीता की शिक्षा हमें कार्य करने से पहले अच्छी तरह से सोचने के लिए कहती है। गीता का सर्वाधिक स्वीकार्य संदेश निष्काम कर्म है जिसमें कर्म को पूजा की तरह माना जाता है और कर्म फल की निश्चिंतता का पालन किया जाता। इसके साथ ही यह हमें किसी कार्य को करने से पहले अच्छी तरह से सोचने की भी सीख देती है। इसके इतर इसमें अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से धार्मिक सहिष्णुता की भावना को प्रस्तुत किया गया है जो भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है। ऐसे में श्रीमद् भगवदगीता ज्ञान मानव के लिए, उनके जीवन में सही मार्गदर्शन देते हुए सही राह दिखाता है। यथा, गीता हिंदू धर्म, संस्कृति और सभ्यता का आधार ग्रंथ है।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

भाग -1

प्र.1 श्रीकृष्ण के अनुसार सच्ची शिक्षा का अर्थ गुणों के ज्ञान का क्या है?

प्र.2 गीता में श्रीकृष्ण किसको उपदेश देते है?

प्र.3 गीता व्यक्ति को किस कार्य का आदेश देती है।

प्र.4 आईकेएस का पूर्ण रूप है।

8.4 गीता के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

आदर्शवादिता की उच्चतम सीढ़ी के आधार पर भवगद्गीता के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्न प्रकार से वर्णित किये जा सकते है।

1. जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष: मानव ज्ञान की उस स्थिति को सर्वोपरि माना गया है जब आत्मा, परमात्मा में विलीन होकर मोक्ष को प्राप्त कर ले। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से शिक्षा के इस

पावन एवं उच्चतम उद्देश्य की ओर संकेत किया है। ज्ञान का आदान-प्रदान इस स्तर का हो कि व्यक्ति मोक्ष प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य माने, तथा उसे प्राप्त करने में अपना सर्वस्व लगा दे।

2. नैतिकता का विकास- अर्जुन के माध्यम से श्रीकृष्ण द्वारा समझना कि अनैतिक समाज को उत्साह देने से बड़ा कोई पाप नहीं है। यह अनैतिक पीढ़ी सारे राष्ट्र को खण्डित कर देगी। इस प्रकार श्रीकृष्ण नैतिक आचरण करने की प्रेरणा तथा अनैतिकता के प्रति युद्ध लड़ना, से यही सीख देता है कि समाज व राष्ट्र के उत्थान के लिए नैतिकता पूर्ण आचरण ही स्वीकार्य होना चाहिए।

3. नि:स्वार्थ भावना का विकास- हर व्यक्ति एक आत्मा है जो अकेला आया है व अकेला जाएगा। वह परमात्मा का अंश है। उसे मोहमाया में नहीं फंसना चाहिए। स्वंय की सत्ता को जानकर अपने अन्तिम लक्ष्य, मोक्ष प्राप्ति के लिए निर्लिप्त भाव से ज्ञानार्जन करना चाहिए।

4. आत्मा की अमरता का ज्ञान - आत्मा अजर-अमर है। उसे तो न शस्त्र भेद सकता है न आग जला सकती है, न पानी गला सकता है, न हवा सोख सकती है, मरता तो केवल शरीरर है। अतः शिक्षा ऐसी हो जो व्यक्ति को हर अन्याय व अत्याचार से निर्भीकता पूर्वक साहस से लड़ने के योग्य बना सके। वह मृत्यु भय से मुक्त होकर हर अन्याय का सामना कर सके।

5. आत्म बल का विकास- गीता की शिक्षा का उद्देश्य है कि व्यक्ति जगत में रहते हुए अपनी शक्ति का इस प्रकार प्रयोग करे कि सज्जनों की रक्षा हो व दुष्टों का नाश हो। सत्धर्म की स्थापना हो। अतः गीता मनुष्यके वास्तविक विकास के लिए आत्मबल का संचार करती है।

6. निडरता की भावना का विकास- व्यक्ति को जीवन में न तो दीनता दिखानी है, न किसी परिस्थिति से भागना है उसे उठकर सामना करना है क्योंकि जब तक आयु है उसे कोई नहीं मार सकता, वैसे मरता तो केवल शरीरर ही है आत्मा नहीं। इस प्रकार भगवद्गीता के शिक्षा के उद्देश्य मानव को कर्म में प्रवृत कर उसे आत्म विकास की प्रेरणा देते हुए अनाचार से लड़कर, अपने चारों ओर न्याय व सद्गुण के प्रचार व प्रसार को प्रोत्साहित करते हैं। इसमें वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों का सुन्दर समन्वय है।

7- कर्म की प्रधानता- गीता में निष्काम कर्म करने पर बल दिया गया है। मनुष्य को फल की चिंता किये बिना निरंतर कर्म करना चाहिए। अपने कर्तव्य का पालन उसके परिणाम और उसके प्रति लगाव (राग) को ध्यान में रखे बिना करना चाहिए। भगवद गीता को का ज्ञान मनुष्य के जीवन के बारे में

सच्चाई से परिचित कराता है और अंधविश्वास और झूठी मान्यताओं से मुक्ति पाने में मदद करता है। गीता से प्राप्त ज्ञान हमारे संदेहों को दूर करता है और हमारे आत्मविश्वास का निर्माण करता है।

निष्कर्ष- गीता के शैक्षिक उद्देश्य आज के परिवेश में पूर्णरूपेण अनुशीलनीय, ग्रहणीय एवं आचरणीय हैं तथा हमारे लिए ये बहुत ही मूल्यवान,आवश्यक एवं प्रासंगिक हैं। यह बच्चों को नागरिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन करने योग्य बनाना। वैदिक शिक्षा बच्चों को स्वार्थरहित होकर दूसरों के लाभों को ध्यान में रखकर दी जाती थी। बालकों को इस बात का बोध कराया जाता था कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसे समाज में ही रहकर अपना जीवन व्यतीत करना होता है।

8.4.1 गीता के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम

गीता में दो प्रकार के ज्ञानों का उल्लेख किया गया है – प्रथम- अपरा विद्या, यानी, सांसारिक मामलों के बारे में ज्ञान और द्वितीय परा विद्या, यानी, आध्यात्मिक ज्ञान या सर्वोच्च स्व के बारे में ज्ञान। सांसारिक मामलों के बारे में ज्ञान में हम कला, विज्ञान और इंजीनियरिंग आदि के विभिन्न विषयों के सभी प्रकार के विषयों को शामिल कर सकते हैं, जो आम तौर पर हमारे शिक्षा केंद्रों में पढ़ाए जाते हैं। परा विद्या के अंतर्गत आध्यात्मिक क्षेत्र में आत्मा (आत्मा), ईश्वर (ब्रह्मा), अस्तित्व (जीव) और जगत (जगत) के बारे में ज्ञान आता है। आजकल हमारी शिक्षा प्रणाली में 'परा विद्या' यानी आध्यात्मिक क्षेत्र को आम तौर पर नजरअंदाज कर दिया जाता है। इसके परिणामस्वरूप आध्यात्मिक क्षेत्र की घोर उपेक्षा करते हुए विभिन्न प्रकार के सांसारिक धन के अधिग्रहण की प्रधानता हुई है। अध्यात्म का ज्ञान ही मनुष्य को शाश्वत शांति प्रदान कर सकता है। इसलिए हमारी शिक्षा प्रणाली में "सांसारिक मामलों से संबंधित विषयों के साथ-साथ मनुष्य के जीवन के आध्यात्मिक पहलुओं को भी उचित स्थान दिया जाना चाहिए।"

गीता परा ज्ञान व अपरा ज्ञान से प्राणी को अवगत कराता है। अर्मूत व मूर्त ज्ञान की प्राप्ति के लिए शिक्षा में साहित्यक, सामाजिक, धार्मिक व वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन आवश्यक है। भौतिक ज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति भी व्यक्ति के लिए नैतिक जीवन जीने हेतु आवश्यक है। परा विद्या के अन्तर्गत-आत्म ज्ञान, ब्रह्म ज्ञान आता है जो नित्य व सनातन है, पूर्ण ज्ञान है, नीतिपूर्ण ज्ञान व आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करते समय छात्र की अपूर्णता व अस्थिरता की ओर भी ध्यान आकृष्ट

करना चाहिए ताकि छात्र में सद्गुणों का उदय हो। वह सही व गलत में भेद कर सके। अपरा विद्या के अन्तर्गत- सभी प्रकार के विज्ञानों का अध्ययन यथा रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, नक्षत्र विद्या यान्त्रिकी, वनस्पति शास्त्र, जीव शास्त्र, शरीरर व स्वास्थ्य विज्ञान, अर्थशास्त्र, गणित, भूगोल, इतिहास, नागरिक शास्त्र, क्षत्रियो के लिए धनुर्विद्या, मन तथा बुद्धि द्वारा प्राप्त अनुभवात्मक ज्ञान और ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान, सभी प्रयोगात्मक व अवलोकन की दृष्टि से मान्य हैं। साथ ही सभी भाषाओं, कला व साहित्य के ज्ञान की भी अपेक्षा की गई है।

इन दोनों विद्याओं के अतिरिक्त गीता में पुरूषार्थ चतुष्टय-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को भी स्थान दिया गया है, अतः पाठ्यक्रम निर्धारण में छात्र के उपयुक्त पुरूषार्थो के अनुरूप ध्यान देना आवश्यक होता है। गीता में चारों वर्णों के कर्मो का विवरण देते हुए, सफल जीवन जीने हेतु उपयुक्त कार्य करने की दिशा धारा मिलती है। इसके अतिरिक्त छात्र की रूचि, बुद्धि, स्वभाव व वर्ण के अनुकूल शिक्षा

8.4.2 शिक्षण विधियाँ

गीता में मनुष्य को ज्ञान प्रदान करने के लिए विभिन्न शिक्षण विधियों का वर्णन किया गया है जिनका वर्णन निम्नलिखित है:-

प्रश्नोत्तर विधि- आदर्शवादी विचारधारा के अनुरूप गीता में प्रश्नोत्तर विधि का खुलकर प्रयोग हुआ है। यह विधि अत्यन्त प्रभावी विधि मानी गई है। शिष्य अपने मन के सन्देह, प्रश्नों के रूप में प्रकट करता है, गुरू उनके सन्तोषप्रद उत्तर देता है, जिज्ञासाओं को शान्त करता है व जीवन के गूढ़ रहस्यों की परतें खोलकर रख देता हे। प्रश्नोत्तरों द्वारा ज्ञान का आदान-प्रदान भगवद्गीता की मूल शिक्षण विधि है। प्रश्नोत्तर के द्वारा ही बालक के ज्ञान के द्वार खुलते है तथा वे सही मार्ग में अग्रसर हो सकते है।

संवाद विधि- वार्तालाप विधि व संवाद विधि का भी गीता में विचारों के आदान प्रदान हेतु प्रयोग हुआ है। कृष्ण द्वारा दिये गए उत्तरों पर पुनः प्रश्न उठते हैं। अर्जुन भी अपने विचार प्रस्तुत करता है। दोनो अपनी-अपनी बात कहने के लिए तर्क प्रस्तुत करते हैं।

तर्क विधि- इस प्रकार तर्क विधि का भी गीता में काफी खुलकर प्रयोग हुआ है। जहाँ तक ज्ञान का प्रश्न है यह श्लोकों के माध्यम से मौखिक विधि द्वारा प्रभावशाली ढंग से दिया गया है। तर्कों के द्वारा मनुष्य को सही ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

अनुकरण विधि- अर्जुन को ज्ञान पाने हेतु पात्रता विकसित करने के लिए श्रीकृष्ण अनुकरण तथा आत्म समर्पण के लिए भी कहते हैं। यह आदर्शवादी दर्शन की एक महत्वपूर्ण विधि है। शिष्य को गुरू के दिखलाए मार्ग पर चलना चाहिए, तभी वह सद्ज्ञान को प्राप्त कर सकेगा। इसी आत्म समर्पण तथा अनुकरण विधि द्वारा अर्जुन ज्ञान पाने में सक्षम होकर कर्म करता हुआ जीवन में मोक्ष का अधिकारी बन सका।

इन्द्रिय प्रशिक्षण- एक व्यक्ति के जीवन में विकास की विभिन्न प्रवृतियाँ अलग-अलग अवस्थाओं में प्रकट होती है। जैसेः- बाल्यावस्था में खेल-खेल में विभिन्न क्रियाओं, अनुभवों व इन्द्रिय प्रशिक्षण के द्वारा ज्ञान ग्रहण किया जाता है। यही ज्ञान उत्तरबाल्यावस्था में श्रद्धा पूर्वक, बिना शंका किए, शिक्षक को आदर्श मान कर, पूजा, अर्चन, कीर्तन, श्रवण, आत्म निवेदन आदि नवधा भक्ति की विधियों द्वारा ग्रहण किया जाता है।

समस्या समाधान विधि- किशोरावस्था में बालक तर्क विधि द्वारा, शंकाओं का विवेचन, विश्लेषण करके, श्रवण, मनन, निद्रिध्यान द्वारा ज्ञान को ग्रहण करता है। बालकों के विभिन्न समस्याओं के समाधान के द्वारा उनको नित्य नये अनुभव प्राप्त होता है।

अनुभवों द्वारा सीखना- बाल्यावस्था में बालक खेल-खेल में विभिन्न अनुभवों को प्राप्त करता है जिससे उनके इन्द्रियों का विकास एवं प्रशिक्षण होता है जिसके द्वारा वह नए-नए ज्ञान ग्रहण करने में सक्षम होता है। इस प्रकार का ज्ञान स्थाई व् दीर्घकालिक होता है।

इस प्रकार ज्ञान प्राप्ति के तीनों स्तर, ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक विभिन्न होते हुए भी एक दूसरे के पूरक हैं। ऐसा ही ज्ञान भगवद्गीता में विभिन्न शिक्षण विधियों का प्रयोग करते हुए अर्जुन रूपी जीव को ब्रह्म ज्ञान व आत्म ज्ञान देने हेतु किया गया है।

8.4.3 गीता के अनुसार शिक्षक

गीता के अनुसार बच्चों के सर्वांगीण विकास में शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षक बालक में आत्मविश्वास, अनुशासन, चिंतन व मनन शक्ति, निर्णय लेने की शक्ति, चारित्रिक गुणों के साथ साथ उनमें नैतिक व सामाजिक मूल्यों व गुणों का विकास करने में सहायक होता है।

शिक्षा दर्शन के विकास में गीता का योगदान अति महत्वपूर्ण है। यह शिक्षा दर्शन सार्वकालिक है। जब-जब समाज में विकृतियां, कुरीतियां उत्पन्न होती हैं, तब-तब समाज को उन्नत करने के लिए परमात्मा को किसी शिक्षक के रूप में अवतार लेना पड़ता है और शिक्षक ही समाज में उत्पन्न कुंठा को दूर करने का प्रयास करता है। गीता में श्रीकृष्ण ने तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक विकृतियों को दूर कर मानव को निष्काम कर्मयोग का पाठ पढ़ाने के लिए अवतार लेकर शिक्षक की भूमिका निभाई थी। गीता का प्रतिपादित निष्काम कर्मयोग का संदेश आज मानव के लिए अत्यंत उपयोगी है। फल की आसक्ति का त्याग ही कर्म स्वार्थ के धरातल से ऊपर उठकर कल्याण का साधन बन सकता है। गीता मनुष्य के सामाजिक स्वरूप पर बल देती है और नि:स्वार्थ कर्मशील जीवन का समर्थन करती है। आज मानवता के लिए इस शिक्षा की बहुत उपादेयता है। वर्तमान में लोग भौतिकता से परिपूर्ण जीवन जी रहे हैं। इस वजह से समाज में अशांति, अराजकता की स्थिति है। भगवद्गीता में गुरू के प्रति अटल श्रद्धा व अखण्ड विश्वास दर्शाया गया है। शिष्य को गुरू की सहायता व कृपा से ही जीवन की सही दिशा मिल सकती है। यही भाव सदैव शिष्य के मन में रहता है। शिष्य जब-जब अपनी शंकायें गुरू के सामने प्रस्तुत करता है, गुरू उन्हें बड़े स्नेह व प्यार के साथ अपने विचारो व उपदेशों द्वारा समाधान करता है। हर संकट के समय गुरू शिष्य की सहायता करता है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन का सारथी बनकर उसे हर विपत्ति से बचाते हुए शिक्षित किया है। भगवद्गीता में यह भी ध्यान रखा गया है कि गुरू ने कभी भी अपने विचार शिष्य पर नहीं थोपे बल्कि अर्जुन को यही कहा है, "मैंने तो तुम्हें सारे मार्ग बता दिये हैं, अब यह तुम पर है कि तुम कौन सा पथ स्वीकारते हो।" अतः यह सम्बन्ध पिता-पुत्र जैस है, जहाँ गुरू शिष्य को सही मार्ग पर ले चलना गुरु अपना दायित्व समझता है। शिक्षक को गीता में देवतुल्य माना गया है। बालक को भी अव्यक्त पुरूषोतम की सुन्दरतम कृति माना गया है, उसमें भी देवत्व विद्यमान है। वह भी ईश्वरीय ज्योति से प्रकाशित है, इसलिए गुरू उसके शारीरिक, मानसिक व आत्मिक विकास के लिए प्रयासरत रहता है। शिष्य को पुत्र, सखा, भक्त मान कर उसके बहुमुखी विकास हेतु मार्ग दर्शन करता है।

अतः गुरू को सात्विक गुणों के आधार पर भटके हुए शिष्य का उचित मार्ग दर्शन करना है। उसे अन्धकारमय मार्ग से ज्योतिर्मय मार्ग का दिशाबोध कराना है। उसे अपरा से परा ज्ञान की भोर ले जाना है ताकि निष्काम कर्म करता हुआ अन्त में स्थित-प्रज्ञ की संज्ञा को प्राप्त कर सके। इस प्रकार गीता में गुरू-शिष्य सम्बन्ध, पिता-पुत्र की भाँति एक उच्चतम स्तर के द्योतक हैं। गुरु ही बालक के जीवन को अंधकारमय से प्रकाशवान की ओर अग्रसर कर सकता है।

8.4.4 गीता के अनुसार शिक्षार्थी

गीता दर्शन के अनुसार शिक्षार्थी के शरीर एवं आत्मा का समान महत्व है। आत्मा परमात्मा का ही अंश है। अत: प्रत्येक शिक्षार्थी में आत्मा रूपी परमात्मा ही निवास करता है। शिक्षार्थी के प्रत्येक कार्य आत्मा अर्थात अंत:करण की प्रेरणा से होते हैं। इस दर्शन में शिक्षार्थी से अपेक्षा की गई है कि वह संयम, विनय, शिक्षक के प्रति श्रद्धा एवं समर्पण की भावना जैसे गुणों से युक्त हो। इसी प्रकार शिक्षक से भी अपेक्षा की गई है कि वह शिक्षार्थी में आत्मविश्वास एवं आशावाद उत्पन्न करेगा, शिक्षार्थी के आयु वर्ग के अनुकूल, अभिरुचियों एवं अभिवृत्तियों के अनुरूप उसे शिक्षित कर उसका आत्मपरिष्कार करेगा तथा निष्काम कर्मयोग की भावना से जनहित के कार्यो में उसे प्रवृत्त करेगा जिससे कि वह शिक्षा का चरम लक्ष्य मोक्ष (जीवन में शांति तथा आनंद) प्राप्त कर सके।

यह माना जाता है, कि छात्र स्वगुणों के ज्ञान से अनभिज्ञ होते है। श्रीकृष्ण अर्जुन की अज्ञानता को दूर करके अपने कर्तव्य पालन करने को कहते हैं। अतः शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के अज्ञान को दूर करना और अनमें आत्मा के गुणों के ज्ञान का विकास करना है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व सद्गुणों तथा दुर्गुणों का परिणाम है। प्रत्येक प्राणी में सद्गुण पाण्डवों के रूप में तथा दुर्गुण कौरवों के रूप में होते हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन को सद्गुणों को बोध कराकर सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास और उसका परिशोधन करना है। यह कार्य शिक्षक द्वारा किया जाना चाहिए। जब अर्जुन अपनी व्यक्तिगत स्वंतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व तथा अपने कर्म और अधिकारों के प्रति भ्रमित था। तब श्रीकृष्ण उसे अपना गाण्डीव उठाकर अपने स्वजनों की बुराइयों का अन्त करने के लिए कहते हैं, इस प्रकार शिक्षा व्यक्तिगत और सामाजिक उद्देश्यों में सामंजस्य ठहराने और अपनी बुराइयॉ समाप्त करने के लिए आवश्यक है। अर्जुन को युद्ध की उपयोगिता में सन्देह होता है। श्रीकृष्ण अपनी बौद्धिकता, कौशल और तर्क शक्ति द्वारा अर्जुन के सन्देह को दूर करते है और

विभिन्न विकल्पों में से अपनी निर्णय शक्ति के द्वारा उसे सही विकल्प का चयन करने को कहते हैं। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य अध्यापक और छात्र के सम्बन्धों के प्रसंग में यही होना चाहिए। व्यक्ति को अपने समाज तथा घर, परिवार और समाज के प्रति क्या उत्तरदायित्व होते हैं आदि बातों का ज्ञान कराया जाता था। गुरुकुल की शिक्षा समाप्त करके जब शिष्य अपने गुरुदेव से अलग होने लगता था तो गुरु उसे अतिथि सत्कार, दीन-दुखियों की सहायता तथा समाज सेवा आदि के उपदेश देकर भविष्य में अच्छे कार्यों को करने का आदेश देते थे। यथा, यह बात एकदम स्पष्ट है कि वैदिक काल में बालकों के सामाजिक तथा नागरिक भावना के विकास पर भी ध्यान दिया जाता था। बालक को समाज में रहकर अपना जीवन सुखपूर्वक बिताने की भी शिक्षा दी जाती थी। प्राचीन भारतीय शिक्षा ही मानवीय और नैतिक मूल्यों की स्थापना का सशक्त माध्यम है।इसलिए पाठ्य पुस्तकों में हमारे आध्यात्मिक और धार्मिक ग्रंथों को शामिल करना भौतिकवादी और भोगवादी युग को एक नई दिशा देने की ओर महत्वपूर्ण पहल साबित होगी।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

भाग -2

प्र.1 गीता के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

प्र.2 गीता में कितने प्रकार के ज्ञानों का उल्लेख किया गया है?

प्र.3 मोक्ष का अर्थ क्या है?

8.5 गीता का दार्शनिक चिंतन

विश्व के सभी दर्शनों में प्राचीनतम भारतीय दर्शन है। वैदिक काल से लेकर आज तक भारतीय चिंतकों ने वैयक्तिक तथा सामाजिक समस्याओं को लेकर ही चिंतन आरंभ किया तथा समयानुसार देश, काल के संदर्भ में उन समस्याओं का समाधान ढूंढ़ा। उन सभी दार्शनिकों के लिए समस्याए प्रारम्भिक रूप में अनुभूत रहीं है। जो भी दर्शन विशेष विचारकों ने दिया वह उस अनुभवात्मक समस्या पर किये गए चिंतन मनन का ही परिणाम था। मूल्यों के दार्शनिक विवेचन में कहा गया है कि मूल्य किसी वस्तु या व्यक्ति से संबंधित नहीं होते बल्कि किसी विचार या दृष्टिकोण से संबंधित होते हैं। अतः जो चीज किसी व्यक्ति के लिये उपयोगी होती है वही उसके लिये मूल्यवान बन जाती है।

वास्तव में भारतीय दार्शनिक चिंतन का उद्गम एक प्रकार की आत्मिक अशांति से होता है। संसार में व्याप्त दुःख तथा पाप भारतीय दार्शनिकों कों अशान्त कर देंते है और वे उनके मूल कारणों की खोज में निकल पड़ते हैं। दुःखों से मुक्ति के अपने प्रयास में मानव जीवन के प्रयोजन, सृष्टि के स्वरूप आदि सूक्ष्म विषयों का चिंतन करते हैं। भारतीय चिंतकों का उद्देश्य वास्तव में उस मार्ग की तलाश है जिससे शांति व अमरत्व की प्राप्ति हो। इस प्रकार सभी भारतीय चिंतकों का, चाहे वे आस्तिक हों या नास्तिक, एक मात्र उद्देश्य है, 'मुक्ति' अर्थात् दुःखों से मुक्ति, उन बन्धनों से मुक्ति जो आत्मा के असली स्वरूप से व्यक्ति को परिचित नहीं होने देते।

भारतीय चिंतन का उद्देश्य बौद्धिक जिज्ञासा की तृप्ति मात्र नहीं है अपितु बेहतर जीवन की तलाश है। दर्शन शब्द का अर्थ है, सत्य की अनुभूति, मात्र जानना ही नहीं। यही कारण है कि भारतीय चिन्तकों के लिए संत हुए बिना केवल ज्ञानी होना कोई अर्थ नहीं रखता। जबकि पाश्चात्य चिंतक प्रायः मात्र चिंतक हुए हैं, संत नहीं। ज्ञान तो व्यक्ति को स्वतः ही मानव मूल्यों की पराकाष्ठा की ओर लेता चला जायेगा। ज्ञान को उपनिषदों में एक अद्भुत शक्ति के रूप में माना गया है, चाहे वह आत्मज्ञान हो अथवा प्रकृति सम्बन्धी। उपनिषदों में यह स्वीकार किया गया है कि यह आवश्यक नहीं की शिक्षकों के आचार में सभी बातें अनुसरणीय हों। अतः छात्रों को शिक्षक के उचित-अनुचित सभी प्रकार के व्यवहारों की उपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। आचार समय तथा परिस्थिति सापेक्ष होता है। अतः समय के साथ-साथ आचार संबंधी सामान्यक बदलते जाते हैं।

8.6 वर्तमान शिक्षा में गीता का योगदान-

गीता को समझने के लिए उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की आवश्यकता है। गीता उपनिषदों पर एक भाष्य है। उपनिषद भारत की बाइबिल हैं। उपनिषदों को मिलाकर एक सौ से अधिक पुस्तकें हैं, कुछ बहुत छोटी और कुछ बड़ी, प्रत्येक का एक अलग ग्रंथ है। उपनिषद किसी शिक्षक के जीवन का खुलासा नहीं करते बल्कि केवल सिद्धांतों की शिक्षा देते हैं। उपनिषद शब्द का अर्थ "बैठना" या "शिक्षक के पास बैठना"। प्राचीन संस्कृत की उत्पत्ति 5000 ईसा पूर्व है; उपनिषद उससे कम से कम दो हजार वर्ष पहले के हैं। कोई नहीं जानता वे कितने पुराने हैं। गीता उपनिषदों के विचारों और मामलों में उन्हीं शब्दों को लेती है। वे उपनिषदों से संबंधित संपूर्ण विषय को एक संक्षिप्त, संक्षिप्त और व्यवस्थित रूप में सामने लाने के विचार से जुड़े हुए हैं।

घोर धर्मनिरपेक्षता के कारण भारतीय शिक्षा व्यवस्था से गीता का बहिष्कार नदारद रहा। यह सरासर अज्ञानता और राजनीति से प्रेरित होने के कारण हीहुआ है। भारतीय शिक्षा आज पश्चिमी शिक्षा की नक़ल कर रही है। हमारे शिक्षाविदों ने कभी भी गीता के पाठों को शामिल करने के बारे में नहीं सोचा। गीता वर्तमान पीढ़ी के लिए पराई है। गीता पढ़ाने का दृष्टिकोण हमारे शिक्षाविदों के मन में कभी नहीं आया क्योंकि वे स्वयं प्रबुद्ध नहीं थे। वर्तमान शिक्षा प्रणाली तथा शैक्षिक सिद्धांत एवं विचार पश्चिम से नकल करके विकसित किये गये हैं। हालाँकि शिक्षा प्रणाली के संबंध में हमारे ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विचारों के बारे में हमारे पास पर्याप्त जानकारी है, फिर भी हम उनके महत्व और व्यापकता के बावजूद उन्हें स्वीकार करने और उन्हें अपने पाठ्यक्रम में शामिल करने के प्रारंभिक चरण में हैं। हमारे प्राचीन ग्रंथ भगवद गीता में, हम अपनी शैक्षिक प्रणाली के बुनियादी घटकों पर ध्यान देते हैं। हमारे पास शैक्षिक सिद्धांतों और विचारों के विभिन्न आयाम हैं। गीता में दी गई शुद्ध शिक्षा प्रणाली की व्याख्या और व्यापक अर्थ शिक्षाविदों, शिक्षाविदों और नीति निर्माताओं को मूल्यवान ज्ञान की खोज के लिए इतिहास के पीछे देखने में योगदान और प्रेरित कर सकते हैं। पवित्र ग्रंथ गीता को दुनिया को भारत का सबसे बड़ा योगदान माना जाता है। भारत में शिक्षा प्रणाली के वर्तमान परिदृश्य पर गीता के प्रभाव और निहितार्थ का का महत्व आज भी प्रासंगिक है। भगवत गीता दुनिया के सबसे प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में से एक है। इसमें ब्रह्मा नामक सर्वोच्च सत्ता का प्रत्यक्ष संदेश शामिल है। गीता वेद व्यास द्वारा लिखित महाभारत का एक भाग है, जिसमें दार्शनिक विचार और क्रिया से संबंधित अठारह अध्यायों में सात सौ श्लोक शामिल हैं, जो अर्जुन और भगवान श्री कृष्ण, सर्वोच्च देवता के बीच सीधे संवाद से शुरू होती है। इसमें अहंकार-केंद्रित जीवन के विपरीत, सही ज्ञान, विश्वास, भक्ति, आत्म-समर्पण, वैराग्य और कार्यों के निष्पक्ष प्रदर्शन पर आधारित दिव्य केंद्रित जीवन का संदेश शामिल है, जो निरंतर प्रयास, आत्म-केंद्रित सोच, अहंकार की विशेषता है। इच्छाओं की अप्राप्ति से उत्पन्न होने वाली पीड़ा, या अवांछित वस्तुओं के साथ मिलन या ज्ञान के मार्ग पर वांछित वस्तुओं से अलगाव, कर्म का मार्ग, ज्ञान, कर्म का त्याग सर्वोच्च आनंद की ओर ले जाता है, ध्यान का अनुशासन, ज्ञान आत्म-साक्षात्कार के साथ, परम अविनाशी, बोध के साथ ज्ञान, दिव्य महिमा, कर्म और उसके फल का अनुशासन, ईश्वर-प्राप्ति के लिए आध्यात्मिक अनुशासन, शरीर और आत्मा तथा आत्मा के बीच अंतर का ज्ञान प्रदान करता है।

भगवद-गीता तीन भागों में विभाजित है। पहला से छठा अध्याय कर्म के मार्ग (कर्मयोग) से संबंधित है, 7वें से 12वें अध्याय भक्ति के मार्ग (भक्तियोग) की व्याख्या करते हैं और 13वें से 18वें

अध्याय ज्ञान के मार्ग (ज्ञान योग) की ओर इशारा करते हैं जो स्थापित करता है। शिक्षा के आध्यात्मिक मूल्य के साथ व्यक्तिगत भावना की पहचान। तीन अनुशासनों का सिद्धांत और व्यवहार जो अमानवीयता, सहिष्णुता, शांति और सद्भाव का काम करते हैं। कई सामाजिक वैज्ञानिकों का मानना है कि बुद्धि मस्तिष्क पर आधारित होती है, लेकिन देश का भविष्य आज के छात्रों पर निर्भर करता है।

भारत में मूल्य-उन्मुख शिक्षा और शिक्षा के क्षेत्र में इसके योगदान पर बहुत कम शोधकर्ताओं ने इस वर्तमान शिक्षा प्रणाली में गीता की अवधारणाओं के रूप में समस्या बताई गई है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में गीता की अवधारणाओं को पहचानना और परिभाषित करना महत्वपूर्ण है, ताकि भगवद-गीता की शिक्षाओं के माध्यम से मूल्य-उन्मुख शिक्षा को मजबूत करने और आधुनिक और प्रगतिशील शैक्षिक प्रणाली पर इसके प्रभाव के लिए जिम्मेदार कारकों को पहचाना जा सके। भगवद्गीता का ज्ञान मनुष्य जीवन के लिए 'जीवन जीने की कला' दर्शाता है। सम्पूर्ण जीवन के हर पक्ष में गीता का भक्ति-योग, ज्ञान-योग, व कर्म-योग मानव जीवन का पथ-प्रदर्शन करता है। आत्मा की अमरता मानव को साहस, निर्भीकता, निर्लिप्तता व नैतिकता पूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देता है। भगवद्गीता में मानव मात्र को जीवन की सभी समस्याओं का समाधान मिल जाता है। इसे एक सनातन ग्रन्थ, ज्ञान ग्रन्थ, विजय ग्रन्थ एवं जीवन ग्रन्थ आदि की संज्ञा दी गई। यह जीवन की समझ और कर्म कौशल सिखाने वाला एक प्रेरक ग्रन्थ है।

भगवद्गीता में मानव जीवन के विकास क्रम की तीन स्थितियाँ बताई गई है। पहला जैविक प्राणी, जो अन्नमय व प्राणमय कोश की मूलभूत आवश्यकताओं की सन्तुष्टि एवं भौतिक स्वरूप की रक्षा व पोषक प्रक्रिया तक सीमित है। दूसरी सामाजिक प्राणी बनने की प्रक्रिया है जिसमें प्राणी स्वहित को त्याग कर मनोमय व विज्ञानमय कोशों के आधार पर सामाजिक धरातल पर चिन्तन प्रारम्भ करना सीखता है। तीसरा स्तर आध्यात्मिक प्राणी के स्वरूप का है जिसमें प्राणी अपने व्यक्तित्व का चहुँमुखी विकास करता हुआ 'स्व' का साक्षात्कार करने की स्थिति में होता है। वह नैतिकता व उत्तम चरित्र के उच्चतम धरातल तक पहुँच जाता है। अतः यह शिक्षा-दर्शन की दृष्टि से अमूल्य निधि है। यह दर्शन का प्रेयस (प्रवृति मार्ग) और श्रेयस (निवृति मार्ग) दर्शाती हुई अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाये हुए है।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

भाग -3

प्र.1भगवद्गीता में मानव जीवन के विकास क्रम की कितनी स्थितियाँ बताई गई है?

प्र.2 भारत की बाइबिल है।

प्र.3 भगवद-गीता कितने भागों में विभाजित है?

प्र.4 गीता किसका एक भाग है?

8.7 सारांश

कोई भी धर्म वास्तव में अनुशासन का ही एक रूप व साधन है। भगवद्गीता भी एक धर्मग्रन्थ है। गीता के तीसरे अध्याय के चालीसवें श्लोक में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं।''इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, काम के स्थान हैं इसलिए हे अर्जुन, मनुष्य इन्हें अपने वश में करे, यही अनुशासन है।''गीता में स्वानुशासन पर बल दिया गया है। स्वयं पर कठोर अनुशासन रखने से ही व्यक्ति रागद्वेश विमुक्त हो सकता है। निरन्तर कर्म में रत रहना ही गीता के अनुसार संयम व अनुशासन है। इन्द्रियों को वश में किये हुए व्यक्ति को ही ईश्वर प्यार करता है। वही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। वास्तव में भगवद्गीता का ज्ञान मनुष्य रूपी जीव के पंचकोषों को जगाने, सँवारने ओर उन्नति करने हेतु एक उच्चस्तरीय गुरू मंत्र है। यह अन्नमय कोश प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश एवं आनन्दमय कोश के जागरण हेतु क्रमशः कर्म, भक्ति, ज्ञान, ध्यान एवं योग में प्रवृत कर मोक्षरूपी ज्ञान प्रदान करता है। इसी ज्ञान की महिमा उच्च स्तरीय दार्शनिकों को अरविन्द, गाँधी, विवेकानन्द, टैगोर, लोकमान्य तिलक एवं अन्य पाश्चात्य मनीषियों ने अपने जीवन में अपना कर संसार मे ख्याति प्राप्त कर ली है। यह ज्ञान जीवन को सँवारने व मानवता से देवत्व के ओर ले जाने का मूल-मंत्र है।सम्पूर्ण जीवन में हम, मासलो के अनुसार अधिकतम समय प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु लगा देते हैं व सबसे कम समय आत्मानुभूति के लिए दे पाते है। व्यक्ति उस समबन्ध में स्वयं को जितना सजग बनाकर आत्मोत्थान के लिए क्रियाशील हो सकेगा, उतना ही देवत्व को पाते हुए मोक्ष रूपी सफलता को पा सकेगा।

निष्कर्ष में यदि देखा जाए तो सर्वमान्य सत्य यही है कि गीता का दर्शन किसी काल विशेष अथवा वर्ग विशेष के लिए न होकर सर्वकालिक व सार्वदेशिक है। गीता में वर्णित उपदेश पहले भी मान्य थे, अब भी मान्य है व भविषय में भी मान्य होंगे। आज भारत ही नही, सब देशों में भगवद्गीता

के भाष्य प्रचलित है। अर्न्देशीय स्तर पर ख्याति प्राप्त ग्रन्थ भगवद्गीता ही है। सत्य ही है कि जब-जब समाज में विश्रृंखलता उत्पन्न होती है, तब-तब समाज के पुनर्गठन हेतु अवतार होता है। सामाजिक परिवर्तन एक निरन्तर चलनेवाली प्रक्रिया है। इस परिवर्तन में सुव्यवस्था बनाये रखने हेतु शिक्षक अथवा गुरू ही उत्तरदायी होता है, उसे ही सदैव एक उच्च स्तरीय भूमिका का निर्वाह करना होता है। वही एक अवतार रूप में समाज को राह दिखाता है।

श्रीभगवद्गीता जैसा ग्रन्थ, विश्व साहित्य में कदाचित् ही देखने को मिले। यही कारण है कि विश्व की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। स्वतंत्रता संग्राम में जब बापू, बाल गंगाधर तिलक, नेहरू तथा अनेक मूर्धन्य स्वतंत्रता सैनानी जेलखानों में कैद कर लिये गए थे, पूरे भारतवर्ष में हाहाकार मचा था, ऐसे समय में पाश्चात्य देशों के बच्चे तथा भारतीय स्कूलों के बच्चे ''गीता'' पर लेख लिख रहे थे। शिक्षक श्रीमद्भगवद्गीता के आलोक को प्रसारित करने लगे थे। पूरे भारत में गीता का सन्देश गूजने लगा था। हैरान होकर अंग्रेज अधिकारी ने एक महत्वपूर्ण गोष्ठी में कहा था-''कौन है यह महिला 'गीता' इसे कैद कर लिया जाए'' तत्काल ही दूसरे व्यक्ति ने बताया कि महाशय यह कोई महिला नहीं, बल्कि यह तो हिन्दूओं का अत्यन्त पवित्र ग्रन्थ है। आशय यह है कि यह ग्रन्थ हिन्दू धर्म का आधार ग्रन्थ है। जिसमें तत्व विचार नीति-नियम, ब्रह्म-विद्या और योग शास्त्र निहित है। गीता का विचार सरल, स्पष्ट और प्रभावोंत्पादक हैं। औपनिदेषिक विचारों से परिपूर्ण होते हुए भी इसकी शैली इतनी सरल और विश्लेषणात्मक है कि इसे साधारण मनुष्य को समझने में कठिनाई नहीं होती है।

8.8 शब्दावली (Glossary)

मोक्षः मानव ज्ञान की उस स्थिति को सर्वोपरि माना गया है जब आत्मा, परमात्मा में विलीन होकर मोक्ष को प्राप्त कर ले। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से शिक्षा के इस पावन एवं उच्चतम उद्देश्य की ओर संकेत किया है। ज्ञान का आदान-प्रदान इस स्तर का हो कि व्यक्ति मोक्ष प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य माने, तथा उसे प्राप्त करने में अपना सर्वस्व लगा दे।

परा विद्या- इसके अन्तर्गत-आत्म ज्ञान, ब्रह्म ज्ञान आता है जो नित्य व सनातन है, पूर्ण ज्ञान है, नीतिपूर्ण ज्ञान व आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करते समय छात्र की अपूर्णता व अस्थिरता की ओर भी ध्यान आकृष्ट करना चाहिए ताकि छात्र में सद्गुणों का उदय हो। वह सही व गलत में भेद कर सके।

कर्म की प्रधानता- गीता में निष्काम कर्म करने पर बल दिया गया है। मनुष्य को फल की चिंता किये बिना निरंतर कर्म करना चाहिए। अपने कर्तव्य का पालन उसके परिणाम और उसके प्रति लगाव (राग) को ध्यान में रखे बिना करना चाहिए। भगवद गीता को का ज्ञान मनुष्य के जीवन के बारे में सच्चाई से परिचित कराता है और अंधविश्वास और झूठी मान्यताओं से मुक्ति पाने में मदद करता है। गीता से प्राप्त ज्ञान हमारे संदेहों को दूर करता है और हमारे आत्मविश्वास का निर्माण करता है।

आत्मा की अमरता- आत्मा अजर-अमर है। उसे तो न शस्त्र भेद सकता है न आग जला सकती है, न पानी गला सकता है, न हवा सोख सकती है, मरता तो केवल शरीरर है। अतः शिक्षा ऐसी हो जो व्यक्ति को हर अन्याय व अत्याचार से निर्भीकता पूर्वक साहस से लड़ने के योग्य बना सके। वह मृत्यु भय से मुक्त होकर हर अन्याय का सामना कर सके।

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

भाग एक

उत्तर 1 गुणों के ज्ञान का अवबोध।

उत्तर 2 अर्जुन को।

उत्तर 3 निष्काम कर्म

उत्तर 4 इंडियन नालेज सिस्टम

भाग दो

उत्तर 1 मोक्ष प्राप्त करना।

उत्तर 2 दो।

उत्तर 3 जीवन में शांति तथा आनंद

भाग तीन

उत्तर 1 तीन।

उतर 2 भगवद्गीता।

उतर 3 तीन।

उतर 4 वेद व्यास द्वारा लिखित महाभारत का।

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008).उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006).शैक्षिक समाजशास्त्र.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

8.11 उपयोगी सहायक ग्रन्थ (Useful Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008).*उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006).*शैक्षिक समाजशास्त्र*.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008).*शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*.नई दिल्ली:रजत प्रकाशन.

8.12 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. भगवद्गीता में कृष्ण द्वारा अर्जुन को क्या उपदेश दिया गया ? गीता में अभिव्यक्त निष्काम कर्म पर प्रकाश डालिए।

2. वर्तमान के संदर्भ में भगवद्गीता की क्या प्रासंगिकता है? स्पष्ट कीजिये।

3. गीता के दार्शनिक चिन्तन पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

4. गीता के महत्व का वर्णन कीजिए।

5. कृष्ण और अर्जुन के संवाद में अर्जुन की मनःस्थिति का वर्णन कीजिए।

6. गीता के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों पर विस्तार से चर्चा किजिये।

इकाई 9- बौद्ध दर्शन (Buddhism)

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 बौद्ध दर्शन

9.4 बौद्ध दर्शन के दार्शिनिक सिद्दांत

9.5 बौद्ध दर्शन के शैक्षिक सिद्दांत

9.5.1 बौद्ध दर्शन की पाठ्यचर्या

9.5.2 बौद्ध दर्शन की शिक्षण विधियां

9.5.3 बौद्ध दर्शन के अनुसार शिक्षक

9.5.4 बौद्ध दर्शन के अनुसार शिक्षार्थी

9.5.5 बौद्ध दर्शन के अनुसार शिक्षक शिक्षार्थी सम्बन्ध

9.5.6 बौद्ध शिक्षा दर्शन में अनुशाशन

9.6 सारांश

9.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

दर्शन का शाब्दिक अर्थ है देखना। यह महत्वपूर्ण है कि हम किसी भी संज्ञा (व्यक्ति, वस्तु, स्थान) को किस रूप में देखते हैं? उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति किसी सुंदर,मनमोहक स्थान पर जाता है तो वह वहां की सुन्दरता की व्याख्या अपने नजरिये से करता है। व्यक्ति का यह नजरिया ही उसका दर्शन है। यदि इसी बात को हम अपने जीवन अथवा अपने चारों ओर से जोड़ कर देखें तो जीवन जीने के इस नजरिये को हम जीवन दर्शन कहते हैं।

हक्सले के अनुसार " मनुष्य अपने जीवन दर्शन तथा संसार के विषय में अपनी-अपनी धारणाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करते हैं। यह बात अधिक से अधिक विचारहीन व्यक्तियों के विषय में भी सत्य है। बिना दर्शन के जीवन को व्यतीत करना असंभव है"

आर.डब्ल्यू सेलर्स के अनुसार " दर्शन उस निरंतर प्रयास को कहते हैं, जिसके द्वारा हम अपनी और संसार की प्रकृति के सम्बन्ध में क्रमबद्ध ज्ञान द्वारा एक सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं"।

साधारण तौर पर भारतीय दर्शन शास्त्र में दर्शन की दो प्रकार की शाखाओं का वर्णन किया गया है, पहला आस्तिक दर्शन है जो ईश्वर की सत्ता एवं वेदों को मानता है जिसके अनुसार इस संसार को कोई अदृश्य शक्ति (ईश्वर/परमात्मा) नियंत्रित करती है और हम सब अपने-अपने शरीर में एक आत्मा को धारण करते हैं।और यह आत्मा जब हमारे शरीर से मुक्त हो जाती है तो हमारा शरीर मृत्यु को प्राप्त होता है मृत्यु। के पश्चात यह शरीर पंचतत्व (आकाश,वायु, अग्नि ,जल और पृथ्वी) में विलीन हो जाता है। आस्तिक दर्शन के अनुसार आत्मा अमर है जबकि शरीर नश्वर है। आत्मा और परमात्मा के बीच एक अद्वितीय सम्बन्ध है। जीवात्मा का उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति है। और परमात्मा की प्राप्ति से ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। मोक्ष प्राप्त करने का अर्थ है कि मनुष्य जन्म एवं मृत्यु के क्रम से मुक्त हो जाता है। जन्म और मृत्यु के बीच के जीवन को प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने नजरिये से देखता है और जो व्यक्ति जन्म और मृत्यु के बीच की इस यात्रा का गहराई से अध्ययन करने के पश्चात् अपने विचारों को अथवा अपने नजरिये को दूसरे व्यक्ति अथवा समाज के सम्मुख रखता है तो इसे उस व्यक्ति का जीवन दर्शन कहते हैं। इस प्रकार दर्शन शास्त्र के अंतर्गत हम बहुत से दार्शनिकों के द्वारा दिया गया जीवन को जीने के प्रति उनके दर्शन का अध्ययन करते हैं।

दर्शन की दूसरी शाखा को नास्तिक दर्शन कहा जाता है। नास्तिक दर्शन ईश्वर अथवा परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करता है। नास्तिक दर्शन वैदिक परम्परा को भी नहीं मानते हैं। इसी कारण इन्हें वेद वाह्य दर्शन भी कहते हैं। यद्यपि नास्तिक दर्शन कतिपय आत्मा के स्वरूप को स्वीकार करते हैं। नास्तिक दर्शनों के अंतर्गत प्रमुख दर्शन , जैन दर्शन , बौद्ध दर्शन , चार्वाक दर्शन , सहित कुल छ: दर्शनों का समावेश है।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- बौद्ध दर्शन के उद्भव को जान सकेंगे।
- भगवान बुद्ध के जीवन को समझ पायेंगे ।
- बौद्ध दर्शन के दार्शनिक विचारों को समझ पायेंगे ।
- बौद्ध दर्शन के अनुसार मोक्ष एवं मोक्ष के साधनों को समझ पाएंगे।
- बौद्ध दर्शन के शैक्षिक विचारों को समझ पायेंगे ।
- बौद्ध दर्शन की पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधियों को समझ पायेंगे ।
- बौद्ध दर्शन में शिक्षक- शिक्षार्थी के सम्बन्ध को समझ पायेंगे।
- बौद्ध दर्शन के अंतर्गत अनुशासन के महत्व को बता पायेंगे।

9.3 बौद्ध दर्शन

बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव ईसा से पूर्व छटी शताब्दी में हुआ बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध थे। इनके बचपन का नाम सिद्दार्थ था। अपनी युवा अवस्था में ही इन्होंने सांसारिक जीवन त्याग कर सन्यांस धारण किया। जन्म और मृत्यु के दृश्यों को देखकर इनके मन में सांसारिक दु:खों के निवारण का मार्ग खोजने पर विचार आया और इसी कारण इन्होने दु:खों के मूल कारणों को जानने का अत्यधिक प्रयास किया। अंत में इन्हें सिद्दी प्राप्त हुई और पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर ये बुद्ध कहलाये। महात्मा बुद्ध के अनुयायी कालान्तर में दो सम्प्रदायों **हीनयान** तथा **महायान** में बिभाजित हो गये। महात्मा बुद्ध के उपदेशों का संकलन उनके शिष्यों द्वारा त्रिपिटकों में हुआ है। त्रिपिटकों के अंतर्गत

विनय-पिटक, सुत्त -पिटक तथा **अभिधम्म पिटक** हैं। इन पिटकों में अनेक ग्रन्थ हैं जैसे विनय पिटक में संघ के नियमों का सुत्त पिटक में बुद्ध के वार्तालाप और उपदेशों का तथा अभिधम्म पिटक में दार्शनिक विचारों का संग्रह है। इनको पाली भाषा में लिखा गया है।

बौद्ध दर्शन के आदि प्रवर्तक बुद्ध हैं जो सुद्धोधन एवं मायादेवी के पुत्र गौतम गोत्र में उत्पन्न क्षत्रीय, सिद्दार्थ ही बाद में ज्ञानोदय के कारण बुद्ध के नाम से प्रसिद्द हुए। बौद्ध दर्शन का प्रमुख सिद्दांत है कि – दुःख का मूल आशा है। बौद्दो का सम्प्रदाय- **माध्यमिक- योगाचार- सौत्रान्तिक- बैभाषिक** के रूप में चार भागों में बिभाजित है बुद्ध का जन्म 226 ई.पू. में हुआ था इनके पिता शाक्य वंशीय राजा सुद्दोधन थे। इनकी माता माया देवी की इनके जन्म के एक सप्ताह के भीतर ही मृत्यु ही गयी थी इनके जन्म के समय में कपिलवस्तु के राजज्योतिष द्वारा भविष्यवाणी की गई थी कि, इनका महल से निष्क्रमण होगा और धर्म प्रवर्तक होंगे। इसीके अनुसार सिद्दार्थ ने ईक्कीस वर्ष की आयु में अपने पत्नी एवं पुत्र को त्याग कर सांसारिक दुखों के निवारण के उपायों के अन्वेषण के प्रयोजन से राजभवन को भी त्याग दिया। एवं चिरशांति की प्राप्ति तथा ज्ञानार्जन के लिए वन में प्रवेश किया। भगवान बुद्ध के अनंतर बौद्दों की बहुत सी शाखायें उत्पन्न हुई। और वे चार प्रधान रूप से हैं – वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक। वैभाषिकों का हीनयान सम्प्रदाय है जबकि अन्य तीनों का महायान सम्प्रदाय है।

योगाचार- योगाचार का सिद्दांत विज्ञानवाद है। विज्ञानवाद की विचारधारा के अनुसार बाह्य सत्ता का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि बाह्य जगत प्रयोजनकाल में मन में बनने वाले प्रतिबिम्ब के आधार द्वारा ही वह जाना जाता है। इसमें प्रतीति का आधार ज्ञान है। अतएव ज्ञान अथवा विज्ञान ही सत्य तत्व है। चित्त, मन आदि विज्ञान की ही संज्ञाएँ हैं। विज्ञान की चेतन क्रिया के सम्बन्धवश चित्त कहलाता है, मन क्रिया सम्बन्धवश ही मन कहा जाता है। विषय ग्रहण के साधन रूप में ही विज्ञान सिद्द है।

माध्यमिक- माध्यमिकों का सिद्दांत शून्यवाद है। शून्यवाद के मत के अनुसार बाह्य पदार्थ भी सत्य नहीं है, आंतरिक पदार्थ भी सत्य नहीं है विज्ञान भी सत्य नहीं है। शून्य ही सत्य होता है। माध्यमिकों का मत है कि शून्य न तो भाव रूप है न अभाव रूप , यह तो अनिर्वाचनीय है। सभी के

द्वारा भिन्न रूप में ही इसकी शून्य संज्ञा है। यहाँ वेदान्तियों द्वारा ब्रह्म का स्वरूप अनिर्वाचनीय स्वीकार किया जाता है। यही बौद्ध दर्शन का अंतिम सत्य है।

वैभाषिक- वैभाषिक मतानुसार इन्द्रिय ज्ञान इस बाह्य जगत का मिथ्यात्व नहीं हो सकता है। आंतरिक तत्व के मन की भी स्वतंत्रत सत्ता है। बाह्य पदार्थों के ज्ञान के लिए इन्द्रियों के आंतरिक तत्व के सहयोग की आवश्यकता नहीं है। अंतरतत्व भी बाह्य पदार्थ के निरपेक्ष ज्ञान के प्रति कारणभूत होते हैं। इस प्रकार दोनों पदार्थों की सत्ता सिद्ध होती है।

सौत्रान्तिक- सौत्रान्तिक के मत में बह्यार्थानुवाद स्वीकार किया जाता है। इसके अनुसार बहायार्थ पदार्थ इन्द्रीय- ज्ञान गम्य नहीं होते हैं। क्योंकि पदार्थ क्षणिक हैं परिणामस्वरूप इन्द्रियार्थ संनिकर्षण काल में और ज्ञानानुभवाकाल में पदार्थ परिवर्तित ही उत्पन्न होते हैं।अतएव उस क्षण में पदार्थान्तर ही अभिमुख होता है एवं बाह्य पदार्थों की सत्ता प्रत्यक्ष गामी नहीं है। अनुमान द्वारा ही वह ज्ञात होता है।

बुद्द का मानना था कि इस संसार में दुःख हैं , दुःख का कारण है और दुखों का निवारण है । समस्त दुखों के निवारण हेतु बुद्ध ने अष्टांग मार्ग को प्रतिपादित किया जो निम्नलिखित हैं –

1.सम्यक दृष्टि 2- सम्यक संकल्प 3- सम्यक वाक् 4- सम्यक कर्मान्त 5- सम्यक आजीविका 6- सम्यक व्यायाम 7- सम्यक स्मृति 8- सम्यक समाधि।

1. **सम्यक दृष्टि-** अविद्या अथवा अज्ञान के कारण संसार तथा आत्मा के सम्बन्ध में मिथ्या दृष्टि उत्पन्न होती है इस मिथ्या दृष्टि को छोड़कर वस्तुओं के यथार्थ स्वरुप पर ध्यान रखने को सम्यक दृष्टि कहते हैं।
2. **सम्यक संकल्प** – इसके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य इन्द्रियसुखों से लगाव, दूसरों की ओर बुरी भावनाओं और उनको हानि पहुँचाने वाले विचारों समाप्त करने का निश्चय है सम्यक संकल्प में त्याग, परोपकार और करुणा सम्मलित है।
3. **सम्यक वाक**– सम्यक वाक् के अनुसार शिक्षित व्यक्तियों को वचनों का नियंत्रण करना चाहिए। इसमें निंदा, मिथ्यावाद ,अप्रिय वचन आदि का निषेध है।

4. **सम्यक कर्मान्त** – जीव नाश, चोरी, कामुकता, झूठ, अति भोजन, सामाजिक मनोरंजन में जाना, प्रसाधन, आभूषण, आरामदेह बिस्तरों के उपयोग तथा सोना, चांदी आदि के व्यवहार से बचना ही सम्यक कर्मान्त है" । इनमे से प्रथम पांच नियम ग्रहस्थों के लिए आवश्यक हैं।
5. **सम्यक आजीविका**– सम्यक आजीविका के अनुसार मनुष्य को अपनी आजीविका किस प्रकार अर्जित करनी है इस बारे में बताया गया है अर्थात शुद्द उपायों से ही जीविकोपार्जन करना है । पशु , मांस ,शराब व् विष आदि का व्यापार वर्जित है । दबाव, धोखा, रिश्वत अत्याचार, जालसाजी, डकैती लूट आदि बुरे उपायों से जीविकोपार्जन नहीं करना चाहिए ।
6. **सम्यक व्यायाम**– मनुष्य के मानसिक एवं नैतिक विकास के लिए बौद्द दर्शन के शैक्षिक उद्देश्यों में सम्यक व्यायाम को प्रमुख स्थान दिया गया है। कुसंस्कारों एवं अशुभ विचारों को रोकने के प्रयासों को सम्यक व्यायाम कहा गया है। सम्यक व्यायाम के अंतर्गत शुभ विचारों को जाग्रत करने एवं और मन को स्थिर रखने का सतत प्रयत्न सम्मिलित है। इन सभी बातो से धर्म पालन होता है और बोधि की प्राप्ति निर्भर है ।
7. **सम्यक स्मृति**– सम्यक स्मृति के अनुसार शिक्षित व्यक्ति शरीर, चित्त, वेदना को उसके यथार्थ रूप में स्मरण रखते हैं। इस यथार्थ रूप को भूल जाने से मिथ्या विचार जड़ पकड़ लेते हैं एवं उसके अनुसार क्रियाएं होने लगती हैं इससे आसक्ति बढती है और दुःख सहन करना पडता है। बोधि के साधनों तथा चार आर्यसत्यों को स्मरण रखना सम्यक स्मृति है।
8. **सम्यक समाधि**-उपरोक्त सभी आचरणों का पवित्रता से पालन करना आवश्यक है इनके पालन से अंत:करण की शुद्दी होती है और ज्ञान का उदय होता है यह निर्वाण प्राप्ति की प्रथम अवस्था है ।

बौद्ध दर्शन में मोक्ष का स्वरूप- मोक्ष शब्द 'मोक्ष' मोचने इस धातु से ब्युत्पन्न है- यथा स्वर्ग नामक 'दिव्यसुखोपभोगासाधनों द्वारा युक्त स्थान है जहाँ पूण्यवादी लोग मृत्यु के अनन्तर जाते हैं ऐसा सभी का विस्वास है। तथा मोक्ष नामक कोई स्थान विशेष नहीं है। उसमे कहा गया है कि –

मोक्षस्य न हि वासोअस्ति न ग्रामांतरमेव वा।
अज्ञान्तिमिर्ग्रंथिनाशो मोक्ष इति स्मृत: ॥

वस्तुत: जीव परमात्मा का ही अंश है। पर अज्ञानता के कारण वह उस तथ्य को नहीं जानता है। जब अज्ञान नष्ट होता है तब साक्षात्कार के द्वारा वह परमात्मा के साथ तादात्म्य का अनुभव करता है एवं अज्ञान से मुक्ति ही मोक्ष है। मृत्यु के अनंतर स्वकर्म के अनुसार पुन: नूतन जन्म ग्रहण करता है एवं जब उस भर्मित व्यक्ति की वासना नष्ट होती है तब अकस्मात जन्म –मृत्यु के चक्र से वह मुक्ति को प्राप्त करता है –वही मोक्ष है, अथवा मोक्ष प्राप्ति का साधन है। विकार रहित मनुष्य अनुपम सुख और अद्वितीय आनंद का अनुभव करता है जिस कारण उसे आत्मस्वरूप का साक्षात्कार होता है। वह परमात्मा के अंशत्व को प्रत्यक्ष अनुभव करता है वह ही जीवन मुक्त है इसे ही मनु-जन्म की कृतार्थता कहते हैं।

9.4 बौद्ध दर्शन के दार्शनिक सिद्दांत

भगवान् बुद्ध द्वारा सर्वप्रथम सारनाथ में दिए गये उपदेशों में चार आर्य सत्य इस प्रकार हैं - 'दुःखसमुदायनिरोधमार्गाश्चत्वारआर्यबुद्धस्याभिमतानि तत्त्वानि।' अर्थात् –

1. दुःख- संसार दुखमय है।
2. दुःखसमुदाय दर्शन- दुख उत्पन्न होने का कारण है (तृष्णा)
3. दुःखनिरोध- दुख का निवारण संभव है
4. दुःखनिरोधमार्ग- दुख निवारक मार्ग (आष्टांगिक मार्ग)

बौद्ध दर्शन मुख्य रूप से तीन सिद्दांतों को मानता है जो निम्नलिखित हैं –

1- **अनीश्वरवाद** – बौद्ध दर्शन ईश्वर की उपस्थिति को स्वीकार नहीं करता है। ईश्वर अथवा कर्मकांड पर विश्वास नहीं करता है और साथ ही वेदों पर भी आस्था नहीं रखता है। इसी कारण इस दर्शन को वेद वाह्य दर्शन कहा जाता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार इस ब्रह्माण्ड को चलाने वाला कोई नहीं है, और न ही इसकी उत्पत्ति हुई है, और न ही अंत क्योंकि उत्पत्ति होने का अर्थ है की अंत भी होना। बुद्ध का मानना है कि यह संसार कारण- कार्य की श्रंखला

पर पर चलता है जिसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहा जाता है। इस श्रंखला को बारह भागों में बांटा गया है।

2- **अनात्मवाद-** बौद्ध दर्शन को आनात्म्वादी दर्शन कहा जाता है क्योंकि बौद्द दर्शन आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता है, बौद्द दर्शन का मानना है कि जिसे लोग आत्मा समझते हैं वो चेतना का अविच्छन प्रवाह है। और यह प्रवाह कभी भी बिखर सकता है और कभी भी अन्धकार में बदल सकता है बौद्ध दर्शन का मानना था कि निर्वाण की अवस्था में ही स्वम को जाना जा सकता है।

3- **क्षणिकवाद** – बौद्ध दर्शन के नुसार इस ब्रह्माण्ड में सब कुछ क्षणिक और नश्वर है। कुछ भी स्थायी नहीं है सब कुछ परिवर्तनशील है। संसार में कोई भी वस्तु अलग अलग ईकाइयों की तरह है जब ये ईकाईयां आपस में मिल जाती हैं तो ये संसार गतिमान हो जाता है जिस प्रकार घोड़े, पहिये और पालकी आपस में संगठित होकर एक रथ का निर्माण करते है और यदि इनको अलग कर दिया जाय तो रथ का अस्तितिव समाप्त हो जाएगा। हमारा यह शरीर और ब्रह्माण्ड इसी प्रकार है। "बौद्धों के अनुसार वस्तु का निरन्तर परिवर्तन होता रहता है और कोई भी पदार्थ एक क्षण से अधिक स्थायी नहीं रहता है। कोई भी मनुष्य किसी भी दो क्षणों में एक सा नहीं रह सकता, इसिलिये आत्मा भी क्षणिक है और यह सिद्धान्त क्षणिकवाद कहलाता है। इसके लिए बौद्ध मतानुयायी प्रायः दीपशिखा की उपमा देते हैं। जब तक दीपक जलता है, तब तक उसकी लौ एक ही शिखा प्रतीत होती है, जबकि यह शिखा अनेकों शिखाओं की एक श्रृंखला है। एक बूँद से उत्पन्न शिखा दूसरी बूंद से उत्पन्न शिखा से भिन्न है; किन्तु शिखाओं के निरन्तर प्रवाह से एकता का भान होता है। इसी प्रकार सांसारिक पदार्थ क्षणिक है, किन्तु उनमें एकता की प्रतीति होती है। इस प्रकार यह सिद्धान्त 'नित्यवाद' और 'अभाववाद' के बीच का मध्यम मार्ग है"। बौद्ध दर्शन उपरोक्त तीन सिद्दांतों पर ही आधारित है। कालान्तर में बौद्ध दर्शन महायान और हीनयान दो सम्प्रदायों में विभाजित हो गया।

महायान – महायान मतानुसार निर्वाण के लिए दो प्रकार के आवरणों का क्षय होना आवश्यक है। क्लेशावरण और ज्ञेयावरण। पहले क्लेशावरण नष्ट होता है और फिर ज्ञेयावरण। जगत के अभाव से सांसारिक पदार्थों की शुन्यता के ज्ञान द्वारा पारमार्थिक सत्य रुपी ज्ञान का आवरण नष्ट होता है। साधक भी सर्वज्ञता को प्राप्त करता है। क्लेश के द्वारा मुक्ति का

आवरण होता है। दोनों प्रकार के आवरणों के विनाश से ही सर्वज्ञता को प्राप्त किया जा सकता है।

हीनयान- हीनयान मतानुसार संसार दुखमय है। दुःख के तीन प्रकार हैं – दुःखदुःखता, संस्कारदुःखता एवं विपरिणा दुःखता। शारीरिक और मानसिक कारणों द्वारा उत्पातद्यमान दुःख दुखता संज्ञक है।उत्पत्तिशील और विनाशशील जगत में वस्तुओं द्वारा उत्पातद्यमान दुःख संस्कार दुःख संस्कार दुःखता कही जाती है ।

स्वमूल्यांकन हेतु अभ्यास प्रश्न

1. गौतम बुद्ध का जन्म स्थान कहाँ है?
2. बौद्ध दर्शन के कितने सम्प्रदाय हैं?
3. बौद्ध दर्शन किस प्रकार का दर्शन है?
4. गौतम बुद्ध के माता-पिता का क्या नाम था ?
5. समस्त दुखों के निवारण हेतु बुद्ध ने कौन सा मार्ग बताया ?
6. बौद्ध दर्शन की कौन-कौन सी शाखाएं हैं ?
7. बौद्ध दर्शन की किन्हीं दो पवित्र स्थानों के नाम बताइये

9.5 बौद्ध दर्शन के शैक्षिक सिद्दांत

बौद्धकाल में शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास का साधना थी। इसका उद्देश्य मात्र पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करना नहीं था, अपितु मनुष्य के स्वास्थ्य का भी विकास करना था। बौद्ध युग में शिक्षा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक,बौद्धिक तथा आध्यात्मिक उत्थान का सर्वप्रमुख माध्यम थी। भारत में साहित्य के लिखित रूप का विकास बौद्ध काल में ही हुआ जिसका उदहारण नालंदा, तक्षशिला, सारनाथ,गया आदि प्रमुख शिक्षण केंद्र हैं। नालंदा विश्व विद्यालय भारत का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए गौरव का विषय था जहाँ इतना अधिक साहित्य एवं अन्य पुस्तकें थी कि जिन्हें बाहरी आक्रमणकारियों ने आग के हवाले कर दिया और यह वैश्विक संपत्ति कई महीनों तक जलते रही। इससे हम ये अनुमान लगा सकते हैं की बौद्ध दर्शन में शिक्षा का विकास अपने चरम स्थान पर था और यदि यही क्रम हमारे देश में जारी रहता तो आज भारत की स्थिति वर्तमान से कहीं आगेकी होती।

9.5.1 बौद्ध दर्शन की पाठ्यचर्या

बौद्ध दर्शन जगत को परिवर्तनशील मानता है इस के परिणामस्वरूप किसी भी वस्तु का अस्तित्व स्थाई नहीं है और ज्ञान भी इसी श्रेणी में आता है अर्थात बौद्ध दर्शन किसी भी प्रकार के शाश्वत ज्ञान में विशवास नहीं रखता है। बौद्ध दर्शन द्वारा प्रतिपादित पाठ्यचर्या में दुखवाद व दुःख निरोध के उपायों के प्रति आग्रह दृष्टिगत होता है। पाठ्यक्रम का आधार दुःख निरोध का था और समाज के उत्थान के लिए पाठ्यक्रम का स्पष्ट रूप से विभाजन किया गया है। पाठ्यक्रम के इस विभाजन में कुछ विषय धार्मिकप्रकृति के थे जिनका आधार अलौकिक था। कुछ विषय लौकिक आधार पर आधारित थे , जिस कारण बौद्ध दर्शन पर आधारित पाठ्यक्रम में एक समन्वयकारी दृष्टिकोण मिलता है। पाठ्यक्रम में परा एवं अपरा ज्ञान का विभाजन करना संभव नहीं है। बौद्ध दर्शन दुखवाद तथा दुःख से मुक्त होने के उपाय पर आधारित है। बौद्ध दर्शन का पाठ्यक्रम निम्नलिखित प्रकार का है –

1-चार आर्य सत्य- इसके अंतर्गत विश्व की व्यवस्था, जगत में मनुष्य का स्थान, जगत के कार्य-व्यापार, जगत की परिवर्तनीयता तथा क्षणिकता (जगत में आभाष होने वाले सुख) जो वास्तव में दुःख हैं आदि का गहन अध्ययन आते हैं।

2- सम्यक रूप से आजीविका उपार्जन करने की कला।

3-बौद्ध- साहित्य का अध्ययन।

4-भगवान् बुद्ध तथा अन्य संतो के जीवन चारित्रों का अध्ययन।

अध्ययन- एवं अध्यापन का कार्य बौद्ध विहारों तथा मठों में किया जाता था

शब्द विद्या- इसके अंतर्गत शब्द निर्माण, व्युत्पत्ति तथा व्याकरण ज्ञान का समावेश होता था।

शिल्पाशन विद्या- इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के उद्योग तथा कलाएं आती हैं।

चिकित्सा विद्या- इसके अंतर्गत औषधि विज्ञान, शरीर विज्ञान आदि का शमावेश किया जाता है।

हेतु विद्या – इसके अंतर्गत तर्कशास्त्र का अध्ययन किया जाता है।

अध्यात्म विद्या – आत्म विद्या के अंतर्गत बौद्ध- दर्शन तथा अन्य दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन आता है ।

उपरोक्त विद्याओं के अतिरिक्त खेल मठों तथा विहारों में व्यायाम तथा खेलकूद का प्रावधान किया जाता था जिससे की विचारों एवं शरीर की शुद्दता बनी रहे।

इसके अतिरिक्त बौद्ध दर्शन में धार्मिक पाठ्यक्रम के अंतर्गत धार्मिक पाठ्यक्रम भिक्षुओं व् भिक्षुणियों के लिए था। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य उन्हें निर्वाण प्राप्त करने की योग्यता प्रदान करना तथा योग्य प्रचारक तैयार करना होता था। इनमे निम्नलिखित विषयों को समावेशित किया गया था।

अ- चार आर्य सत्यों का पूर्ण ज्ञान- इसके अंतर्गत अर्थव्यवस्था , जगत में मानव का स्थान, जगत के व्यापार,जगत की परिवर्तनशीलता , जगत में आभाष होने वाले सुख जो वास्तव में दुःख हैं , आदि का गहन अध्ययन आता है।

ब- बौद्ध धर्म साहित्य त्रिपिटक, सुतंत, विनय, धम्म आदि।

स – विहारों को दिए गये दान हेतु दान की संपत्ति का आय-व्यय का विवरण रखना व प्रबंध करना ।

द- मठों तथा विहारों के निर्माण का व्यवहारिक ज्ञान ।एवं तुलनात्मक ज्ञान के लिए वैदिक साहित्य का अध्ययन।

9.5.2 बौद्ध दर्शन की शिक्षण विधियां

बौद्ध दर्शन में शिक्षा प्रदान करने के लिए मुख्य रूप से निम्नलिखित विधियों का उल्लेख मिलता है जो निम्नलिखित हैं

1-व्याख्यान विधि- बौद्ध दर्शन में शिक्षण विधियों में व्याख्यान विधि प्रमुख है। व्याख्यान विधि के लिए शिक्षक को अपने विषय का ज्ञाता होना पड़ता था अर्थात निष्णात होना चाहिए था। व्याखान विधि में छात्रों को ध्यान पूर्वक सुनना होता था।

अध्यापक द्वारा छोटे समूह में शिक्षा- इस विधि में शिक्षक छोटे छोटे समूहों में विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करता था। इस विधि में छात्र अपने गुरु का अनुकरण करते थे और बाद में स्वम् पाठ करते थे और शिक्षक उनकी अशुद्दियों को दूर करते थे।

2-वाद विवाद विधि- व्याख्यान के अतिरिक्त छात्र जटिल विषयों पर आपस में चर्चा करते थे और किसी निर्णय पर पहुचने का प्रयत्न करते थे। वाद विवाद विधि में निम्नलिखित पदों का प्रयोग वांछनीय है :

i विषय स्पष्ट हो एवं उसकी उपयोगिता स्पष्ट हो। अनुपयोगी विषयों का चयन वाद-विवाद हेतु नहीं होना चाहिए।

ii उसके पश्चात वाद विवाद स्थल का चयन कर वाद विवाद के साधनों का विवेचन करना चाहिए।

iii तत्पश्चात वाद- विवाद कर्ताओं की अहर्ताओं को दृष्टिगत रखकर यह जानना की वाद विवाद कर्ताओं को एक दुसरे के ग्रन्थों का ज्ञान है अथवा नहीं।

3.पर्यटन विधि – सैदंतिक ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् व्यवहारिक ज्ञानार्जन हेतु शिक्षण विधियों में पर्यटन विधि के महत्व को स्वीकार किया गया है। विशेष तौर पर स्नातकोत्तर स्तर पर पर्यटन विधि को सामाजिक, सांस्कृतिक एवं रीतिरिवाजों के अध्ययन एवं मानव स्वाभाव के प्रत्यक्ष अनुभव हेतु तथा भावी जीवन में विस्तृत दृष्टिकोण को जानने एवं समझने के लिए पर्यटन विधि का प्रयोग वांछनीय माना गया है।

4-सूत्र विधि – सूत्र विधि का आशय शिक्षक द्वारा सूत्रबद्ध ज्ञान को छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करने से है। और शिक्षण के वीच में उत्पन्न शंकाओं को दूर करना था।

5.स्वाध्याय विधि- बौद्ध शिक्षा प्रणाली में स्वाध्याय विधि का प्रस्ताव भी था स्वाध्याय हेतु चार सोपान दिए गये थे –

i आवृति – इसके अंतर्गत सूत्रों को बार बार दोहराना आ जाता था।

ii संचय – तथ्यों को स्मरण करना तथा उनक संचय करना।

iii मनन – अध्ययन की गई सामग्री को बार बार मनन करना।

iv धारण – आत्मसात की गई सामग्री को दृढ़ता से धारण करना।

पाठ्य सहगामी क्रियायें- पाठ्यक्रम के उपरोक्त विषयों के अतिरिक्त कुछ पाठ्यक्रम पाठ्य सहगामी क्रियाओं के लिए भी किया गया था। जैसे- "आठ या दस मोहरों से खेल, भूमि पर रचित आकृतियों

के ऊपर से छलांग लगाना, ढेर को बिना हिलाए किसी विशिष्ठ वस्तु को निकालना, चौपड़, रेखा चित्र बनाना, गेंद खेलना, तुरही बजाना, हल चलने की नक़ल करना, नकली पवन चक्की बनाना, पैमानों का अनुमान लगाना, रथों की दौड़, धनुष बाण प्रतियोगिताएं आदि"।

9.5.3 बौद्ध दर्शन के अनुसार शिक्षक

बौद्ध दर्शन के अनुसार वही व्यक्ति शिक्षक हो सकता है, जिसने चार आर्य सत्यों को समझ लिया है तथा जिनका स्वम का जीवन बुद्ध द्वारा प्रदर्शित अष्टांग मार्ग के अनुरूप व्यतीत होता है। बौद्ध दर्शन शिक्षक को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है, बौद्ध दर्शन के अनुसार दो प्रकार के शिक्षक होते थे उनको आचार्य और उपाध्याय कहा जाता था। उपाध्याय भिक्षुओं को पवित्र पुस्तकों एवं सिद्दांतों का ज्ञान देता था, जबकि आचार्यों का दायित्व छात्रों में चारित्रिक विकास एवं व्यव्हार को विकसित करना था। इसी कारण आचार्य को कर्माचार्य भी कहा जाता था। उपाध्याय का स्तर आचार्य के स्तर से ऊपर होता था। उपाध्याय हेतु दश वर्षीय ज्येष्ठता कार्यानुभव एवं आचार्य हेतु छ: वर्षीय ज्येष्ठता मानी जाती थी। उपाध्याय के लिए विद्वान होने के साथ साथ योग्य होना भी आवश्यक था। आचार्य को निस्यायदा व छात्र को निस्याय अन्तेवासी कहा जाता था । आचार्य काम न केवल छात्रों में अनुशासन बनाये रखना है, अपितु उसका दायित्व शिक्षकों के बीच अनुशासन कायम रखने का भी था।

9.5.4 बौद्ध दर्शन के अनुसार शिक्षार्थी

शिक्षा ग्रहण करने एवं शिक्षा प्रदान करने में तत्कालीन बौद्ध दर्शन महत्वपूर्ण है। प्रत्येक विद्यार्थी को किसी ना किसी को गुरु बनाना अनिवार्य होता था। शिक्षार्थी को सामनेर कहा जाता था। बौद्ध दर्शन की शिक्षा प्रणाली आधुनिक शिक्षा प्रणाली के सामान ही थी। जिसमे आचार्य के अधीनस्थ अनेक उपाध्याय और प्रत्येक उपाध्याय के पास छात्रों का एक छोटा समूह अध्ययन करता था। बौद्ध दर्शन की छात्र संकल्पना का आधार मुख्यत: प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्दांत हो सकता है। इस सिद्दांत के अनुसार एक वस्तु की प्राप्ति होने पर दूसरी की उत्पत्ति होती है। और इस प्रकार दूसरी वस्तु की प्राप्ति होने पर किसी तीसरी वस्तु की उत्पत्ति होगी। अर्थात संसार की जितनी वस्तुएं होती हैं उनका कोई कारण अवश्य होता है, वे स्वयं किसी अन्य वस्तु के कारण होती हैं। अचानक किसी न तो किसी पदार्थ की उत्पत्ति होती है और न वह किसी कार्य की उत्पत्ति किये बिना रह सकता है।

'प्रतीत्यसमुत्पाद' से तात्पर्य एक वस्तु के प्राप्त होने पर दूसरी वस्तु की उत्पत्ति अथवा एक कारण के आधार पर एक कार्य की उत्पत्ति से है। प्रतीत्यसमुत्पाद सापेक्ष भी है और निरपेक्ष भी। सापेक्ष दृष्टि से वह संसार है और निरपेक्ष दृष्टि से निर्वाण। यह क्षणिकवाद की भाँति शाश्वतवाद और उच्छेदवाद के मध्य का मार्ग है; इसीलिए इसे मध्यममार्ग कहा जाता है और इसको मानने वाले माध्यमिक। यदि इस संकल्पना को छात्र पर लागू किया जाए तो इससे यह प्रतीत होता है कि छात्र का कोई अतीत अवश्य है और उसका कोई भविष्य भी जरूर है। छात्र का भविष्य उसके वर्तमान के संस्कारों पर निर्भर करता है।

बौद्ध दर्शन के अनुसार विद्यार्थियों का भविष्य उनके वर्तमान पर निर्भर है अत: छात्र के भावी विकास की क्षमताएं उसके वर्तमान के स्वरुप में निहित होते हैं। छात्र के वर्तमान स्वरूप में जो निहित हैं, उसके अनुरूप ही उसे बनाया जा सकता है। कोई कार्य बिना कारण संभव नहीं है। भावी कार्यों के बीज वर्तमान कारण में विद्यमान रहते हैं। बौद्ध दर्शन में शिक्षा 8 वर्ष की आयु में पब्ब्जा संस्कार के बाद आरम्भ होती है। शिष्य को सामनेर कहा जाता है । बौद्ध दर्शन विद्यार्थियों से दस आदेशों के पालन की अपेक्षा करता है जिसे दशशिखा पद्दति कहा जाता है । जो निम्नलिखित हैं–

1. जीव हिंसा नहीं करना ।
2. अशुद्ध आचरण न करना ।
3. असत्य न बोलना ।
4. असमय आहार न करना ।
5. मादक वस्तुओं का उपयोग न करना ।
6. किसी की निंदा न करना ।
7. श्रंगारिक वस्तुओं का उपयोग न करना ।
8. नृत्य आदि तमाशे न देखना ।
9. बिना दिए किसी वस्तु को ग्रहण न करना ।
10. बहुमूल्य वस्तुओं का दान न लेना ।

9.5.5 बौद्ध दर्शन के अनुसार शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्ध

बौद्ध दर्शन में शिक्षक शिक्षार्थी सम्बन्ध बहुत मधुर थे । शिक्षक अपने शिष्यों को पुत्र समान मानते थे , छात्र भी शिक्षकों को अपने पिता सामान मानते थे । शिक्षकों का आचार्य कहा जाता था । दोनों ओर से सम्बन्ध घनिष्ठ एवं मधुर थे । शिक्षक – विद्यार्थियों की हरसंभव सहायता करते थे । परन्तु दोनों को कठोर अनुशाशन में रहना पड़ता था । जहाँ शिष्य से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह शिक्षक के प्रति पूर्ण ह्रदय से समर्पित रहे, वहीँ समान मानदंड शिक्षक के लिए भी प्रस्तावित था । बौद्ध "संघ के दृष्टिकोण से शिक्षक, शिष्य समबन्ध भिन्न प्रकार से थे इसका कारण संघ में दोनों का प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध रखना था। शिष्य को इस कारण यह अधिकार था कि यदि कोई शिक्षक गंभीर अपराध करे तो शिष्य उसे संघ से दण्डित कराये" । एक ओर जहाँ शिष्य से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह शिक्षक के प्रति पूर्ण ह्रदय से समर्पित रहे,वहीँ सामान मानदंड शिक्षक के लिए भी प्रस्तावित था। शिक्षक को छात्रों के प्रति अपेक्षित व्यवहार के अंतर्गत वह नैतिक क्रियाओं में प्रवीण, आत्म चिन्तक, ज्ञानी व् मुक्त होना चाहिए। उसमे दूसरों को पूर्णता तक सहायता करने की योग्यता होनी चाहिए। शिक्षक सरल, पाप से डरने वाला, कुशाग्र बुद्दी, तीव्र स्मृति वाला, शिक्षित व् मेधावी होना चाहिए। वह छात्र को उपुक्त व्यवहार, उपयुक्त नैतिकता के क्षेत्र में प्रशिक्षित करने में सक्षम होना चाहिए।

9.5.6 बौद्ध शिक्षा दर्शन में अनुशासन

बौद्ध शिक्षा दर्शन में नैतिक अनुशासन पर विशेष बल दिया गया था। भगवान् बुद्ध ने अष्टांग मार्ग के रूप में जिस आध्यत्मिक और नैतिक अनुशाशन का मार्ग बताया है, वः चार आर्य सत्यों में प्रतपादित चतुर्थ आर्य सत्य "दुःख निरोध मार्ग" का व्यावहारिक रूप में है। छात्र अनुशाशन के दृष्टिकोण से यह सामान रूप से उपयोगी है। इसके अतिरिक्त दश शिखा पद्दति के रूप में भी छात्रों को अनुशासित रहने का मार्ग बताया गया।

स्वमूल्यांकन हेतु अभ्यास प्रश्न

8. बौद्ध दर्शन के अंतर्गत त्रिपिटक कौन –कौन से हैं?
9. बौद्ध दर्शन में शिक्षार्थी/ विद्यार्थी को किस नाम से जाना जाता था ?

10. बौद्ध दर्शन शिक्षार्थियों से कम से कम कितने आदेशों के पालन की अपेक्षा की जाती थी?
11. बौद्ध दर्शन में उच्च वर्ग के शिक्षकों को किस नाम से जाना जाता था ?
12- बौद्ध दर्शन किस प्रकार के अनुशासन पर बल देता है ?
13 बौद्ध दर्शन में लिखे गये पिटकों की भाषा कौन सी है ?

9.6 सारांश

बौद्ध शिक्षा दर्शन मध्यमा- प्रतिपदा – सिद्दांत परिलक्षित होता है। बौद्द दर्शन में जीवन के किसी ऐकान्तिक मूल्य पर आग्रह दिखाई नही देता। इसका अर्थ है कि बौद्ध दर्शन मिश्रित विचारों का दर्शन है। यह न तो पूर्ण विरक्ति पर आग्रह और न ही सांसारिक सुख को सर्वस्व मानता है। इससे इस बात को बल मिलता है कि आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक विषय के बीच एक मध्यम मार्ग है जो मनुष्य के उत्थान के लिए आवशयक है क्योंकि बौद्ध दर्शन एक ओर जहाँ बौद्ध धर्म की शिक्षा का आग्रह करता है वहीँ दूसरी ओर व्यावहारिक जीवन के शिक्षा की उपेक्षा नहीं करता है। एक ओर जहाँ ध्यान , चिंतन एवं मनन की बात करता है तो दूसरी और आजीविका की शिक्षा पर भी बल दिया गया है। बौद्ध दर्शन यह मानता है कि मनुष्य के विकास मे नैतिक कारण- कार्य कारण सिद्दांत रहता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार सारी सृष्टि हमारे संकल्प का परिणाम है यदि हम सदाचार का संकल्प करें तो निश्चित रूप से नैतिक भी बन सकते हैं। शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी को नैतिक मूल्यों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है तभी वह जीवन में एक नागरिक के रूप में राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान कर सकता है। बौद्द दर्शन मानसिक स्वास्थ्य के साथ साथ शारीरिक स्वास्थ्य को भी महत्व देता है। बौद्ध दर्शन का मानना है कि बुद्दी के साथ-साथ शरीर को स्वस्थ रखना हमारा कर्तव्य है। अन्यथा विवेक का दीपक प्रज्वल्लित नहीं किया जा सकता है। बौद्ध दर्शन एक ओर जहाँ सांसारिक सुखों की लालसा का त्याग करने पर बल देता हैं वहीँ दूसरी ओर उचित मार्ग को अपनाकर आजीविका कमाने पर भी बल देता है। संघ को इसी कारण सम्पति रखने का अधिकार दिया गया था। बौद्ध दर्शन में सामाजिक मूल्यों को बनाये रखने के लिए छोटे-छोटे समूहों में शिक्षा देने का आग्रह किया गया जिसके लिए समूहों में शांति तथा समन्वय बनाये रखने के लिए अनुशासन के नियम बनाये गये और इस प्रकार सामाजिक नियम तथा अनुदेशों के पालन का आग्रह किया गया। विद्यार्थियों के लिए

दसशिखा पद्दति को अपनाने की अपेक्षा की जाती थी जबकि आम जन को अष्टांग मार्ग अपनाने की बात कही गयी थी। यधपि बौद्ध दर्शन का जन्म भरात में हुआ परन्तु शीघ्र ही यह दर्शन चीन,जापान, भूटान, वर्मा सहित कई एशियाई देशों में मजबूती से अपना प्रभाव ज़माने में कामयाब रहा।

9.7 स्वमूल्यांकन हेतु अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1-कपिलवस्तु/2- चार सम्प्रदाय/ 3- नास्तिक /4- माया देवी एवं सुद्धोधन/5-अष्टांग मार्ग /6-हीनयान एवं महायान/ 7-सारनाथ एवं गया /8- विनय-पिटक, सुत्त -पिटक तथा अभिधम्म पिटक/ 9- सामनेर /10- दस /11- उपाध्याय /12- नैतिक अनुशासन /13-पाली भाषा

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- नरेन्द्रदेव आचार्य (2011) बौद्धधर्म-दर्शन मोतीलाल बनारसीदास पब्लिसर्स प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली
- सक्सेना एन.आर.स्वरुप, चतुर्वेदी शिखा (2012) आर.लाल.बुक डिपो मेरठ
- ओड .एल.के. (2011) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर
- खान बसीम (2016) भारतीय दर्शन में समाधी परम्परा (सन्दर्भ : बौद्ध एवं योग दर्शन) साहित्यघर जयपुर।
- वाकडे मनीषा (2020) बौद्ध निकायों का इतिहास, भारत भारती प्रकाशन वाराणसी
- https://hindi.webdunia.com/buddha-jayanti-special/buddha-purnima-2021
- https://hi.wikipedia.org/wiki
- https://nios.ac.in/media/documents/bgp/Secondary_Hindi/Bharatiya_Darshan_247/247_book1/247-Book1_L8.pdf

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. गौतम बुद्ध का जीवन परिचय लिखिए।

2. बौद्ध दर्शन के दार्शनिक विचारों को विस्तार पूर्वक लिखिए।
3. बुद्ध द्वारा बताये गये अष्टांग मार्ग की व्याख्या कीजिए।
4. बौद्ध दर्शन के अनुसार मोक्ष को स्पष्ट कीजिए।
5. बौद्ध दर्शन के अंतर्गत शिक्षार्थियों से दस आदेशों के पालन की अपेक्षा की जाती हैं जिसे दसशिखा पद्दति कहा जाता है अपने शब्दों में इस पद्दति की व्याख्या कीजिए।
6. बौद्ध दर्शन के शैक्षिक विचारों को विस्तार पूर्वक लिखिए।

इकाई 10: प्रकृतिवाद (Naturalism)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

10.2 उद्देश्य (Objectives)

भाग-1

10.3 प्रकृतिवाद (Naturalism)

10.3.1 प्रकृतिवादी दर्शन का अर्थ (Meaning of Naturalistic Philosophy)

10.3.2 प्रकृतिवाद की परिभाषाएं (Definition of Naturalism)

10.3.3 प्रकृतिवाद के दार्शनिक स्वरूप Philosophy Form of Naturalism

अपनी उन्नति जानिए (Check your progress)

भाग-2

10.4 प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्त (Principal of Naturalism)

10.4.1 प्रकृतिवाद व शिक्षा के उद्देश्य (Naturalism & aims of Education)

10.4.2 प्रकृतिवाद व पाठ्यक्रम (Naturalism and Curriculum)

10.4.3 प्रकृतिवाद व शिक्षण विधियां (Naturalism and Methods of Teaching)

अपनी उन्नति जानिए (Check Your Progress)

भाग-3

10.5 प्रकृतिवाद की प्रमुख विशेषताएं (Chief Characteristics of Naturalism)

9.5.1 शिक्षा में प्रकृतिवाद की देन (Contribution of Naturalism in Education)

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

10.6 सारांश (Summary)

10.7 कठिन शब्द (Difficult Words)

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Question)

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

10.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ (Useful Books)

10.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long Answer Type Question)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

दर्शन की समस्या के रूप में तत्व की खोज तो अनादि काल से हो रही है और इसी आधार पर दार्शनिकों को समूहों में बांट दिया गया है। जो एक तत्व मानते हैं वे एकतत्ववादी अथवा अद्वैतवादी, जो दो तत्वों में विश्वास करते हैं वे द्वितत्ववादी अथवा द्वैतवादी और बहुतत्व मानने वाले बहुततत्ववादी कहलाते हैं। साधारणतया एकतत्ववादी विचारधारा ही प्रबल है। ब्रह्माण्ड का मूल कारण चेतन है अथवा अचेतन? उसका रूप पौद्गलिक है अथवा मानसिक? इन प्रश्नों का उत्तर यह प्रकट कर देगा कि विचारक विचारवादी है अथवा प्रकृतिवादी। विचारवादी प्रत्ययों को शाश्वत मानता है और उन सब प्रत्ययों का भी मूल किसी एक प्रत्यय को ही मानता है। यह मूल तत्व उसके अनुसार मानसिक है। यह तत्व चेतन है। इस पर आधारित शिक्षा-प्रणाली उस शिक्षा प्रणाली से भिन्न होगी जो पुद्गल को ही प्रथम कारण मानते हैं और साथ-साथ उसे स्वयं प्रेरक, परिवर्तनशील और प्रयोजनहीन मानते हैं। यह मूल तत्व पुद्गल है और प्रयोजनहीन है तो शिक्षा का उद्देश्य प्रयोजनशील नहीं हो सकता। केवल जीवित रहने के योग्य बनाना ही शिक्षा का लक्ष्य रहेगा।

एक प्रकृतिवादी विचारधारा यांत्रिक भौतिकवाद से मिलती है। भौतिकवादी के लिए पुद्गल मूल तत्व है, मनस है मस्तिष्क उसकी क्रिया। पुद्गल ही मनस् का उद्गम है, न कि मनस पुद्गल का प्रेरक। चेतना इस मस्तिष्क का उपफल है। भौतिकवादी संसार को एक यंत्र मानते हैं और उनके लिए जीवित प्राणी तो केवल अणु-परमाणु इत्यादि का जोड़ है। प्राकृतिक चुनाव के द्वारा उच्च प्रकार की चेतन-मशीनों की उत्पत्ति संभव है। अतः भौतिकवादियों के लिए मनुष्य एक यंत्र है। प्रयोजनहीन, लक्ष्यहीन और निर्माण की शक्ति से च्युत मनुष्य केवल एक यंत्र है और मनोविज्ञान के लिए व्यवहारवादी शाखा इस दर्शन की देन है। व्यवहारवादी मनोविज्ञान के अनुसार मनोविज्ञान मनुष्य के केवल बाह्य व्यवहार का अध्ययन करता है और जिन्हें हम मानसिक क्रियायें कहते है। वे केवल बाह्य उत्तेजन की प्रतिक्रिया

मात्र हैं। आत्मा और परमात्मा की मान्यता इस विचारधारा के अनुसार नहीं के बराबर है। चार्वाक का मत भी इस विचारधारा से मिलता-जुलता सा ही है।

10.2 उद्देश्य (Objectives)

1. प्रकृतिवाद के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. प्रकृतिवाद व शिक्षा के संबंध में जान सकेंगे।
3. प्रकृतिवादी दर्शन के अर्थ का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. प्रकृतिवाद के दार्शनिक रूपों का अध्ययन कर सकेंगे।
5. प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे।
6. प्रकृतिवाद की प्रमुख विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे।

10.3 प्रकृतिवाद और शिक्षा (Naturalism and Education)

प्रकृतिवाद यह मानता है कि ''वास्तविक संसार भौतिक संसार है'' (Material word is the real word) इसी कारण हम प्रकृतिवाद को भौतिकवादी दर्शन भी कहते हैं। प्रकृतिवाद इस सृष्टि की रचना के लिए प्रकृति को ही उत्तरदायी मानता है। इसके अनुसार सभी दार्शनिक समस्याओं का प्रत्युत्तर प्रकृति में निहित होता है। (Nature alone Contain the final answer to all philosophical Problems)

दार्शनिक प्रकृति की व्याख्या सामान्यतया इस रूप में करते हैं कि प्रकृति सामान्य व स्वाभाविक रूप से विकसित होने वाली एक प्रक्रिया है। इस ब्रह्माण्ड की वह सभी वस्तुएं जिनकी रचना या निर्माण में मनुष्य का शून्य योगदान है, वही प्रकृति है। इसके साथ ही कुछ दार्शनिक विचारधारा मानती है कि प्रकृति वह है जो सर्वत्र तथा सर्वदा विद्यमान है और इसकी गतिविधियां निश्चित व प्राकृतिक नियमों द्वारा संचालित व नियंत्रित होती हैं। साथ ही इनका यह भी विचार है कि प्रकृति में अनेक पदार्थ होते हैं जिनके परस्पर सहयोग से विभिन्न प्रकार की रचनाएं जन्म लेती हैं। यह पदार्थ गतिशील व क्रियाशील होते हैं। इसी कारण प्रकृतिवाद, भौतिकवाद भी कहा जाता है।

दर्शनशास्त्र में प्रकृति को ही सर्वोपरि सत्ता के रूप में स्वीकार किया जाता है परन्तु प्राकृतिक दार्शनिक विचारधारा बहुत ही व्यापक रूप में प्रकृति को स्वीकार करती है। एक ओर तो वह प्रकृति को भौतिक जगत के रूप में देखती है, जिसका हम प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं तो दूसरी ओर प्रकृति की व्याख्या जीव-जगत के रूप में भी की जाती है। साथ ही तीसरे अर्थ में देश-काल की सभी बातें भी प्रकृति में निहित होती हैं।

10.3.1प्रकृतिवादी दर्शन का अर्थ (meaning of Naturalistic Philosophy)-

प्रो. सोर्ले के अनुसार प्रकृतिवाद को नकारात्मक रूप से भली-भांति समझाया जा सकता है। यह वह विचारधारा है जिसके अनुसार स्वाभाविक या निर्माण की शक्ति मनुष्य के शरीरर को नहीं दी जा सकती। प्रकृतिवादी विचारक बुद्धि का स्थान मानते हैं, पर कहते हैं कि उसका अर्थ केवल बाह्य परिस्थितियों तथा विचारों को काबू में लाना है जो उसकी शक्ति से बाहर जन्म लेते हैं। एक प्रकार से प्रकृतिवादी भी भौतिकवादियों की भांति आत्मा-परमात्मा, स्पष्ट प्रयोजन, इत्यादि की सत्ता में विश्वास नहीं करते। प्रकृतिवाद सभ्यता की जटिलता की प्रतिक्रिया के रूप में हमारे सम्मुख आया है। इसके मुख्य नारे ''प्रकृति की ओर लौटो'', ''समाज के बंधनों को तोड़ो'' इत्यादि हैं। सभ्यता का लचीलापन समाप्त होने पर यह वाद जन्म लेता है। पर प्रकृति का अर्थ क्या है ? सर जान एडम्स ने कहा है कि यह शब्द बड़ा ही जटिल है। इसकी अस्पष्टता के कारण बहुत सी भूलें और अन्धकार का फैलाव होता है। इसका अर्थ तीन प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम अर्थ में प्रकृति का तात्पर्य है निहित गुण और विशेषकर वे गुण जो जीवन के विकास और क्रमशः उन्नति की ओर ले जाने के लिए सहायक हों। यदि हम बालक को पढ़ाना चाहते हैं तो उसके विकास के नियम हमें ज्ञात होने चाहिए। प्रकृति का इस प्रकार अर्थ करने का गौरव रूसो को प्राप्त है। डॉ. हॉल जिसे बाल-केन्द्रित शिक्षा कहते हैं, उसे रूसो ने प्रेरणा दी थी, यद्यपि उससे पूर्व क्विन्टिलियन भी इसे जानता था। इस संदर्भ में हम कह सकते हैं कि प्रथम अर्थ में प्रकृति का तात्पर्य बहुत कुछ स्वभाव से लगाया जाता है।

प्रकृति का द्वितीय अर्थ है बनावट के ठीक विपरीत। जिस कार्य में मनुष्य ने सहयोग न दिया वही प्राकृतिक है। यह सत्य है कि मनुष्य प्रकृति में अपनी क्रियात्मकता से परिवर्तन लाया करता है। पर इसका अर्थ बनावट तो नहीं है। क्योंकि उक्त परिवर्तन अप्राकृतिक कैसे हो सकता है, जबकि मनुष्य

स्वयं प्रकृति के कारण जीवित है और वह प्राकृतिक प्राणी है। बस इसका अर्थ यह है कि हम आदि काल की बात सोचने लगें। उस समय मनुष्य पशु था अथवा एक साधु अवस्था में, इसका निर्णय कठिन है। फिर एक चोर चोरी करने में क्या अपने स्वभाव का सहारा नहीं लेता ? फिर उसे सजा क्यों मिलती है ? क्या हमें बालक को मूल्य प्रवृत्ति या संवेगों की शिक्षा देनी है ? हम ठीक नहीं बता सकते। हमारा हृदय केवल उपयुक्त और हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों को ही जीवित रहने में सहायता पहुंचाना नहीं है वरन् आधे से अधिक मनुष्यों को जीवित रखने के योग्य बनाना है और हम यहां प्रकृति को स्वाभाविक तथा बनावटी दोनों ही रूपों में लेते हैं।

प्रकृति का तृतीय अर्थ है समस्त विश्व तथा उसकी क्रिया और इस अर्थ में मनुष्य जो कुछ भी करता है वह प्राकृतिक है। शिक्षा में इसका अर्थ होगा विश्व की क्रिया का अध्ययन और उसे जीवन में उतार देना। इसका अर्थ हुआ कि एक सुस्त और कामचोर को भी इस प्रकार कहने का अवसर मिल सकता है कि वह बहुत से कीटाणुओं की भांति स्वाभाविक रूप से कार्य नहीं कर सकता। इस प्रकार हिंसक प्रवृत्ति का व्यक्ति अपनी हिंसात्मक कार्यवाहियों को भी प्राकृतिक कहने की धृष्टता कर सकेगा। कुछ विद्वानों का मत है कि मनुष्य को प्रकृति की विकासवादी श्रृंखला में बाधक नहीं बनना चाहिए वरन् उसे उस क्रिया से अलग ही रहना ठीक है। विकास किसी व्यक्तित्व के बिना नहीं हो सकता, व्यक्तित्व बिना प्रयोजन काम नहीं कर सकता। इसलिए हमें कुछ विद्वानों के अनुसार इस विकास के नियम का अध्ययन करना चाहिए तथा प्रकृति का अनुयायी हो जाना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य इस विकास को समझाना तथा इसका अनुयायी बनने में सहायता करना है। शिक्षा संभव हो सके, इसलिए हमें बहुत सी बनावटी बातों पर भी बल देना होगा। इस प्रकार हमने देखा कि प्रकृति के अर्थ का निर्णय कठिन है। फिर भी हम इस बात को जानते हैं कि हरबर्ट स्पेसर तथा रूसो को प्रकृतिवादी माना जाता है।

10.3.2 प्रकृतिवाद की परिभाषाएं (Definition of Naturalism)

प्रकृतिवाद की परिभाषा को हम निम्न प्रकार समझ सकते हैं:-

जेम्स बार्ड- ''प्रकृतिवाद वह सिद्धान्त है, जो प्रकृति को ईश्वर से पृथक करता है, आत्मा को पदार्थ के अधीन करता है और अपरिवर्तनीय नियमों को सर्वोच्चता प्रदान करता है।''

थॉमस और लेंग के अनुसार- ''प्रकृतिवाद आदर्शवाद के विपरीत मन को पदार्थ के अधीन मानता है, और यह विश्वास करता है कि अंतिम वास्तविकता-भौतिक है, आध्यात्मिक नहीं।''

जायस के अनुसार- ''प्रकृतिवाद एक ऐसा दार्शनिक तंत्र है, जिसमें प्रभुत्व विशेषता के रूप में आध्यात्मिक, अन्त ज्ञानात्मक एवं पदार्थ जगत से परे की अनुभूतियों को बहिष्कृत किया जाता है।''

पैरी के अनुसार- ''प्रकृतिवाद, विज्ञान नहीं है, वरन् विज्ञान के बारे में दावा है। अधिक स्पष्ट रूप में यह इस बात का दावा है कि वैज्ञानिक ज्ञान अंतिम है, जिसमें विज्ञान से बाहर या दार्शनिक ज्ञान का कोई स्थान नहीं है।''

ब्राइस के अनुसार- ''प्रकृतिवाद एक प्रणाली है और जो कुछ आध्यात्मिक है, उसका बहिष्कार ही उसकी प्रमुख विशेषता है।''

रस्क के अनुसार- ''प्रकृतिवाद एक दार्शनिक स्थिति है जिसे वे लोग अपनाते हैं, जो दर्शन की व्याख्या वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करते हैं।''

10.3.3 प्रकृतिवाद के दार्शनिक स्वरूप (Philosophy Form of Naturalism)

दार्शनिक सिद्धान्त की दृष्टि से प्रकृतिवाद के निम्नलिखित तीन रूप माने जाते हैं:-

(1) भौतिक जगत का प्रकृतिवाद (Naturalism of Physical Words) - यह सिद्धान्त मानव क्रियाओं व्यक्तिगत अनुभवों, संवेगों, अनुभूतियों आदि की भौतिक विज्ञान से व्याख्या करना चाहता है। यह भौतिक विज्ञान के द्वारा समस्त जगत की व्याख्या करना चाहता है। इसका शिक्षा के क्षेत्र पर विशेष प्रभाव नहीं है। इसने विज्ञान को ज्ञान में सबसे ऊंचे आसन पर बैठा दिया है। विज्ञान न केवल एक मात्र ज्ञान है बल्कि उसके अलावा कोई ज्ञान संभव नहीं है। इस प्रकार भाववाद के रूप में इस सिद्धान्त में दार्शनिक ज्ञान को भी व्यर्थ माना जाता है।

(2) यांत्रिक प्रकृतिवाद (Mechanical Naturalism) - इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त जगत एक यंत्र के समान कार्य कर रहा है और वह यंत्र जड़तत्व का बना है जिसमें स्वयं उसको चलाने की शक्ति है। इस प्रकार प्रकृतिवाद का यह रूप जड़वाद है। जड़वाद के अनुसार जड़तत्व ही सब कुछ है और जो कुछ है वह जड़ है। व्यक्ति एक सक्रिय यंत्र से अधिक कुछ नहीं है। उसमें परिवेश के प्रभाव के कारण

कुछ सहज क्रियायें होती हैं। यंत्रवाद के प्रभाव से मनोविज्ञान में व्यवहारवादी सम्प्रदाय का जन्म हुआ जिसके अनुसार समस्त मानव-व्यवहार की व्याख्या उत्तेजना और अनुक्रिया के शब्दों में की जा सकती है। व्यवहारवादी जड़तत्व से अलग चेतना का कोई अस्तित्व नहीं मानते और चिन्तन, कल्पना, स्मृति आदि सभी मानसिक प्रक्रियाओं की व्याख्या शारीरिक शब्दों के द्वारा करते हैं। इनके अनुसार मनुष्य और पशु की क्रियाओं में कोई अन्तर नहीं है, इन दोनों की ही व्याख्या उत्तेजना-अनुक्रिया के शब्दों में की जा सकती है। इस प्रकार व्यवहारवाद समस्त मानव-व्यवहार की यांत्रिक प्रक्रिया के रूप में व्याख्या करता है। प्रकृतिवाद के इस रूप ने शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक प्रभाव डाला है।

(3) जैवकीय प्रकृतिवाद (Biological naturalism) - प्रकृतिवाद के इस रूप ने शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक प्रभाव डाला है। इसी ने प्राकृतिक मानव का सिद्धान्त उपस्थित किया। विकासवाद पशु और मानव विकास को एक ही क्रम में मानता है। वह मनुष्य की आध्यात्मिक प्रकृति को नहीं मानता और उसकी प्रकृति को मानव पूर्वजो से मिला हुआ मानता है। इसलिए मनुष्य और पशु स्वभाव में बहुत कुछ समानता है। जैवकीय प्रकृतिवाद के अनुसार जगत में समस्त प्रक्रियाओं और समस्त प्रकृति की व्याख्या भौतिक अथवा यांत्रिक क्रियाओं के रूप में नहीं की जा सकती क्योंकि जीव जगत में विकास मुख्य घटना है। सभी प्राणियों में जीवन की प्रेरणा होती है और इसलिए जीवन का निम्न से उच्च स्तरों का विकास होता है। विकास के समस्त लक्षण मानव व्यक्ति के जीवन में देखे जा सकते हैं। वह क्या रूप लेगा और किस प्रकार वृद्धि करेगा यह सब विकास के सिद्धान्तों से निश्चित होता है। जबकि पशु-जगत में विकास की प्रक्रिया केवल भौतिक स्तर तक ही सीमित है। मानव-प्राणियों में वह सबसे अधिक मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक स्तरों पर ही बढ़ती है। केवल मानव व्यक्ति ही नहीं बल्कि मानव समूहों में भी विकास की प्रेरणा होती है और इसलिए वे विकसित होते हैं तथा उनमें विकास के वे ही नियम काम करते हैं जो व्यक्ति के विषय में लागू होते हैं। चार्ल्स डार्विन ने विकास की प्रक्रिया में अस्तित्व के लिए संघर्ष (Struggle for Existence) और उपयुक्ततम की विजय (Survival of the Fittest) के सिद्धान्तों को महत्वपूर्ण माना है। इसके अनुसार आत्म-संरक्षण (Self preservation) ही प्राकृतिक जगत में सबसे बड़ा नियम है।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

प्र.1. पुदगल से क्या अभिप्राय है ?

प्र. 2. प्रकृति से आप क्या समझते हैं ?

प्र. 3. ''प्रकृतिवाद आदर्शवाद के विरूद्ध मन को पदार्थ के अधीन मानता है और यह विश्वास करता है कि अंतिम वास्तविकता भौतिक है, आध्यात्मिक नहीं।'' यह परिभाषा किस विद्वान की है ?

(अ) जेम्स वार्ड (ब) थॉमस और लैग (स) जायस (द) पैरी

प्र. 4. यांत्रिक प्रकृतिवाद से आप क्या समझते हैं ?

10.4 प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्त (Principles of Naturalism)

प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्त निम्नवत् हैं:-

1. इस सृष्टि का निर्माण वस्तु या तत्व से हुआ है। मानव भी वस्तु का ही एक रूप है।

2. प्रकृतिवाद में धर्म एवं ईश्वर का कोई स्थान नहीं है।

3. मस्तिष्क की क्रिया फल ही अनुभव है।

4. प्रकृतिवाद के अनुसार समाज व्यक्ति के लाभ के लिए है। अतः समाज का स्थान व्यक्ति के बाद आता है।

5. मानव की मूल प्रवृत्ति पशुओं के समान होती है।

6. प्रकृति अंतिम सत्ता या वास्तविकता है।

7. नैतिक मूलप्रवृत्ति, जन्मजात अन्तरात्मा, परलोक, वैयक्तिक अमरता, चमत्कार, ईश्वर-कृपा, प्रार्थना-शक्ति और इच्छा की स्वतंत्रता, भ्रम है।

8. मनुष्य के सांसारिक जीवन की भौतिक दशाएं विज्ञान की खोजों और मशीनों के आविष्कारों द्वारा बदल दी गई।

9. विकास की प्रक्रिया में मस्तिष्क एक घटना है। यह उच्चकोटि के जीवों में अधिक विकसित नाड़ी मण्डल का समूह है।

10. हर वस्तु का जन्म प्रकृति के ही सान्निध्य में होता है और मृत्युपरांत प्रकृति (पंचतत्व) में ही विलीन हो जाता है।

11. ज्ञान और सत्य का आधार-इन्द्रियों का अनुभव है।

12. प्रकृति के नियम अपरिवर्तनीय हैं। अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियम सब घटनाओं को भली प्रकार स्पष्ट करते हैं।

13. वास्तविकता की व्याख्या केवल प्राकृतिक विज्ञानों द्वारा की जा सकती है।

14. मस्तिष्क मानव की शक्ति एवं क्रिया का स्रोत है।

10.4.1 प्रकृतिवाद व शिक्षा के उद्देश्य (Naturalism and aims of Education)

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री रूसो (Rousseau) ने कहा कि शिक्षा का उद्देश्य मानव को प्रकृति के अनुकूल जीवन व्यतीत करने हेतु योग्य बनाना है। शिक्षा के द्वारा हम मानव में कुछ नया उत्पन्न नहीं करते वरन् मानव की मौलिकता को बनाये रखने का प्रयास करते हैं और मानव संसर्ग के फलस्वरूप उसमें जो कृत्रिमता आ जाती है, उसका विनाश करने का प्रयास करते हैं। रूसो ने कहा कि ''रोजमर्रा के व्यवहार को (समाज-सम्मत व्यवहार को) बदल डालो और सदा सर्वदा तुम्हारा कृत्य सही होगा।'' रूसो ने हर स्थान पर सामाजिक संस्थाओं की अवहेलना की है। वह कहता है कि ''मानवीय संस्थाएं मूर्खता तथा विरोधाभास के समूह हैं।'' परन्तु वह प्रकृति को ईश्वरीय सृष्टि मानता है और मनुष्यको ईश्वरीय कृति।

जैवकीय प्रकृतिवाद के अनुसार शिक्षा के तीन प्रमुख उद्देश्य माने जाते हैं:-

1 व्यक्ति को इस योग्य बनाना जिससे कि वह इस जगत में अपने आपको जिन्दा रख सके, जीवन के संघर्षो का मुकाबला कर सके तथा सफलता प्राप्त करने हेतु प्रयास कर सके।

2 शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्ति को उसके वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने की योग्यता प्रदान करना।

3.बर्नार्ड शॉ के अनुसार, ''शिक्षा का उद्देश्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जातीय संस्कृति का संरक्षण, हस्तान्तरण व वृद्धि होना चाहिए। यह उद्देश्य आदर्शवादी उद्देश्य के निकट है।''

संक्षेप में, प्रकृतिवाद के अनुसार हम शिक्षा के निम्न उद्देश्य बता सकते हैं -

1. शिक्षा द्वारा बालक को प्राकृत जीवन व्यतीत करने हेतु तैयार करना।

2. बालक की प्राकृतिक शक्तियों का विकास करना।

3. बालक को इस प्रकार का ज्ञान व दक्षता प्रदान करना जिससे कि वह अपने पर्यावरण के साथ समायोजित हो सके।

4 मानव में उचित तथा उपयोगी सहज क्रियाओं को उत्पन्न करना अर्थात् मनुष्य में शिक्षा द्वारा ऐसी आदतोंएवं शक्तियों का विकास करना जो मशीन के पुर्जे की भांति अवसरानुकूल प्रयुक्त की जा सकें।

5. बालक को जीवन संघर्षो के योग्य बनाना।

6. जातीय निष्पत्तियों का संरक्षण करना व विकास करना।

7. बालक का आत्मसंरक्षण व आत्मसंतोष की प्राप्ति।

8. मूल प्रवृत्तियों का शोधन एवं मार्गान्तरीकरण।

9. बालके के व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास।

10.4.2 प्रकृतिवाद व पाठ्यक्रम (Naturalism of Curriculum)

प्रकृतिवाद के शिक्षा के उद्देश्य के संबंध में स्पेन्सर ने पांच उद्देश्यों की चर्चा की है। वह प्रकृतिवाद के पाठ्यक्रम को भी इन उद्देश्यों की पूर्ति का एक साधन मानते हुए कहते हैं:-वास्तव में यदि देखा जाए तो प्रकृतिवादी पाठ्यक्रम का संगठन अपने ही ढंग से करते हैं और मानते हैं कि बालक की प्रकृति, नैसर्गिक रूचि, योग्यता, अनुभव व स्वाभाविक क्रियाओं के आधार पर ही पाठ्यक्रम का संगठन होना चाहिए और पाठ्यक्रम में वह विषय रखे जाने चाहिए जो बालक के विकास की विभिन्न

अवस्थाओं के अनुरूप हों। पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्तों के संबंध में प्रकृतिवादी विचारधारा इस प्रकार हैः-

1. पाठ्यक्रम निर्माण का आधार बालक हो।

2. पाठ्यक्रम में विज्ञान विषयों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाये।

3. पाठ्यक्रम व्यावहारिक व जीवनोपयोगी हो।

4. पाठ्यक्रम अनुभव-केन्द्रित हो।

10.4.3 प्रकृतिवाद व शिक्षण विधियां (Naturalism and method of Teaching)

प्रकृतिवाद शिक्षण विधियों के परम्परागत प्रारूप की आलोचना करता है और इस विचार को मान्यता देता है कि शिक्षण विधियों में भी नित्य नवीन परिवर्तन होने चाहिए। रूसो Rousseau) ने कहा है कि अपने शिक्षार्थी को कोई भी शाब्दिक पाठ न पढ़ाओ वरन् उसे अनुभव द्वारा सीखने के अवसर दो। (Give your scholar no verbal lesson, he should be taught by experience alone) प्रकृतिवाद का केन्द्रबिन्दु छात्र है। इस कारण वह यह मानते हैं कि जिन विधियों के द्वारा छात्रों को पढ़ाया जाये, वह निम्न तीन सिद्धान्तों पर आधारित हों:-

1. विकास या उन्नति का सिद्धान्त (Principal of growth)

2. छात्र क्रिया का सिद्धान्त(Principal of pupil Activity)

3. वैयक्तिकता का सिद्धान्त (Principal of Individualization

स्पेन्सर (Spencer) महोदय ने प्रकृतिवादी शिक्षण विधियों की चर्चा की है, जो इस प्रकार है -

1. प्रकृति के अनुरूप शिक्षा (Education according to Nature) - शिक्षा बालक के लिए संचालित की जाने वाली एक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य बालक का स्वाभाविक रूप से विकास करना

है। अतः शिक्षा के द्वारा बालक की नैसर्गिक वृद्धि होनी चाहिए और शिक्षण प्रक्रिया व बालक के अनुभवों के बीच सामंजस्य स्थापित किया जाना चाहिए।

2. शिक्षा आनन्द प्रदायनी Education for Enjoyment- हम शिक्षण की जो विधि अपनाएं, उसका उद्देश्य बालक में शिक्षण के प्रति रूचि जागृत करना होना चाहिए। चूंकि जब तक बालक किसी चीज में रूचि नहीं लेगा, तब तक वह शारीरिक व मानसिक रूप से किसी भी बात को सीखने हेतु तत्पर नहीं होगा। इसी कारण प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक थार्नडाइक ने कहा था कि शिक्षण विधि में अभिप्रेरणा सिद्धान्त, प्रभाव का नियम तथा तत्परता का नियम (Law of Effect) को समाहित किया जाना चाहिए।

3. स्वचालित आत्म-क्रिया (Spontaneous self-activity)- स्पेन्सर का विचार था कि बालक किन्ही अन्य के प्रयासों द्वारा नहीं सीखता, अपितु वह स्वयं अपनी आत्म-क्रिया सीखता है और स्वयं के प्रयासों द्वारा अर्जित ज्ञान ही वास्तविक व चिरस्थाई होता है।

4. शिक्षा में शारीरिक व मानसिक विकास का संतुलन (Balance in Physical and mental development)- शिक्षण विधियां इस विचार को ध्यान में रखते हुए अपनाई जानी चाहिए कि शिक्षा को बालक के व्यक्तित्व के दो प्रमुख पक्षों (मानसिक व शारीरिक) का समान रूप से विकास करना है। किसी की भी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

5. नकारात्मक शिक्षा (Negative Education) - नकारात्मक शिक्षा से आशय है कि शिक्षा हमें सत्यता व पुण्य का पाठ नहीं पढ़ाये वरन् हमें असत्यता व पाप से दूर रहना सिखाए। अर्थात् नकारात्मक शिक्षा गुण आरोपित नहीं करती वरन् अवगुणों से बचाती है। यह वह मार्ग प्रशस्त करती है जो व्यक्ति को अवगुणों से परे रखता है।

6. शिक्षण विधि आगमनात्मक हो (Teaching Method should be Inductive) - इस संदर्भ में प्रकृतिवाद ने जिस विधि को जन्म दिया, उसे ह्यूरिस्टिक विधि (Heuristic Method) के नाम से जाना जाता है। बालक को प्रत्यक्ष रूप से सीखने के अवसर मिलने चाहिए, जिसमें छात्र को एक अन्वेषक या आविष्कारक की भूमिका अदा करनी होती है। इसी को आगमन विधि कहते हैं।

10.5 प्रकृतिवाद की प्रमुख विशेषताएं (Chief Characteristics of Naturalism)

1. प्रकृति ही वास्तविकता है (Nature is Ultimate Reality) - प्रकृतिवाद प्रकृति को अंतिम सत्ता मानता है और मानव प्रकृति पर अधिक बल देता है। यह इस बात पर विश्वास करता है कि वास्तविकता व प्रकृति (Reality and Nature) में कोई अन्तर नहीं है। अर्थात् जो वास्तविक है, वह प्रकृति है या जो प्रकृति है, वह वास्तविक है। हॉकिंग (Hocking) के शब्दों में- ''प्रकृतिवाद इस बात को अस्वीकार करता है कि प्रकृति से परे, प्रकृति के पीछे या प्रकृति के अलावा कोई चीज अपना अस्तित्व रखती है, चाहे वह सांसारिक परिधि में हो या आध्यात्मिक परिधि में।'' (Naturalism denies existence of anything nature, behind nature such as the supernatural of other worldy)

2. मन व शरीरर में कोई अंतर नहीं है (No distinction between mind and body) - प्रकृतिवादी विचारधारा मन व शरीरर में कोई अंतर नहीं करती। वह यह मानती है कि मानव पदार्थ है, चाहे उसका मन हो या शरीरर, दोनों ही इस पदार्थ का परिणाम हैं।

3. वैज्ञानिक ज्ञान पर बल (Emphasis on Scientific knowledge) - प्रकृतिवाद यह भी मानता है कि वैज्ञानिक ज्ञान ही उचित ज्ञान होता है और हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि हम इस वैज्ञानिक ज्ञान को जीवन से जोड़ सकें।

4. वैज्ञानिक विधि द्वारा ज्ञान प्राप्ति पर बल (Emphasis on acquiring knowledge through scientific method) - प्रकृतिवाद के अन्तर्गत आगमन (Inductive) विधि द्वारा ज्ञानार्जन की चर्चा की गई है, साथ ही वह इस बात की भी चर्चा करते हैं कि ज्ञान-प्राप्ति का सर्वोचित तरीका निरीक्षण विधि है।

5. ज्ञान-प्राप्ति हेतु इन्द्रियों की आवश्यकता (Need of sense for Acquiring Knowledge) - प्रकृतिवाद यह भी मानता है कि मानव इस जगत पर जो भी ज्ञान प्राप्त करता है, उसका माध्यम इन्द्रियां होती हैं। बिना इन्द्रिय सहयोग के मानव ज्ञानार्जन नहीं कर सकता।

6. प्रकृति ही वास्तविक सत्ता ;(Nature as a big Power) - प्रकृतिवादी विचार यह भी मानता है कि इस संसार में सर्वोच्च शक्ति प्रकृति के हाथों में ही निहित रहती है और प्रकृति के नियम अपरिवर्तनशील हैं।

7. मानव प्रकृति का ही अंग है (Man is a Segment of Nature)- प्रकृतिवादी समाज के अस्तित्व के प्रति कोई आस्था नहीं रखते। इस कारण मनुष्य को समाज का अंग नहीं मानते। उनका विचार है कि मनुष्यप्रकृति का ही अभिन्न अंग होता है।

8. मूल्य प्रकृति में ही निहित है (Value Lie in Nature) - मूल्य का निर्धारण आदर्शवादी के अनुसार समाज द्वारा होता है। जबकि प्रकृतिवादी यह मानते हैं कि मूल्य प्रकृति में ही विद्यमान रहते हैं और यदि मानव मूल्यों की प्राप्ति चाहता है तो उसे प्रकृति से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना होगा।

9. आत्मा और परमात्मा का कोई महत्व नहीं (No Importance of Soul and God) - प्रकृतिवाद किसी आध्यात्मिक शक्ति में या आत्मा में विश्वास नहीं रखते। वह मानते हैं कि मानव की रचना प्रकृति के द्वारा हुई है और मनुष्य के शरीर का नाश होते ही उसका चेतन तत्व भी समाप्त हो जाता है।

10. भौतिक सुख की प्राप्ति (To achieve Material Prosperity) - प्रकृतिवाद मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य भौतिक सम्पन्नता की प्राप्ति मानता है। इस कारण मानव परिस्थितियों को अपने अनुकूल ढालता है। वह मानव को इस संसार का श्रेष्ठतम पदार्थ मानता है जो बुद्धि, तर्क व चिन्तन के कारण अन्य पशुओं से सर्वोपरि है।

11. वैयक्तिक स्वतंत्रता पर बल (Emphasis on Scientific Knowledge) - प्रकृतिवाद यह भी मानता कि व्यक्ति दुःखी इस कारण है चूंकि वह प्रकृति से दूर होता जा रहा है। व्यक्ति को इतनी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए कि वह प्रकृति से समीपता स्थापित कर सके।

10.5.1शिक्षा में प्रकृतिवाद की देन (Contribution of naturalism in education)

1. बालक का प्रमुख स्थान प्रकृतिवाद की विशेषता है। आज हमें इस बात पर आश्चर्य नहीं होता किन्तु 19वीं शताब्दी के अन्त तक लोग बालक को प्रौढ़ का छोटा रूप मानते थे, उसका अलग व्यक्तित्व मानने को तैयार न थे। 'बाल केन्द्रित शिक्षा' प्रकृतिवाद की देन है।

2. बाल-मनोविज्ञान के अध्ययन की प्रेरणा भी इसी विचारधारा ने दी। बालक को पढ़ाने के लिए उसके मनोविज्ञान को जाने की आवश्यकता की पूर्ति हेतु मनोविज्ञान के क्षेत्र में खोज प्रारम्भ हुई। मनोविज्ञान ने बताया कि बालक विकास काल में विभिन्न स्थितियों से होकर गुजरता है। यही नही मनोविज्ञान की एक विशेष शाखा-मस्तिष्क विश्लेषण को तो विशेष प्रोत्साहन मिला। बालक को व्यर्थ ही दबाना नहीं चाहिए। लिंग-भेद की ओर इस मनोविज्ञान की विशेष देन है। इसके प्रति इसने एक स्वस्थ विचारधारा को जन्म दिया।

3. शिक्षा की विधि में प्रकृतिवाद ने शब्दों की अपेक्षा अनुभवों पर बल दिया। केवल शब्द शिक्षा के लिए आवश्यक गुण नहीं है, अनुभव भी आवश्यक हैं। इसलिए अब भूगोल तथा इतिहास के पाठ केवल कक्षा की चाहरदीवारी के अन्दर न पढाकर परिभ्रमण एवं शिक्षा-यात्राओं के माध्यम से पढाये जाते हैं।

4. शिक्षा में खेल की प्रमुखता इस विचारधारा की ही देन है। इससे पूर्व खेल व्यर्थ की चीज समझा जाता था। प्रकृतिवाद ने खेल को स्वाभाविक तथा आवश्यक सिद्ध किया।

5. 'प्रकृति की ओर लौटो' इस विचारधारा का नारा है। इसका कथन है 'सभ्यता की जटिलता से दूर प्रकृति की शान्तिमयी गोद की ओर चलो।' इस प्रवृत्ति ने प्रकृति-प्रेम में वृद्धि की।

6.केवल पुस्तकीय ज्ञान को हटाकर अनुभव तथा ज्ञान को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया।

अन्त में यह कह देना आवश्यक होगा कि इंग्लैण्ड में नील के स्कूल में तथा डोरा रसेल के स्कूल में इस प्रक्रियावादी विचारधारा पर आधारित, स्वतंत्रता तथा सरलता के वातावरण में, मूल प्रवृत्ति के आधार पर, स्वयंचालित शिक्षा दी जाती थी। इन स्कूलों में भेद न होने के कारण तथा स्वस्थ विचारधाराओं

के कारण चरित्र संबंधी शिकायत कभी नहीं चलती थी। यहां शिक्षा भी खेल के ऊपर आधारित थी। पुस्तकीय ज्ञान का महत्व कम है। अतः डोरा रसेल के विद्यालय में इस पर अधिक बल नहीं था। पर, यह कहना भ्रामक न होगा कि केवल प्रकृतिवाद ही बालक की रूचि पर बल देने वाली विचारधारा नहीं है। आदर्शवाद भी बालक के महत्व को कम न करेगा। कहना न होगा कि यदि प्रकृति को आदर्शवाद का संबल मिल जाये तो पाशविक एवं आध्यात्मिक दोनों अवस्थाओं से मनुष्य का उचित संबंध स्थापित हो जाएगा।

अपनी उन्नति जानिए (Check Your Progress)

प्र.1. ''मन व शरीर में कोई अन्तर नहीं है।'' ;(No distinction between mind and body) विचारधारा है-

(अ) आदर्शवाद (ब) प्रयोज्यवाद (स) अस्तित्ववाद (द) प्रकृतिवाद

प्र.2. ''वैज्ञानिक ज्ञान ही उचित ज्ञान होता है। हम इस वैज्ञानिक ज्ञान को जीवन से जोड़ सकें।'' यह विचारधारा है-

(अ) आदर्शवाद (ब) प्रकृतिवाद (स) प्रयोजनवाद (द) अस्तित्ववाद

प्र.3. ''इस संसार में सर्वोच्च शक्ति प्रकृति के हाथों में निहित है और प्रकृति के नियम अपरिवर्तनशील हैं''। यह विचारधारा है-

(अ) आदर्शवाद (ब) प्रकृतिवाद (स) अस्तित्ववाद (द) प्रयोजनवाद

प्र. 4. किसने शिक्षा की विधि में शब्दों की अपेक्षा अनुभवों पर बल दिया है ?

(अ) प्रकृतिवाद (ब) प्रयोजनवाद (स) आदर्शवाद (द) अस्तित्ववाद

प्र.5. ''सभ्यता की जटिलता से दूर प्रकृति की शान्तिमयी गोद की ओर चलो''। यह विचारधारा है-

(अ) अस्तित्ववाद (ब) प्रकृतिवाद (स) प्रयोजनवाद (द) आदर्शवाद

10.6 सारांश (Summary)

शिक्षा के क्षेत्र में प्रकृतिवाद का प्रभाव दो रूपों में दिखलाई पड़ता है- एक तो दर्शन के रूप में उसने शिक्षा के लक्ष्यों और उद्देश्यों को निश्चित किया है। दूसरे उसने मानव प्रकृति की व्याख्या करके शिक्षण विधियों और शिक्षा के साधनों की व्याख्या की है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रकृतिवाद न तो भौतिक जगत का प्रकृतिवाद है, न यांत्रिक प्रकृतिवाद और न जैवकीय प्रकृतिवाद। इन तीनों से भिन्न वह एक नमनीय व्याख्या है जो कि शिक्षा को बालक के संपूर्ण अनुभव पर आधारित करना चाहती है और किताबी ज्ञान के विरूद्ध अर्थात् प्रकृतिवाद के बनाए हुए शिक्षा के चित्र में बालक सबसे आगे होता है। शिक्षक, विद्यालय, पुस्तकें, पाठ्यक्रम आदि सब पृष्ठभूमि में होते हैं। सर जॉन एडम्स ने इस प्रवृत्ति को बाल केन्द्रित अभिवृत्ति (Paidocentric attitude) कहा है। प्रकृतिवादियों के अनुसार बालक पर पूर्ण आयोजित शिक्षा लादी नहीं जानी चाहिए। चाहे वह कितनी भी वैज्ञानिक क्यों न हो। शिक्षा में बालक को स्वतंत्र चुनाव का अवसर देना चाहिए। वह क्या पढ़ेगा, किस तरह व्यवहार करेगा, किस तरह खेलेगा-कूदेगा, कैसे बैठेगा आदि बातें उसकी इच्छा पर छोड़ देनी चाहिए। साथ ही शिक्षा का स्थान शासक का नहीं बल्कि मित्र और साथी का है। शिक्षक का कार्य उसे सामग्री जुटाना, अवसर उत्पन्न करना, आदर्श परिवेश का निर्माण करना है। जिससे बालकों का सर्वांगीण विकास हो सके। प्रकृतिवादी शिक्षा-प्रणालियों के विषय में खेल प्रणाली पर जोर देता है तथा पाठ्यक्रम बहुमुखी और व्यापक हो, इसमें समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक प्रवृत्ति के अतिरिक्त शिक्षा के लक्ष्यों और पाठ्यक्रम की ओर समाहारक प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। लगभग बहुमुखी पाठ्यक्रमों और पाठ्यक्रमोत्तर कार्यक्रमों का महत्व स्वीकार किया गया है।

10.7 कठिन शब्द (Difficult Words)

1. भौतिक जगत का प्रकृतिवाद- यह सिद्धान्त मानव-क्रियाओं, व्यक्तिगत अनुभवों, संवेगों, अनुभूतियों आदि की भौतिक विज्ञान से व्याख्या करना चाहता है। यह भौतिक विज्ञान के द्वारा समस्त जगत की व्याख्या करना चाहता है।

2. स्वचालित आत्म-क्रिया (Spontaneous Self-activity) - स्पेन्सर का विचार है कि बालक किन्हीं अन्य के प्रयासों द्वारा नहीं सीखता, अपितु वह स्वयं अपनी आत्म-क्रिया से सीखता है और स्वयं के प्रयासों द्वारा अर्जित ज्ञान ही वास्तविक व चिरस्थाई होता है।

3. प्रकृतिवाद की ओर लौटो- प्रकृतिवादी चाहते हैं कि सभ्यता की जटिलता से दूर प्रकृति की शान्तिमयी गोद की ओर चलो ताकि बालक का नैसर्गिक विकास हो सके।

4. यांत्रिक प्रकृतिवाद- इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त जगत एक यंत्र के समान कार्य कर रहा है। व्यक्ति एक सक्रिययंत्र से अधिक कुछ नहीं है। उसमें परिवेश के प्रभाव के कारण कुछ सहज क्रिया होती है। यंत्रवाद के प्रभाव से मनोविज्ञान में व्यवहारवादी सम्प्रदाय का जन्म हुआ।

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Question)

भाग-1

उत्तर-1 भौतिकवाद के लिए पुदगल मूल तत्व है, मनस् है मस्तिष्क $ उसकी क्रिया। पुदगल ही मनस का उद्गम है, न कि मनस पुदगल का प्रेरक। चेतना इस मस्तिष्क का उपफल है। भौतिकवादी संसार को एक यंत्र मानते हैं और उनके लिए जीवित प्राणी तो केवल अणु-परमाणु इत्यादि का जोड़ है।

उत्तर-2 प्रकृति से हमारा अभिप्राय समस्त विश्व तथा उसकी क्रिया और इस अर्थ में मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह प्राकृतिक है। शिक्षा में इस का अर्थ होगा विश्व की क्रिया का अध्ययन और उसे जीवन में उतार देना।

उत्तर-3 (ब) थॉमस और लैग

उत्तर-4 यांत्रिक प्रकृतिवाद (Mechanical Naturalism) समस्त जगत एक यंत्र के समान कार्य कर रहा है और वह यंत्र जड़तत्व का बना है, जिसमें स्वयं उसको चलाने की शक्ति है। इस प्रकार प्रकृतिवाद का यह रूप जड़वाद है। व्यक्ति एक सक्रिय यंत्र से अधिक कुछ नहीं है। उसमें परिवेश के प्रभाव के कारण कुछ सहज क्रियाएं होती हैं।

भाग-2

उत्तर-1 (i) प्रकृतिवाद के अनुसार समाज व्यक्ति के लाभ के लिए है। अतः समाज का स्थान व्यक्ति के बाद आता है।

(ii) प्रकृति के नियम अपरिवर्तनीय हैं। अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियम सब घटनाओं को भली प्रकार स्पष्ट करते हैं।

उत्तर-2 (A) रूसो

उत्तर-3 (i) शिक्षा द्वारा बालक को प्राकृत जीवन व्यतीत करने हेतु तैयार करना।

(ii) बालकों को इस प्रकार का ज्ञान व दक्षता प्रदान करना जिससे कि वह अपने पर्यावरण के साथ समायोजित हो सके।

उत्तर-4 प्रकृतिवाद की दो शिक्षण विधियां हैं:-

(i) प्रकृति के अनुरूप शिक्षा (Education According to Nature)

(ii) शिक्षा आनन्द प्रदायनी (Education is for Enjoyment)

उत्तर-5 प्रकृतिवाद में नियमानुसार शामिल हैं, जैसे-शरीर विज्ञान, रोजगार हेतु गणित, सामाजिक अध्ययन के सभी विषय, साहित्य, संगीत, ललितकला, मनोविज्ञान आदि।

भाग-3

उत्तर- 1 (D)

3 (D)

4 (A)

5 (B)

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008).*उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006).*शैक्षिक समाजशास्त्र*.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008).*शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*.नई दिल्ली:रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996).*भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा:रतन प्रकाशन मंदिर.

10.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ(Useful Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008).*उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006).*शैक्षिक समाजशास्त्र*.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008).*शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*.नई दिल्ली:रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996).*भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा:रतन प्रकाशन मंदिर.

10.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long answer type Question)

प्र.-1 प्रकृतिवाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों और पाठ्यक्रम के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

प्र-2 प्रकृतिवादी शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

प्र-3 प्रकृतिवाद का क्या अर्थ है? शिक्षा के सिद्धान्त को इसने किस प्रकार प्रभावित किया है ?

प्र-4 प्रकृतिवादी दर्शन की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं ? व्याख्या कीजिए।

प्र-5 प्रकृतिवादी शैक्षिक उद्देश्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

प्र-6 प्रकृतिवाद के विविध रूप कौन-कौन से हैं?

इकाई 11: आदर्शवाद (Idealism)

11.1 प्रस्तावना Introduction

11.2 उद्देश्य Objectives

भाग-एक

11.3 आदर्शवाद और शिक्षा Idealism and Education

11.3.1 आदर्शवाद का अर्थ Meaning of Idealism

11.3.2 आदर्शवाद की परिभाषाएं Definition of Idealism

11.3.3 जीवन दर्शन के रूप में आदर्शवाद Idealism as a philosophy of life

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

भाग-दो

11.4 शिक्षा के उद्देश्य Aims of Education

11.4.1 आदर्शवाद व शिक्षा के उद्देश्य Idealism and Aims of Education

11.4.2 आदर्शवाद और पाठ्यक्रम Idealism and Teacher

11.4.3 शिक्षण पद्धतियां Teaching method

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

भाग-तीन

11.5 आदर्शवाद व शिक्षक Idealism and Teacher

115.1 आदर्शवाद एवं बालक Idealism and Child

11.5.2 आदर्शवाद का मूल्यांकन Evolution of Idealism

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

11.6 सारांश Summary

11.7 कठिन शब्द difficult Words

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर Answer of Practice Question

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची References

11.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ Useful books

11.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न Long Answer Type Questions

11.1 प्रस्तावना(Introduction)

मानव सभ्यता के उदभव और विकास के समय से ही आदर्शवादी विचारधारा का किसी न किसी रूप में अस्तित्व रहा है। आधुनिक काल में जब मानव ने चिन्तन एवं मनन आरम्भ किया तब से आदर्शवादी विचारधारा निरन्तर पुष्पित एवं पल्लवित होती है। आदर्शवादी विचारधारा जीवन की निश्चितताओं से जुड़ी हुई है। इसका आशय है-जीवन के लिए निश्चित आदर्शो व मूल्यों का निर्धारण कर मनुष्य को उनके अनुकरण हेतु निर्देशित करना। यह विचारधारा भौतिक वस्तुओं की अपेक्षा विचारों पर अधिक बल देती है। आदर्शवादी दर्शन का प्रतिपादन सुकरात, प्लेटो, डेकॉर्टो, स्पनोसा, वर्कलकान्ट, फिटशे, रोलिग, हीगल, ग्रीन जेन्टाइल आदि अनेक पाश्चात्य तथा वेदों व उपनिषदों के प्रणेता महर्षियों से लेकर अरविन्द घोष तक अनेक पूर्वी दार्शनिकों ने किया है।

11.2 उद्देश्य (Objectives)

i आदर्शवाद का ज्ञान प्राप्त करा सकेंगे।

ii आदर्शवाद का अर्थ, परिभाषाएं व जीवन दर्शन के रूप में आदर्शवाद को समझ सकेंगे।

iii आदर्शवाद व शिक्षा के उद्देश्यों को जान सकेंगे।

iv आदर्शवाद में पाठ्यक्रम व शिक्षण पद्धति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

v आदर्शवाद में शिक्षक व बालक के गुणों को समझ सकेंगे।

भाग-एक

11.3 आदर्शवाद और शिक्षा (Idealism and Education)

आदर्शवाद दार्शनिक जगत में प्राचीनतम विचारधाराओं में से है। एडम्स के शब्दों में ''आदर्शवाद एक अथवा दूसरे रूप में दर्शन के समस्त इतिहास में व्याप्त है। आदर्शवाद का उदगम स्वयं मानव प्रकृति में है। आध्यात्म शास्त्रीय दृष्टि से आध्यात्मवाद है। अर्थात् इसके अनुसार विश्व में परम सद्वस्तु की प्रकृति आध्यात्मिक है। समस्त विश्व आत्मा या मनस से अवस्थित है। प्रमाण शास्त्र की दृष्टि से आदर्शवाद प्रत्यवाद है। अर्थात् इसके अनुसार विचार ही सत्य है। यह प्रत्यवाद प्राचीन यूनानी दार्शनिक प्लेटो के विचारों में मिलता है। जिसके अनुसार विचारों का जगत वस्तुजगत से कहीं अधिक यथार्थ है। मूल्यात्मक दृष्टि से इस दर्शन को आदर्शवाद कहा जाता है।

आदर्शवाद के दर्शन को संक्षेप में उपस्थित करते हुए जी.टी. डब्ल्यू पैट्रिक ने लिखा है, ''आदर्शवादी यह मानने से इन्कार करते हैं कि जगत् एक विशाल यंत्र है। वे हमारे जगत् की व्याख्या में जड़तत्व, यंत्रवाद और ऊर्जा के संरक्षण को सर्वोच्च महत्व से इन्कार करते हैं। वे अनुभव करते हैं कि किसी न किसी प्रकार से कुछ विज्ञान जैसे मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र आदि का आधारभूत और अंतरंग चीजों से संबंध है कि वे प्रकृति के रहस्यों को समझने के लिए वैसी ही कुंजी है जैसे कि भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र है। वे यह विश्वास करते हैं कि जगत का एक अर्थ है एक प्रयोजन है। शायद एक लक्ष्य है। अर्थात् जगत के हृदय और मानव की आत्मा में एक प्रकार का आन्तरिक समन्वय है, जिसमें कि मानवबुद्धि प्रकृति के बाहरी आवरण को छेद सकती है। आदर्शवाद की इस व्याख्या में जड़वाद के विरूद्ध आदर्शवाद के लक्षण बतलाए गये हैं।

कोई भी दार्शनिक सिद्धान्त दो प्रकार से समझा जा सकता है- एक तो उन सिद्धान्तों को समझकर, जिनका कि वह प्रतिपादन करता है और दूसरे उन बातों को जानकर जिनका कि वह निराकरण करता है। क्योंकि प्रत्येक दर्शन कुछ सिद्धान्तों के समर्थन और कुछ बातों के निराकरण पर आधारित होता है। इस दृष्टि से आदर्शवाद की स्थिति की व्याख्या करते हुए डब्लू.ई. हाकिग ने लिखा है कि आदर्शवाद के अनुसार प्रकृति आत्मनिर्भर नहीं है। वह स्वतंत्र दिखलाई पड़ती है। किन्तु वास्तव में वह मनस् पर आधारित है। दूसरी ओर मनस् आत्मा या प्रत्यय ही वास्तविक सद्वस्तु है।

11.3.1 आदर्शवाद का अर्थ Meaning of Idealism

आदर्शवाद, जिसे हम अंग्रेजी में (Idealism) कहते हैं, दो शब्दों से मिलकर बना है- Ideal+ism लेकिन कुछ विचारक यह मानते हैं कि इसमें दो शब्द हैं - Ideal+ism इसमें स् सुविधा के लिए जोड़ दिया गया है। वास्तव में यदि देखा जाये तो इसे Idea या विचार से ही उत्पन्न होना माना जाना चाहिए। चूंकि इसके प्रवर्तक दार्शनिक विचार की चिरन्तन सत्ता में विश्वास करते हैं, इस कारण इसे विचारधारा का प्रत्ययवाद की संज्ञा दी जाती है। परन्तु प्रचलन में हम आदर्शवाद का प्रयोग ही करते हैं। यह दर्शन वस्तु की अपेक्षा विचारों, भावों तथा आदर्शो को महत्व देते हुए यह स्वीकार करता है कि जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति तथा आत्मा का विकास है। इसी कारण यह आध्यात्मिक जगत को उत्कृष्ट मानता है और उसे ही सत्य व यथार्थ के रूप में स्वीकार करता है।

11.3.2 आदर्शवाद की परिभाषाएं Definition of Idealism

रास (Ross) . ''आदर्शवादियों के अनेक रूप हैं, किन्तु सबका सार यह है कि मन या आत्मा ही इस जगत का पदार्थ है और मानसिक स्वरूप सत्य है।'' (Idealism Philosophy takes many and varied from, but the postulate underlying all is that mind or sprit is essential word stuff that the true reality is of a Mental character)

ब्रूवेकर (Brubacher)''आदर्शवादियों के अनुसार- इस जगत को समझने के लिए मन केन्द्रीय बिन्दु है। इस जगत को समझने हेतु मन की क्रियाशीलता से बढ़कर उनके लिए अन्य कोई वास्तविकता नहीं है।'' (The Idealism point out that It is mind that is central in understanding the world . To them nothing gives greater sense of reality then the activity of mind lugged in typing to comprehended its words.

हैण्डरसन (Handerson)''आदर्शवाद मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है, क्योंकि आदर्शवादियों के लिए आध्यात्मिक मूल्य जीवन के तथा मनुष्य के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू हैं। एक तत्वज्ञानी आदर्शवादी का विश्वास है कि मनुष्य का सीमित मन असीमित मन से पैदा होता है। व्यक्ति और जगत दोनों बुद्धि की अभिव्यक्ति हैं और भौतिक जगत की व्याख्या मन से की जा सकती है।''

डी.एम.दत्ता (D.M.datta)''आदर्शवाद वह सिद्धान्त है जो अन्तिम सत्ता आध्यात्मिकता को मानता है।''

राजन के अनुसार . ''आदर्शवादियों का विश्वास है कि ब्रह्माण्ड की अपनी बुद्धि एवं इच्छा है और सब भौतिक वस्तुओं कों उनके पीछे विद्यमान मन द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।''

11.3.3 जीवन दर्शन के रूप में आदर्शवाद (Idealism of Philosophy of life)

आदर्शवाद जीवन की एक प्राचीन विचारधारा है। आज भी इस बात का पर्याप्त सम्मान है। जीवन दर्शन के रूप में इसने विश्व के उच्च कोटि के दार्शनिकों को आकृष्ट किया है। सुकरात, प्लेटो, कान्ट आदि दार्शनिक आदर्शवादी थे। संक्षेप में आदर्शवाद के मूल सिद्धान्त निम्न हैं:-

1. आदर्शवाद के अनुसार पदार्थ अन्तिम सत्य नहीं है। पदार्थ का प्रत्यय वास्तविक है, पदार्थ का भौतिक रूप असत्य है।

2. भौतिक सृष्टि सत्व का आभासमात्र है। इस सृष्टि के पीछे कोई मानसिक सत्य है जो सृष्टि के प्रकाशन का आधार है। सृष्टि वस्तुतः तार्किक एवं मानसिक ही है। इसका बाह्य रूप तो कल्पनाजन्य है।

3. जो अन्तिम सत्य है वही वास्तविक शिव है। अन्य भौतिक पदार्थो में भद्र अथवा शिव को देखना भ्रम है। जो सत्य है और शिव है, वही वास्तव में सुन्दर भी है। संसार के भौतिक पदार्थो में सुन्दरता का आभास मात्र है। अतः उनमें आसक्ति व्यर्थ है। 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की यह व्याख्या आदर्शवाद की आत्मा है।

4. भौतिक जगत नश्वर है, परिवर्तनशील है। सत्य को स्थायी एवं अपरिवर्तनशील होना चाहिए। अतः सत्य विचारात्मक एवं मानसिक है क्योंकि विचार एवं प्रत्यय में स्थायित्व होता है।

5. इस आधार पर शरीर नश्वर है, अतः असत्य है, आत्मा अनश्वर सत्य है।

6. मानव जीवन का लक्ष्य इसी अनश्वर, अजर, अमर एवं अपरिवर्तनशील आत्मा की प्राप्ति है।

7. आदर्शवाद विकास में विश्वास करता है, किन्तु उसका विकासवाद प्रकृतिवादी विकासवाद से भिन्न है। आदर्शवाद के अनुसार विकास का अन्तिम लक्ष्य आत्मा की प्राप्ति ही है न कि निचले स्तर से ऊंचे स्तर के प्राणी में विकास करना।

8.मन और पदार्थ भिन्न हैं। मन पर नैतिकता एवं आदर्शो का प्रभाव पड़ता है, पदार्थ पर नहीं। मन चेतन है, पदार्थ जड़। जड़ से चेतनता का उदय नहीं हो सकता।

9. इन्द्रियों की अपेक्षा मस्तिष्क अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि विचारात्मक सत्य का ज्ञान इन्द्रियों से संभव नहीं।

10. अंतिम सत्य का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है, शेष तो अज्ञान अथवा ज्ञानाभास है। यह ज्ञान तर्कजन्य है, चिन्तन एवं मनन तथा अंतदृष्टि का परिणाम है। यह इन्द्रियों का विषय नहीं है।

11. इस प्रकार विज्ञान द्वारा प्राप्त ज्ञान अपूर्ण है। वास्तविक ज्ञान तो व्यक्ति के अपने प्रयासों का परिणाम है।

12. आदर्शवाद धार्मिकता एवं नैतिकता का समर्थन करता है।

13. प्रकृति अपने आप में अपूर्ण है। वह स्वयं किसी सत्य पर आश्रित है। अतः प्रकृति का ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान नहीं। भारतीय सांख्य-दर्शन प्रकृति एवं पुरूष में मौलिक भेद करता है।

14. आदर्शवाद अनेकता में एकता का दर्शन करता है। सत्य मानसिक है। सृष्टि के अनेक रूपों में उस एक चरम सत्य को देखना ही अनेकता में एकता का दर्शन करना है।

इस प्रकार हम देख रहे हैं कि आदर्शवाद सृष्टि के आध्यात्मिक पहलू पर अधिक बल देता है। प्राकृतिक वातावरण की अपेक्षा आध्यात्मिक वातावरण अधिक महत्वपूर्ण है। आदर्शवाद व्यक्ति एवं सृष्टि पर इसी दृष्टिकोण को महत्वपूर्ण बताता है।

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

प्र.1 निम्न परिभाषा किस विद्वान की है ?

''आदर्शवाद एक अथवा दूसरे रूप में दर्शन के समस्त इतिहास में व्याप्त है।''

(अ) एडम्स (ब) जी.टी. डब्ल्यू पैट्रिक (स) डब्ल्यू.ई. हाकिग (द) हटसन

प्र.2 आदर्शवाद का दूसरा नाम है-

(अ) आत्मवाद (ब) विचारधारा का प्रत्यवाद (स) प्रकृतिवाद(द) प्रमाण-शास्त्र

प्र.3शरीर नश्वर है अतः असत्य है, आत्मा अनश्वर अतः असत्य है। यह विचारधारा है-

(अ) प्रकृतिवाद (ब) प्रयोजनवाद (स) अस्तित्ववाद (द) आदर्शवाद

प्र.4 प्रकृति अपने आप में अपूर्ण है। वह स्वयं किसी सत्य पर आश्रित है। अतः प्रकृति का ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान नहीं है। यह विचारधारा है-

(अ) प्रकृतिवादी (ब) आदर्शवादी (स) प्रयोजनवादी (द) अस्तित्ववादी

प्र.5 निम्न में कौन विचारक आदर्शवादी थे ?

(अ) सुकरात (ब) लॉक (स) गैलीलियो (द) हांकिग

भाग-दो

11.4 शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Education)

आदर्शवादी दार्शनिकों के मतानुसार मानव के जीवन का लक्ष्य, मोक्ष की प्राप्ति, आध्यात्मिक विकास और साक्षात्मक करना या उसे जानना है। इस कार्य के लिए मानव को चार चरणों पर सफलता प्राप्त करनी होती है। प्रथम चरण पर उसे अपने प्राकृतिक 'स्व' का विकास करना होता है। इसके अंतर्गत मनुष्य का शारीरिक विकास आता है। दूसरे चरण पर उसे अपने सामाजिक 'स्व' का विकास करना होता है। इसके अंतर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, चारित्रिक एवं नागरिकता का विकास आता है। तीसरे चरण पर उसे अपने मानसिक 'स्व' का विकास करना होता है। इसके अंतर्गत मानसिक, बौद्धिक एवं विवेक शक्ति का विकास करना होता है। और चौथे तथा अंतिम चरण पर उसे अपने

आध्यात्मिक 'स्व' का विकास करना होता है। इसके अंतर्गत आध्यात्मिक चेतना का विकास आता है। आदर्शवादी इन्हीं सबको शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करते हैं।

11.4.1 आदर्शवाद व शिक्षा के उद्देश्य (Idealism and Objectives of Education)

I. आत्मनुभूति का विकास (Development of self –realization) - आदर्शवादी विचारधारा यह मानती है कि प्रकृति से परे यदि कोई चेतन सत्ता के अनुरूप है तो वह है 'मनुष्य'। इस कारण विश्व व्याप्त चेतन सत्ता की अनुभूति मनुष्य तब तक नहीं कर सकता जब तक उसके अंदर व्याप्त चैतन्यता का विकास न हो। इस कारण शिक्षा का सर्वोच्च कार्य यह है कि वह मनुष्य को इतना सक्षम बनाये कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचाने व उसकी अनुभूति कर सके। इस आत्मानुभूति के प्रमुख रूप से चार सोपान होते हैं:-

4. आध्यात्मिक 'स्व' (spiritual self)

3. बौद्धिक 'स्व' Intellectual self

2. सामाजिक 'स्व' (Social self)

1. शारीरिक व जैविकीय (Physical Self)

शारीरिक 'स्व' आत्मानुभूति का निम्नतम सोपान है, जिसे प्रकृतिवादी आत्माभिव्यक्ति (Self expression) संज्ञा देते हैं। सामाजिक 'स्व' को अर्थ क्रियावादी महत्व देता है, इसमें व्यक्ति सामाजिक हित की परिकल्पना करता है व सामाजिक कल्याण हेतु व्यक्तिगत स्वार्थो का परित्याग कर देता है। बौद्धिक अनुभूति के स्तर पर व्यक्ति विवेक द्वारा 'स्व' की अनुभूति करता है व सामाजिक नैतिकता से ऊपर उठकर सद्-असद् में भेद कर सकता है और उसका आचरण चिन्तन तथा विश्वास विवेकपूर्ण हो जाता है। आध्यात्मिक 'स्व' स्वानुभूति का सर्वोच्च स्तर है जहां व्यक्ति गुणों को अपने व्यक्तित्व में अंगीकृत सहज प्रक्रिया द्वारा ही कर लेता है व अपने अंदर विश्वात्मा का तादाम्य करने लगता है। इस विश्वात्मा को हम तीन रूपों में अभिव्यक्त करते हैं:- सत्य, शिव व सुन्दर। आदर्शवादी जब आत्मानुभूति

के लिए शिक्षा देने की बात करते हैं तो उनका एक ही लक्ष्य होता है, ''अपने आपको पहचानो'' (To Know Thyself)

II. आध्यात्मिक मूल्यों का विकास (Development of Spiritual Values) - आदर्शवादी विचारधारा भौतिक जगत की अपेक्षाकृत आध्यात्मिक जगत को महत्वपूर्ण मानती है। अतः शिक्षा के उद्देश्यों में भी बालक के आध्यात्मिक विकास को महत्व देते हैं। यह मनुष्य को एक नैतिक प्राणी के रूप में अवलोकित करते हैं व शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण को मानते हैं। वह 'सत्यं शिवं सुन्दरं' के मूल्यों का विकास करते हुए इस बात की भी चर्चा करते हैं कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक में आध्यात्मिक दृष्टि से विकास करना है।

III. बालक के व्यक्तित्व का उन्नयन (To Exalt Child's Personality)- बोगोस्लोवस्की के अनुसार-'' हमारा उद्देश्य छात्रों को इस योग्य बनाना है कि वे सम्पन्न तथा सारयुक्त जीवन बीता सकें , सर्वांगीण तथा रंगीन व्यक्तित्व का निर्माण कर सकें, सुखी रहने के उल्लास का उपभोग कर सकें। यदि तकलीफ आये तो गरिमा एवं लाभ के साथ उनका सामना कर सकें तथा इस उच्च जीवन को जीने में दूसरे लोगों की सहायता कर सकें''।

व्यक्तित्व के उन्नयन की चर्चा करते हुए प्लेटो व रॉस भी यह मानते हैं कि शिक्षा के द्वारा मानव व्यक्तित्व को पूर्णता प्राप्त की जानी चाहिए और साथ ही उसके व्यक्तित्व का उन्नयन होना चाहिए।

IV. अनेकता में एकता के दर्शन (To Establish Unity in Diversity) - आदर्शवाद इस विचारधारा का समर्थन करते हुए इस बात पर बल देता है कि शिक्षा का उद्देश्य बालक को इस दृष्टि से समर्थ बनाना होना चाहिए कि वह संसार में विद्यमान भिन्न-भिन्न बातों को एकता के सूत्र में बांध सके अर्थात् बालक के अंदर यह समझ उत्पन्न करनी चाहिए कि वह इस संसार के संचालन करने वाली एक परम सत्ता है जो ईश्वर के नाम से जानी जाती है और यह ईश्वर की सत्ता जगत के सभी प्राणियों का संचालन करती है। इस ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति कराना ही शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। इसकी अनुभूति होने पर ही व्यक्ति इस संसार के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकता है व व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान कर सकता है।

V. सभ्यता एवं संस्कृति का विकास Development of Culture and Civilization -

आदर्शवाद यह मानता है कि व्यक्ति जिस समाज का सदस्य है, उस समाज की संस्कृति से उसका परिचय होना परम आवश्यक है। साथ ही बालक यदि समाज को जीवित रखना चाहता है तो उसे समाज की धरोहर के रूप में जो सभ्यता व संस्कृति प्राप्त होती है, उसकी भी रक्षा करनी चाहिए। सभ्यता व संस्कृति तो वह आधार प्रस्तुत करती है जिसके द्वारा समाज का विकास संभव होता है। आदर्शवाद व्यक्ति की अपेक्षा समाज को महत्व देता है। इसी कारण वह शिक्षा का उद्देश्य सभ्यता व संस्कृति का विकास करना मानते हैं। रस्क का विचार है कि ''सांस्कृतिक वातावरण मानव का स्वरचित वातावरण है अथवा यह मनुष्य की सृजनात्मक क्रिया का परिणाम है जिसकी रक्षा व विकास करना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।'' (Culture Environment is an environment of man's creative activity. The aim of idealistic education is the preservation as well as environment of Culture. (Rusk) |

VI. वस्तु की अपेक्षा विचारों का महत्व (Idea are Important than Objective) - आदर्शवाद यह मानता है कि इस संसार में पदार्थ नाशवान है व विचार अमर। विचार सत्य, वास्तविक व अपरिवर्तनशील है। विचार ही मनुष्य को ज्ञान प्रदान करने का माध्यम है। यह संसार मनुष्य के विचारों में ही निहित होता है। वह यह मानते हैं कि यह जगत यंत्रवत् नहीं है। चूंकि इस जगत में विद्यमान वस्तुओं का जन्म मानसिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप ही होता है। इनका विचार है कि ''यह विश्व विचार के समान है, यंत्रवत् नही। (Universe is like a thought than a machine)

vii. जड़ प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य का महत्व (Man is Important then Nature) -

आदर्शवादी मनुष्य का स्थान ईश्वर से थोड़ा ही नीचा मानते हैं। (Man is little lower than angels) इनका विचार है कि मनुष्य इतना सक्षम होता है कि वह आध्यात्मिक जगत का अनुभव कर सके व ईश्वर से अपना तादात्म्य स्थापित कर सके या उसकी अनुभूति कर सके। इस कारण वह जड़ प्रकृति से बहुत महत्वपूर्ण है। वह यह भी मानते हैं कि मनुष्य बुद्धिपूर्ण व विवेकपूर्ण प्राणी है और बुद्धि ही मनुष्य के विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलापों का आधार बनती है, जिससे मानव अपने आपको पशुवत् गुणों से ऊंचा उठा लेता है।

viii. समाज हित का उद्देश्य (Aims of the Welfare of the Society) - आदर्शवाद जब शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा करता है तो व्यक्तित्व के विकास पर बल देता है और व्यक्तित्व विकास में

सामाजिक हित अन्तर्निहित होता है। जब आदर्शवाद आत्मानुभूति में व्यष्टि या स्वार्थपरता निहित न होकर समष्टि या परमार्थ भाव निहित होता है। प्रसिद्ध आदर्शवादी दार्शनिक हॉकिंग (Hocking) जब शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा करता है तो वह शिक्षा के दो उद्देश्य बताता है-

1. सम्प्रेषण (Communication)

2. विकास के लिए प्रावधान (Development of the Society)

सम्प्रेषण में वह यह मानता है कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है कि वह समाज की संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानान्तरित करें, सिर्फ संस्कृति का सम्प्रेषण मात्र करना ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं है। चूँकि सम्प्रेषण कर देने से संस्कृति अवरूद्ध हो जायेगी। अतः शिक्षा द्वारा प्रत्येक पीढ़ी को इस बात के लिए तैयार किया जाना चाहिए कि वह उस संस्कृति में विकास कर सके। इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा उचित सामाजिक वातावरण तैयार करे जो समाज के विकास में सहयोग दे। हॉर्न (Horn) इन दोनों पक्षों (व्यक्तिगत व सामाजिक) के मध्य संश्लेषण करते हुए कहता है, ''शिक्षा द्वारा बालक की संस्कृति का ज्ञान व उसमें विकास करना आना चाहिए, साथ ही उसमें सामाजिक कुशलता व नागरिकता का विकास भी होना चाहिए।''

आदर्शवादी विचारधारा ने मुख्यतया शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा की है, परन्तु इन्होंने शिक्षा के अन्य पक्षों पर भी थोड़ा प्रकाश डाला है, उनकी उपेक्षा नहीं की है। अब हम इस बात की चर्चा करेंगे कि आदर्शवाद ने पाठ्यक्रम, पाठन विधि, शिक्षक, अनुशासन आदि के संबंध में क्या विचार दिये हैं।

11.4.2 आदर्शवाद और पाठ्यक्रम (Idealism and Curriculum)

अब प्रश्न उठता है कि उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रम किस प्रकार का होना चाहिए? छात्र जिस प्रकार के वातावरण में जन्म लेता है उसी प्रकार के वातावरण में रहने का आदी हो जाता है। यह निश्चित है कि हम पाठ्यक्रम की योजना बनाते समय इस वातावरण की उपेक्षा नहीं कर सकते। संभव है कि हम पाठ्यक्रम में ऐसी सूचनाओं एवं क्रियाओं को भी स्थान दें जिन्हें हम पूर्णतः सत्य नहीं मानते। आदर्शवाद भौतिक जगत को अंतिम सत्य नहीं मानता किन्तु सत्य का आभास तो मानता ही है। सत्य को इसी भौतिक जगत में रहकर एवं भौतिक वातावरण के सहयोग से ही आदर्शवाद

चरम सत्य को प्राप्त करने का परामर्श देता है। मनुष्य का आध्यात्मिक वातावरण अधिक महत्वपूर्ण होता है किन्तु प्राकृतिक वातावरण की उपेक्षा नहीं की जा सकती। व्यक्ति शरीर और मन का संयोग है जिसमें मन अधिक महत्वपूर्ण है। किन्तु यदि शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति न की गयी तो मानसिक क्रिया भी दुःसाध्य हो जायेगी। व्यक्ति आत्मानुभूति की ओर तभी आगे बढ़ सकता है जबकि उसने शारीरिक आवश्यकताओं को वश में कर लिया हो। अतः भौतिक जगत की जानकारी भी आवश्यक है। छात्र को प्राकृतिक वातावरण का ज्ञान होना चाहिए। इसके साथ ही आध्यात्मिक वातावरण पर विशेष दृष्टि होनी चाहिए। आध्यात्मिक वातावरण में व्यक्ति के बौद्धिक, सौन्दर्यानुभूति संबंधी, नैतिक एवं धार्मिक सभी क्रिया-कलाप आते हैं। उसका ज्ञान, कला, नीति तथा धर्म इसी आध्यात्मिक वातावरण के अंतर्गत हैं। समाज की प्राकृतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार की आवश्यकताएं हैं। प्राकृतिक वातावरण से मानव समाज प्रभावित होता रहता है। उसने कला, धर्म एवं नीति आदि का विकास करके आध्यात्मिक वातावरण का सृजन किया है। समाज अपने ज्ञान को स्थायी बनाना चाहता है कि उसके भावी सदस्य प्राकृतिक विषयों एवं आध्यात्मिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करें। वह यह नहीं चाहता कि समाज में एक प्रकार के ही व्यक्ति हों। अतः समाज एवं व्यक्ति दोनों की दृष्टि से ही पाठ्यक्रम में प्राकृतिक एवं आध्यात्मिक वातावरण के ज्ञान का समावेश होना चाहिए। व्यक्ति आत्मानुभूति भी तभी कर सकता है जब दोनों प्रकार की आवश्यकता की पूर्ति में सचेष्ट हो।

इस दृष्टि से आदर्शवाद शारीरिक प्रशिक्षण की उपेक्षा नहीं कर सकता। शारीरिक शिक्षा भी उसके पाठ्यक्रम में होगी। प्राकृतिक वातावरण की जानकारी प्राकृतिक विज्ञानों से होती है, अतः भौतिकी, रसायनिकी, भूमिति, भूगोल, खगोल, भूगर्भ विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, जीव-विज्ञान आदि विषयों को आदर्शवाद तिलांजलि नहीं देता। आध्यात्मिक विकास के लिए कला, साहित्य, नीतिशास्त्र, दर्शन, धर्म, मनोविज्ञान, संगीत आदि विषय अधिक महत्वपूर्ण हैं। इन विषयों के अध्ययन से मानव की आत्मा का विकास होता है। यदि इन विषयों का अध्ययन न किया जाये तो व्यक्ति प्राकृतिक वातावरण तक ही सीमित रह जायेगा।

11.4.3 शिक्षण पद्धतियां (Teaching Method)

I. स्वाध्याय विधि - आदर्शवादी दार्शनिक प्राचीन साहित्य का आदर करते हैं। वे मानते हैं कि हमारे प्राचीन साहित्य में हमारे पूर्वजों द्वारा खोजा हुआ ज्ञान भरा पड़ा है, हमें उससे लाभ उठाना चाहिए।

प्राचीन साहित्य के अध्ययन के लिए वे स्वाध्याय विधि के पक्षधर हैं। पर इस विधि का प्रयोग शिक्षा के उच्च स्तर पर ही किया जा सकता है।

II. आगमन एवं निगमन विधि - प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू इन विधियों द्वारा शिक्षा दिये जाने पर बल देते हैं। आगमन विधि में सामान्य से विशिष्ट की ओर चला जाता है और निगमन विधि में विशिष्ट से सामान्य की ओर चला जाता है। पहले वे उदाहरण प्रस्तुत कर सामान्यीकरण करते थे और फिर इस प्रकार प्राप्त सिद्धान्त का प्रयोग करते थे।

iii. प्रश्नोत्तर एवं संवाद विधि - प्रश्नोत्तर एवं संवाद पद्धति के जनक प्रख्यात दार्शनिक सुकरात थे। संदर्भ विषयों की व्याख्या करके और तदुपरान्त पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देकर सुकरात तत्कालीन समय में विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान किया करते थे। वे किसी स्थान पर युवकों को एकत्रित कर उनके सामने प्रश्न प्रस्तुत करते थे, युवक उन प्रश्नों पर विचार करते थे, उत्तर देते थे, तब वे उन प्रश्नों के संदर्भ में अपना मत स्पष्ट करते थे। प्लेटो ने प्रश्नोत्तर विधि के आधार पर संवाद विधि का विकास किया। प्लेटो ने अपनी अधिकतर रचनाएं भी संवादों के रूप में लिखी हैं। प्लेटो के संवाद विश्वविख्यात हैं।

इसके अतिरिक्त आधुनिक आदर्शवादी दार्शनिकों ने तर्क विधि, खेल विधि, अनुदेशन विधि एवं आवृत्ति विधि का विकास किया है।

iv. अनुकरण विधि - आदर्शवादी दार्शनिकों के अनुसार बालक अनुकरण द्वारा भी सीखता है। अतः शिक्षकों, बालकों के सामने अपने उच्च आचरण प्रस्तुत करने चाहिए। शिक्षकों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे बच्चों के सम्मुख लेख, चित्रकला व संगीत आदि के उत्कृष्ट नमूने प्रस्तुत करें, जिनका अनुकरण कर वे इनको सीखें। वे शिक्षकों से यह भी अपेक्षा रखते हैं कि वे छात्रों में अच्छे से अच्छा कर दिखाने की प्रेरणा व स्पर्धा उत्पन्न करें। उस स्थिति में अनुकरण विधि द्वारा शिक्षण अति लाभकारी होता है। बच्चों के मूल्यों के विकास और उनके चरित्र निर्माण के लिए वे बच्चों के सामने धर्मग्रन्थों और साहित्य के धीरोदात्त नायकों के चरित्र प्रस्तुत करने पर बल देते हैं। आदर्शवादियों का विश्वास है कि मनुष्य की प्रकृति अच्छे बुरे में भेद करने की होती है, वे इन धीरोदात्त नायकों के गुणों का अनुकरण कर अच्छे मनुष्य बन सकेंगे।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

प्र.1 आदर्शवादियों के अनुसार मानव को मोक्ष प्राप्त करने के लिए कितने चरणों (सोपान) पर सफलता प्राप्त करनी होती है?

(अ) पांच चरण (ब) चार चरण (स) तीन चरण (द) दो चरण

प्र.2 ''अपने आपको पहचानो'' (To Know Thyself) यह विचारधारा है-

(अ) प्रकृतिवाद (ब) अस्तित्ववाद (स) आदर्शवाद (द) प्रयोजनवाद

प्र.3 ''संसार में पदार्थ नाशवान हैं, विचार अमर, विचार सत्य, वास्तविक व अपरिवर्तनशील हैं'' यह विचारधारा है-

(अ) आदर्शवाद (ब) प्रकृतिवाद (स) प्रयोजनवाद (द) अस्तित्ववाद

प्र.4 ''सृष्टि की आत्मा चरम सत्य है, वही शिव है, वही सुन्दर है'', यह कथन है-

(अ) प्रकृतिवादी (ब) प्रयोजनवादी (स) अस्तित्ववादी (द) आदर्शवादी

प्र.5 तर्क विधि, खेल विधि, अनुदेशन विधि एवं आवृत्ति विधि का विकास किया है-

(अ) प्रकृतिवादी (ब) प्रयोजनवादी (स) आदर्शवादी (द) अस्तित्ववादी

भाग-तीन

11.5 आदर्शवाद व शिक्षक (Idealism and Teacher)

जेण्टील (Gentile) का कथन है कि ''अध्यापक सही चरित्र का आध्यात्मिक प्रतीक है'' (Teacher is Spiritual Symbol of right Conduct) । आदर्शवादी विचारक शिक्षक को उस अनुपम स्थिति में रखते हैं जिसमें शिक्षण प्रक्रिया का कोई अन्य अंश नहीं रखा जा सकता। आदर्शवादी दार्शनिक शिक्षक में जिन गुणों की परिकल्पना करते हैं, उनकी चर्चा बटलर ने इस प्रकार की है-

1. शिक्षक बालक के लिए सत्ता का साकार रूप होता है।

2. अध्यापक को छात्रों की व्यक्तिगत, सामाजिक व आर्थिक विशेषताओं का ज्ञाता होना चाहिए। 3. शिक्षक को अध्यापन कला का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए व उसमें व्यावसायिक कुशलता होनी चाहिए।

4. अध्यापक का व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिए जिससे वह छात्रों को अपनी ओर आकर्षित कर सके।

5. अध्यापक एक दार्शनिक, मित्र व पथ-प्रदर्शक के रूप में होना चाहिए।

6. अध्यापक का व्यक्तित्व अच्छे गुणों से परिपूर्ण होना चाहिए जिससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में वह छात्रों को सद्गुणों के ढांचे में ढाल सके।

7. छात्रों के व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करना अध्यापक के जीवन का परम लक्ष्य होना चाहिए।

8. शिक्षक को अपने विषय का पूर्ण एवं सही ज्ञान होना चाहिए।

9. अध्यापक में स्व-अध्ययन का गुण होना चाहिए जिससे वह निरन्तर नवीन ज्ञान की ओर उन्मुख हो सके।

10. अध्यापक को प्रजातंत्र की सुरक्षा रखने का प्रयास करना चाहिए।

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री फॉबेल ने कहा है कि बालक एक पौधे के समान है और अध्यापक एक माली के सदृश, जो पौधे को आवश्यकतानुसार सींचकर, खाद आदि डालकर तथा काट-छांटकर सुव्यवस्थित रूप में पनपाता है, जिससे वह एक सुन्दर और मनमोहक वृक्ष बन सके। शिक्षक के महत्व के संबंध में रॉस ने भी कहा है-''प्रकृतिवादी तो जंगली गुलाब से संतुष्ट हो सकता है, किन्तु आदर्शवादी तो एक सुन्दर व सुविकसित गुलाब की परिकल्पना करता है।'' यह दार्शनिक विचारधारा यह मानकर चलती है कि बालक के विकास हेतु उपर्युक्त सामाजिक वातावरण एवं शिक्षक का सही मार्गदर्शन आवश्यक है।

11.5.1 आदर्शवाद एवं बालक (Idealism and Child)

आदर्शवाद में बालक को शिक्षण प्रक्रिया का मुख्य बिन्दु नहीं माना जाता। उनके अनुसार शिक्षण प्रक्रिया में भावों, विचारों व आदर्शों का महत्वपूर्ण स्थान है और इनको प्रदान करने के माध्यम

के रूप में वह अध्यापक को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं व बालक को गौण। वह छात्रों को एक आध्यात्मिक प्राणी मानते हैं व यह स्वीकार करते हैं कि आध्यात्मिक सत्ता भी होती है। वे मन को शरीर से अधिक महत्व देते हैं। हॉर्न ने इस संबंध में कहा है, ''विद्यार्थी एक परिमित व्यक्ति है किन्तु उचित शिक्षा मिलने पर वह परम पुरूष के रूप में विकसित होता है। उसकी मूल उत्पत्ति दैविक है, स्वतंत्रता उसका स्वभाव है और अमरत्व की प्राप्ति उसका लक्ष्य है।''

11.5.2 आदर्शवाद का मूल्यांकन (Evaluation of Idealism)

गुण (Merits)

1. बालक के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास पर बल देना।
2. बालक में आत्मानुभूति की क्षमता उत्पन्न करना।
3. सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् को शिक्षा का आधार मानना।
4. शिक्षा के उद्देश्यों पर विस्तृत रूप में विचार करना।
5. शिक्षण प्रक्रिया में अध्यापक को महत्वपूर्ण स्थान देना।
6. आत्मानुशासन व आत्म-नियंत्रण पर बल देना।
7. शिक्षण विधियों को उद्देश्यों के अनुरूप बनाने की बात करना।

अवगुण (Demerits)

1. बालक के मनोवैज्ञानिक प्रारूप या विशेषताओं की उपेक्षा करना।
2. अध्यापक को आवश्यकता से अधिक महत्व देना।
3. कठोर सामाजिक व्यवस्था की परिकल्पना करना।
4. इनके द्वारा निर्धारित लक्ष्य वास्तविक न होकर काल्पनिक हैं। इसी कारण इनकी प्राप्ति असंभव है।

5. लक्ष्य वर्तमान पर आधारित न होकर भविषय पर आधारित हैं।

6. मानववाद पर आवश्यकता से अधिक महत्व।

भाग-तीन

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्र. 1 ''अध्यापक सही चरित्र का आध्यात्मिक प्रतीक है'' यह परिभाषा है-

(अ) फ्रॉवेल (ब) जेण्टील (स) रॉस (द) फिक्टे

प्र. 2 ''प्रकृतिवादी तो जंगली गुंलाब से संतुष्ट हो सकता है किन्तु आदर्शवादी तो एक सुन्दर व सुविकसित गुलाब की परिकल्पना करता है।'' यह परिभाषा है-

(अ) फ्रॉवेल (ब) जेण्टील (स) रॉस (द) फिक्टे

प्र. 3 ''अध्यापक में स्व-अध्ययन का गुण होना चाहिए, जिससे वह निरन्तर नवीन ज्ञान की ओर उन्मुख हो सके।'' यह विचारधारा है-

(अ) प्रकृतिवादियों(ब) आदर्शवादियों (स) अस्तित्ववादिया(द) प्रयोजनवादियों

प्र. 4 ''सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'' को शिक्षा का आधार मानते है-

(अ) प्रकृतिवादी (ब) आदर्शवादी (स) अस्तित्ववादी (द) प्रयोजनवादी

प्र. 5 आत्मानुशासन व आत्म-नियंत्रण पर बल देता है-

(अ) आदर्शवादी (ब) प्रकृतिवादी (स) प्रयोजनवादी (द) अस्तित्ववादी

11.6 सारांश (Summary)

आदर्शवादी शिक्षा को पवित्र कार्य मानता है। शिक्षार्थी का व्यक्तित्व उसके लिए महान है। अतः वह छात्र के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना चाहता है। यह विकास सही दिशा में होना चाहिए।

विकास की दिशा ऐसी हो कि बालक आत्मानुभूति की ओर बढ़ सके और ''सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'' का दर्शन कर सके। विश्व में इससे बढ़कर न तो कोई लक्ष्य हो सकता है, न ही इससे बढ़कर कोई उपलब्धि हो सकती है। आदर्शवादी परम-सत्य में विश्वास करता है। वह परम-सत्य लक्ष्यों का लक्ष्य है, विभिन्न सत्यों का आधार, सुन्दरों में सौन्दर्य का मूल तथा साक्षात् शिवम् है। जीवन की पूर्णता उसी दिशा में चलने में है। अतः हम यह कह सकते हैं कि आदर्शवाद ने शिक्षा की दिशा निश्चित करने में शिक्षाशास्त्रियों का मार्ग-दर्शन किया है। शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करते समय हम कभी-कभी दूर दृष्टि से काम नहीं लेते। आदर्शवाद हमें इस खतरे से सावधान करता है। आदर्शवादने आत्मानुभूति जैसा शिक्षा का उद्देश्य देकर, अनेकता में एकता की अंतदृष्टि प्रदान करके एवं ''सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'' की प्राप्ति की दूर-दृष्टि देकर शिक्षा का बड़ा उपकार किया है।

आदर्शवाद ने शिक्षक के स्थान को बड़ा महत्व दिया है। इसका परिणाम यह होता है कि शिक्षक अत्यधिक सक्रिय रहता है और छात्र निष्क्रिय हो जाते हैं। छात्र इससे निरूत्साहित होता है और स्वयं सीखने के लिए इच्छा नहीं करता।

उपर्युक्त दोषों में कुछ सत्यता अवश्य है, किन्तु कभी-कभी किसी दार्शनिक विचारधारा को ठीक से न समझने के कारण ही उसकी आलोचना की जाती है। आदर्शवाद का परम-सत्य सबकी समझ में नहीं आ पाता। अतः वे उसे काल्पनिक और अयथार्थ समझते हैं। जहां तक शिक्षण-विधियों का प्रश्न है, आदर्शवाद ने अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जिस विधि को उचित समझा, उसे अपनाया।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि जहा तक शिक्षा के उद्देश्यों का संबंध है, आदर्शवाद के सामने कोई दूसरी विचारधारा टिक नहीं सकती। शिक्षा के अन्य अंगों के क्षेत्र में आदर्शवाद ने अधिक ध्यान नहीं दिया।

11.7 कठिन शब्द (Difficult Words)

जगत - जगत से हमारा अभिप्राय संसार अर्थात् पूरे विश्व में व्याप्त भूमण्डल।

आध्यात्मिक - आध्यात्मिक से हमारा अभिप्राय धार्मिक क्रिया-कलापों, पूजा-पाठ व ईश्वर में ध्यान, सत्य का मार्ग आदि।

नश्वर - इस संसार में प्रत्येक वस्तु नश्वर है। अर्थात् जिसका जन्म हुआ है या निर्माण हुआ वह एक दिन समाप्त अवश्य ही होती है।

संस्कृति - संस्कृति से हमारा अभिप्राय हमारे रीति-रिवाज, परम्पपराएं, आचरण व धार्मिक क्रिया-कलाप, हमारी संस्कृति हैं।

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice question)

भाग-एक

उत्तर 1 (अ) एडम्स

उत्तर 2 (ब) विचारधारा या प्रत्यवाद

उत्तर3 (द) आदर्शवाद

उत्तर 4 (ब) आदर्शवाद

उत्तर 5 (अ) सुकरात

भाग-दो

उत्तर 1 (ब) चार चरण

उत्तर 2 (स) आदर्शवाद

उत्तर 3(अ) आदर्शवाद

उत्तर 4(द) आदर्शवाद

उत्तर 5 (स) आदर्शवाद

भाग-तीन

उत्तर 1 (ब) जेण्टील

उत्तर2 (स) रॉस

उत्तर 3 (ब) आदर्शवादियों

उत्तर4 (ब) आदर्शवादी

उत्तर 5 (अ) आदर्शवादी

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008).*उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006).*शैक्षिक समाजशास्त्र*.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008).*शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*.नई दिल्ली:रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996).*भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा:रतन प्रकाशन मंदिर.

11.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ (Useful Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008).*उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006).*शैक्षिक समाजशास्त्र*.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008).*शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*.नई दिल्ली:रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996).*भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा:रतन प्रकाशन मंदिर.

11.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long Answer Type Questions)

प्र. 1. आदर्शवाद से आप क्या समझते हैं? जीवन दर्शन के रूप में आदर्शवाद की विस्तृत चर्चा कीजिए।

प्र. 2. आदर्शवाद में शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्र. 3. आदर्शवादी पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धतियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्र. 4. आदर्शवादी शिक्षक एवं बालकों के प्रमुख गुणों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

इकाई- 12: प्रयोजनवाद (Pragmatism)

12.1 प्रस्तावना Introduction

12.2 उद्देश्य Objectives

भाग-1

12.3 प्रयोजनवाद और शिक्षा Pragmatism and Education

12.3.1प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, आचार मीमांसा Metaphysics, Epistemology and Ethics of Pragmatism

12.3.2प्रयोजनवाद का अर्थ Meaning of Pragmatism

12.3.3 प्रयोजनवाद की परिभाषाएं Definition of Pragmatism

12.3.प्रयोजनवाद की प्रमुख विशेषताएं Chief Characteristics of Pragmatism

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

भाग-2

12.4 प्रयोजनवाद के आधारभूत सिद्धान्त Fundamental Principals of Pragmatism

12.4.1प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम Pragmatism Curriculum

12.4.2 प्रयोजनवादी शिक्षण पद्धति Pragmatic Method of Teaching

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

भाग-3

12.5 आदर्शवाद व प्रयोजनवाद में अंतर Difference Between Idealism and Pragmatism

12.5.1 प्रकृतिवाद व प्रयोजनवाद में अंतर Difference Between Naturalism and Pragmatism

12.5.2 प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव Impact of Pragmatism on Modern Education
अपनी उन्नति जानिए Check your Progress
12.6 सारांश Summary
12.7 कठिन शब्द Difficult Words
12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर Answer of Practice Questions
12.9 सन्दर्भ Reference
12.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें Useful Books
12.11 निबन्धात्मक प्रश्न Essay Types Question

12.1 प्रस्तावना(Introduction)

प्रयोगवाद एक आधुनिक अमेरिकी जीवन दर्शन है। यह अमेरिकी राष्ट्र के जीवन तथा विचार का प्रतिनिधित्व करता है। वस्तुतः अमेरिका नव निवासियों का देश है। विशेषकर पश्चिमी यूरोप के प्रगतिशील निवासी ही वहां जाकर 16वीं-17वीं शताब्दी में बस गए। वहाँ उन्हें सर्वथा नई स्थितियां, समस्याओं एवं वातावरण का सामना करने के लिए कोई पूर्व निर्मित समाधान नहीं था। इसलिए वे अपने जीवन का मार्ग खुद प्रस्त किये। जीवनगत समस्याओं का समाधान भी उन्हें नये तरीके से स्वयं ढूंढना पड़ा। यहां तक कि पूर्व मान्यताएं स्वतः ही बिखरने लगीं तथा नवीन उपयोगी विचारधारा का जन्म हुआ। यही विचारधारा प्रयोजनवाद के नाम से अभिहित हुई। उसके अनुसार वही दर्शन सही है जिसका नाता मानव जीवन तथा मानव क्रियाकलापों से ही प्रयोजनवाद निश्चित एवं शाश्वत् मूल्यों के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता है। वह तो जीवन और समाज के लिए उपयोगी एवं व्यावहारिक सिद्धान्तों को स्वीकार करता है। जिनके सहारे मानव अपनी जीवनगत समस्याओं का समाधान ढूंढने में सफल होता है। यह आसमान को कम, धरती को ज्यादा महत्व देता है।

प्रयोजनवाद का उत्पत्ति स्थल अमेरिका है, जहां एक दर्शन के रूप में इसका विकास हुआ। चार्ल्स पियर्स तथा विलियम जेम्स इस विचारधारा के प्रतिपादक माने जाते हैं। जेम्स ने मानव अनुभव के महत्व को स्पष्ट किया और मानव को समस्त वस्तुओं और क्रियाओं की सत्यता की कसौटी बताया।

जेम्स के बाद अमेरिका के ही एक विचारक जॉन डीवी ने इस विचारधारा को आगे बढ़ाया। डीवी ने व्यक्ति की इच्छा को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्वीकार किया। उनके अनुसार मानव प्रगति का आधार सामाजिक बुद्धि ही होती है। डीवी के बाद अमेरिका में उनके शिष्य किलपैट्रिक ने इस विचारधारा को आगे बढ़ाया और इंग्लैण्ड में शिलर महोदय ने। इन सबमें डीवी का योगदान सबसे अधिक है।प्रयोजनवादी किसी निश्चित सत्य में विश्वास नहीं करते। उनके विचार से दर्शन भी सदा निर्माण की स्थिति में रहता है। चूंकि मानव जीवन परिवर्तनशील है, अतः इस प्रकार की शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्य चर्चा आदि का निर्माण न करके उनके निर्माण के सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं। इस विचारधारा के प्रमुख दार्शनिक एवं शिक्षाविद् जॉन डीवी माने जाते हैं।

12.2 उद्देश्य (Objectives)

1. प्रयोजनवाद व शिक्षा के संबंध में जान सकेंगे।
2. प्रयोजनवाद दर्शन के अर्थ और परिभाषाएं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. प्रयोजनवाद के दार्शनिक रूपों का अध्ययन कर सकेंगे।
4. प्रयोजनवाद के प्रमुख सिद्धान्तों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
5. प्रयोजनवाद की प्रमुख विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे।
6. अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
7. अस्तित्ववादी शिक्षक, विद्यार्थी व शिक्षण विधि के बारे में जान सकेंगे।

भाग-1

12.3 प्रयोजनवाद (Pragmatism)

प्रयोजनवाद एक व्यावहारिक व अद्वितीय दर्शन है, जिसमें प्रकृतिवाद व आदर्शवाद की प्रमुख विशेषताओं को समन्वित करने का प्रयास किया है। जॉन ड्यूवी ने अर्थ क्रियावाद की उपयोगिता को शिक्षा के क्षेत्र में भी बहुत अधिक माना है। कुछ शिक्षा दार्शनिक तो यहां तक कहते हैं कि आधुनिक

शिक्षा का युग प्रयोजनवाद का युग है। प्रसिद्ध दार्शनिक ड्यूवी ने शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है, ''शिक्षा अनुभव का पुनर्निर्माण अथवा पुनर्रचना करने वाली प्रक्रिया है जिससे कि विवृद्ध वैयक्तिक कुशलता के माध्यम द्वारा उसे अधिक सामाजिक मूल्य प्राप्त होता है।'' वह यह मानता है कि मनुष्य की शिक्षा की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है। चूंकि अनुभव द्वारा वह कुछ न कुछ ग्रहण करता रहता है। नित्य प्रति मानवीय परिस्थितियां बदलती हैं और मनुष्य उनके अनुकूल अपनी क्रियाओं को भी बदल लेता है। नये परिवेश में व्यक्ति जब अपनी समस्याओं का हल ढूंढता है तो उसके अनुभव विकसित होने लगते हैं। यह समृद्ध अनुभव ही शिक्षा है। जॉन ड्यूवी शिक्षा को एक व्यापक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं जो विद्यालय के साथ ही समाज में भी चलती रहती है। इसी कारण अर्थ क्रियावादी यह मानता है कि शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली एक प्रक्रिया है अथवा शिक्षा जीवन है और जीवन शिक्षा।

12.3.1 प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, आचार मीमांसा (Metaphysics, Epistemology and Ethics of Pragmatism)

प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा Metaphysics of Pragmatism

प्रयोजनवादी इस ब्रह्माण्ड की रचना के संबंध में विचार करने के स्थान पर मनुष्य जीवन के वास्तविक पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं। वे इस ब्रह्माण्ड के बारे में केवल इतना ही कहते हैं कि यह अनेक वस्तुओं और अनेक क्रियाओं का परिणाम है, वस्तु और क्रियाओं की व्याख्या के झमेले में ये नहीं पड़ते। इस इन्द्रियग्राह संसार के अतिरिक्त ये किसी अन्य संसार के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। ये आत्मा-परमात्मा के अस्तित्व को भी नहीं स्वीकारते। इनके अनुसार मन का ही दूसर नाम आत्मा है और मन एक पदार्थ जन्म क्रियाशील तत्व है।

प्रयोजनवाद की ज्ञान मीमांसा Epistemology of Pragmatism

प्रयोजनवादियों के अनुसार अनुभवों की पुनर्रचना ही ज्ञान है। ये ज्ञान को साध्य नहीं अपितु मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने का साधन मानते हैं। इसकी प्राप्ति सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने से स्वयं होती है। कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को ये ज्ञान का आधार मानते हैं और मस्तिष्क तथा बुद्धि को ज्ञान का नियंत्रक।

प्रयोजनवाद की आचार मीमांसा Ethics of Pragmatism

प्रयोजनवादी निश्चित मूल्यों और आदर्शो में विश्वास नहीं करते इसलिए ये मनुष्य के लिए कोई निश्चित आचार संहिता नहीं बनाते। इनका स्पष्टीकरण है कि मनुष्य जीवन में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है इसलिए उसके आचरण को निश्चित नहीं किया जा सकता। उसमें तो वह शक्ति होनी चाहिए कि वह बदले हुए पर्यावरण में समायोजन कर सके। वे बच्चों में केवल सामाजिक कुशलता का विकास करना चाहते हैं। सामाजिक कुशलता से व्यावहारिकतावादियों का तात्पर्य समाज में समायोजन करने, अपनी जीविका कमाने, मानव उपयोग की वस्तु एवं क्रियाओं की खोज करने और नई-नई समस्याओं का समाधान करने की शक्ति से होता हैं|

12.3.2 प्रयोजनवाद का अर्थ Meaning of Pragmatism

प्रयोजनवाद आंग्ल भाषा के 'प्रैग्मैटिज्म' (Pragmatism) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है, जिसकी व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा के 'प्रैग्मा' (Prama)शब्द से हुई है, जिसका तात्पर्य है 'क्रिया' अर्थात् 'व्यावहारिक' या 'व्यवहार्य'। दूसरे शब्दों में प्रयोजनवाद वह विचारधारा है जो उन्हीं बातों को सत्य मानती है, जो व्यावहारिक जीवन में काम आ सकें। प्रयोजनवादी मूर्त वस्तुओं, शाश्वत सिद्धान्तों और पूर्णता तथा उत्पत्ति में विश्वास नहीं करते। इनके अनुसार सदैव देशकाल तथा परिस्थिति के अनुसार सत्य परिवर्तित होता रहता है, क्योंकि एक वस्तु जो एक देश, काल तथा परिस्थिति में उपयोगी होती है वह दूसरे में नहीं। प्रयोगवाद को 'प्रयोजनवाद' भी कहा जाता है, क्योंकि यह 'प्रयोग' (Experiment) को ही सत्य की एकमात्र कसौटी मानता है। इसे हम 'फलवाद' भी कह सकते हैं, क्योंकि इसमें किसी कार्य का मूल्य उसके परिणाम या फल के आधार पर आंका जाता है।

इस प्रकार, ''प्रयोजनवाद जिसे हम प्रयोगवाद या फलवाद भी कह सकते हैं, वह विचारधारा है जो उन्हीं क्रियाओं, वस्तुओं, सिद्धान्तों तथा नियमों को सत्य मानती है, जो किसी देश, काल और परिस्थिति में व्यावहारिक तथा उपयोगी हो।''

12.3.3 प्रयोजनवाद की परिभाषाएं Definition of Pragmatism

(1) रस्क के अनुसार (According to Rusk) - ''प्रयोजनवाद एक प्रकार से नवीन आदर्शवाद के विकास की अवस्था है, एक ऐसा आदर्शवाद जो वास्तविकता के प्रति पूर्ण न्याय करेगा, व्यावहारिक

तथा आध्यात्मिक मूल्यों का समन्वय करेगा और इसके परिणामस्वरूप उस संस्कृति का निर्माण होगा जिसमें निपुणता का प्रमुख स्थान होगा, न कि उसकी उपेक्षा होगी।''

(2) जेम्स के अनुसार (According to Jams) - ''प्रयोजनवाद मस्तिष्क का स्वभाव तथा मनोवृत्ति है। यह विचारों की प्रकृति एवं सत्य का भी सिद्धान्त है और अपने अंतिम रूप में यह वास्तविकता का सिद्धान्त है।'' (Pragmatism is a temper of mind an attitude. It Is also a thing of nature of ideas and truth and finally it is a thing about reality)

(3) रॉस के अनुसार (According to Ross)- ''प्रयोजनवाद एक मानवीय दर्शन है जो यह स्वीकार करता है कि मनुष्य क्रिया की अवधि में अपने मूल्यों का निर्माण करता है और यह स्वीकार करता है कि वास्तविकता सदैव निर्माण की अवस्था में रहती है।'' (Pragmatism is essently a humanistic philosophy, maintain that man creates his own values in course of activity, that reality is still in making and awaits its past of completion from that future)

(4) जैम्स प्रैट के अनुसार (According to Jams Prett) - ''प्रयोजनवाद हमें अर्थ का सिद्धान्त, सत्य का सिद्धान्त, ज्ञान का सिद्धान्त और वास्तविकता का सिद्धान्त देता है।'' (Pragmatism offers us a theory of meaning, a theory of truth , a theory of knowledge and a theory of Knowledge.)

(5) रोजन के अनुसार (According to Rosen) - ''प्रयोजनवाद के अनुसार सत्य को उसके व्यावहारिक परिणामों द्वारा जाना जा सकता है। इस कारण सत्य निरपेक्ष न होकर व्यक्तिगत या सामाजिक समस्या है।'' (Pragmatism states that truth can be known only through its practical consequence and is thus an Individual or social matter rather than an absolute)

वास्तव में देखा जाए तो अर्थ क्रियावाद व्यावहारिकता या क्रिया पर बल देता है।

12.3.4 प्रयोजनवाद की प्रमुख विशेषताएं (Chief Assertion of Pragmatism)

1. परम्पराओं व मान्यताओं का विरोधी (Pragmatism, a revolt against traditionalism) - अर्थ क्रियावाद निर्धारित आस्थाओं का विरोधी है। प्रकृतिवाद द्वारा प्रकृति के अस्थित्व में विश्वास रखना अथवा आदर्शवाद द्वारा एक चिरस्थायी सत्य को यह स्वीकार नहीं करता। यह विचारों की अपेक्षा क्रिया को अधिक महत्व देता है व यह मानता है कि वास्तविकता एक निर्माणशील प्रक्रिया है और उसके संबंध में हम किसी भी सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं। वह यह मानते हैं कि सत्य तो व्यावहारिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है और ज्ञान भी क्रियाओं का ही परिणाम है। क्रियाओं को सुचारू रूप से चलाने हेतु ज्ञान की आवश्यकता होती है।

2. शाश्वत मूल्यों का बहिष्कार (Rejects Ultimate Value) - प्रयोजनवाद किसी निश्चित अथवा शाश्वत सत्य अथवा सिद्धान्त की सत्ता को स्वीकार नहीं करता। वह यह मानते हैं कि मूल्य तो मानव की व्यक्तिगत व सामाजिक घटनाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं जो सदैव परिवर्तनशील होते हैं। वह यह मानते हैं कि विश्व गतिशील है। अतः मूल्य भी गतिशील होते हैं। वास्तव में मूल्यों का निर्माण तो व्यक्ति स्वयं अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप करता है। आज जो 'सत्य' है, वह कल भी 'सत्य' होगा। सोचना गलत है चूंकि सत्य तो देश, काल व परिस्थितियों के अनुकूल बदलता रहता है।

3. विचार क्रिया के अधीन होते हैं (Though is Subordinate to Action) - प्रयोजनवाद क्रिया को सर्वोच्च स्थान देता है व यह मानता है कि कोई भी विचार तभी सार्थक हो सकता है जब हम उसे क्रिया रूप में हस्तांतरित करें। वास्तव में देखा जाए तो क्रिया ही विचारों को अर्थ प्रदान करती है और उनका महत्व निर्धारित करती है। हॉ, इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि विचार आंतरिक वस्तु है व क्रिया बाह्य।

4. किसी सार्वभौमिक सत्ता में आस्था न होना (No faith in Supreme Power)- प्रयोजनवाद ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार नहीं करता। वह यह मानता है कि ईश्वरा मिथ्या है। आत्मा के

अस्तित्व को वह मानता अवश्य है परन्तु उसे एक क्रियाशील तत्व के रूप में स्वीकार करता है। उनके अनुसार सर्वाच्च सत्ता समाज की होती है।

5. उपयोगिता के सिद्धान्त पर बल (Emphasis on Principal of utility) - प्रयोजनवाद यह मानता है कि किसी भी सिद्धान्त अथवा विश्वास की कसौटी उपयोगिता है। यदि कोई सिद्धान्त हमारे उद्देश्यो का पूरक है व हमारे लिए लाभप्रद है तो ठीक है अन्यथा नहीं। कोई भी सिद्धान्त स्वयं में उपयोगी या अनुपयोगी नहीं होता। अगर उसका फल उपयोगी है तो ठीक है और अगर फल अनुपयोगी है तो सिद्धान्त भी ठीक नहीं है।

6. व्यक्ति के सामाजिक जीवन पर बल (Emphasis on Individual's School life) - प्रयोजनवाद व्यक्ति को एक सामाजिक इकाई के रूप में स्वीकार करता है व बालक के व्यक्तित्व के सामाजिक पक्ष के विकास की अधिकांशतया चर्चा करता है। व्यक्ति समाज में रहकर अपने जीवन को सफल बना सके, इसे वह महत्व देता है व इसके लिए यह भी अनिवार्य मानता है कि व्यक्ति में सामाजिक कुशलता का विकास किया जाए।

7. मनुष्य एक मनोशारीरिक प्राणी (Man is a Psychological Individual) - प्रयोजनवाद मनुष्य को एक मनोशारीरिक प्राणी मानता है। इनके अनुसार मनुष्य को विचार व क्रिया करने की शक्तियां प्राप्त हैं, जिनके माध्यम से मनुष्यसमस्या को समझने व उनका हल ढूंढने का प्रयास करता है और अन्ततोगत्वा वह स्वयं को अपने वातावरण के अनुकूल ढालने का प्रयास करता है।

8. बहुतत्ववादी विचारधारा (Pluralist Ideology) - प्रयोजनवाद यह मानता है कि इस संसार की रचना अनेक तत्वों से मिलकर हुई है और इन तत्वों के मध्य क्रिया चलती रहती है, जिसके परिणामस्वरूप रचनात्मक कार्य होता है। सबसे बड़ी बात यह है कि यह क्रिया सदैव चलती रहती है व संसार की रचना करती रहती है। इसी कारण प्रयोजनवाद के अनुसार यह संसार सदैव निर्माण की अवस्था में रहता है। मनुष्य इस संसार का सृजनशील प्राणी है। अतः मनुष्य भी सदैव क्रियाशील रहता है।

9. दर्शन, शिक्षा का सिद्धान्त (Philosophy as the Theory of Education) - प्रयोजनवाद यह मानता है कि शैक्षिक अभ्यासों के फलस्वरूप ही दर्शन का जन्म होता है। जॉन ड्यूवी ने इस संबंध

में कहा कि सामान्य रूप से दर्शन शिक्षा का सिद्धान्त है। (Philosophy is the theory of education in its most general phase) वास्तव में दर्शन द्वारा निर्धारित सिद्धान्त ही सत्य व व्यवहार्य होते हैं।

10. प्रजातंत्र में आस्था (Faith in Democracy)- अर्थ क्रियावाद प्रजातंत्र शासन व्यवस्था पर बल देकर उसके प्रति अपनी आस्था अभिव्यक्त करता है। वह प्रजातंत्र को जीवन का एक तरीका व अनुभवों का आदान-प्रदान करने की एक व्यवस्था के रूप में देखता है। वह जीवन, शिक्षा व प्रजातंत्र को एक-दूसरे से संबंधित प्रक्रिया मानते हैं।

अपनी उन्नति जानिए Check your progress

प्र. 1 प्रयोजनवाद की उत्पत्ति स्थल किस देश को माना जाता है?

A. भारत B. अमेरिका C. इंग्लैण्ड D. रूस

प्र. 2 जॉन ड्यूवी किस देश के रहने वाले थे?

A.भारत B. चीन C. अमेरिका D. जर्मनी

प्र. 3 प्रयोजनवाद को किस-किस नाम से जाना जाता है?

प्र. 4 प्रयोजनवाद क्रिया को सर्वोच्च स्थान देता है

A. सत्य B. असत्य

प्र. 5 प्रयोजनवाद क्रिया की अपेक्षा विचारों को अधिक महत्व देता है-

A. सत्य B. असत्य

प्र. 6 ''शिक्षा बालक के लिए है, बालक शिक्षा के लिए नहीं'' यह विचारधारा है-

A. प्रयोजनवाद B. प्रकृतिवाद C. आदर्शवाद D. अस्तित्ववाद

भाग-2

12.4 प्रयोजनवाद के आधारभूत सिद्धान्त (Fundamental Principles of Pragmatism)

1. सत्य का हमेशा परिवर्तनशील होना Truth is always Changeable)- प्रयोजनवाद के अतिरिक्त जितनी भी दार्शनिक विचारधाराएं हुई हैं, वे सत्य को अपरिवर्तनशील मानती हैं, परन्तु प्रयोजनवाद के अनुसार सत्य सदैव देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। जो वस्तु एक स्थान पर सत्य है आवश्यक नहीं है कि वह दूसरे स्थान पर भी सत्य होगी। इसी प्रकार जो वस्तु आज सत्य है आवश्यक नहीं कि कल भी सत्य होगी। इस प्रकार प्रयोजनवाद के अनुसार 'सत्य सदा परिवर्तनशील है।' प्रयोजनवाद के जन्मदाता विलियम जेम्स ने ठीक ही कहा, ''सत्यता किसी विचार का स्थायी गुण धर्म नहीं है। वह तो अकस्मात् विचार में निर्वासित होता है। " The Truth an idea is not a stagnate property inherent in it. Truth happens an Idea)

2. समस्याएं सत्य की प्रेरक हैं (Problem are the motives of Truth) - प्रयोजनवादियों का विचार है कि मानव जीवन में एक न एक नवीन समस्याएं आती रहती हैं। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए व्यक्ति अपने जीवन में बहुत से प्रयोग करता है। प्रयोग की सफलता सत्य का रूप ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार हमारे जीवन की समस्याऐं ही सत्य की खोज के लिए हमें प्रेरणा प्रदान करती है।

3. सत्य मानव निर्मित होता है (Truth is Man-Made) - प्रयोजनवादियों के अनुसार सत्य कोई ऐसी चीज नहीं जो पहले से विद्यमान हो। परिस्थितियों में परिवर्तन होने के फलस्वरूप मनुष्य के सामने अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। जिनकी पूर्ति के लिए मनुष्य चिन्तन करने लगता है, किन्तु चिन्तन में आए सभी विचार तो सत्य नहीं होते, सत्य तो केवल वही विचार होते हैं, जिनका प्रयोग करने पर सन्तोषजनक फल प्राप्त हो।

4. बहुत्ववाद का समर्थन (Vindication of Pluarism)- अंतिम सत्ता एक है, दो या अनेक इस संबंध में मुख्यतः तीन वाद हैं। 1. एकत्ववाद (Mononism)2. द्वैतवाद (Dualism) तथा 3. बहुत्ववाद (Plualism)। प्रयोजनवाद बहुत्ववाद का समर्थक है। रस्क महोदय ने इस तथ्य पर विचार करते हुए लिखा है-''प्रकृतिवाद प्रत्येक वस्तु को जीवन या (भौतिक तत्व), आदर्शवाद मन या आत्मा

मानता है। प्रयोजनवाद इस बात की आवश्यकता नहीं समझता कि संसार का किसी एक तत्व या सिद्धान्त के आधार पर स्पष्टीकरण करे। प्रयोजनवाद अनेक सिद्धान्तों को स्वीकार करने में संतोष अनुभव करता है। इस तरह वह बहुत्ववादी है।''

"Naturalism reduces everything to life, idealism to mind or spirit. Pragmatism sees no necessity for seeking one fundamental principal of explanation. It is quite content to admit several principles and accordingly is pluralistic" –Rusk.

5. उपयोगिता के सिद्धान्त का समर्थन (To Support the Principal of Utility)- प्रयोजनवाद के अनुसार केवल वही वस्तु अथवा विचार ठीक है जो हमारे लिए उपयोगी है और इसके विपरीत जो वस्तु या विचार हमारे लिए उपयोगी नहीं है वह हमारेलिए व्यर्थ है। इस प्रकार प्रयोजनवादी उपयोगिता के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं।

6. मानवीय शक्ति पर बल (Emphasis on human power)- प्रयोजनवादी मानव की शक्ति पर विशेष बल देता है, क्योंकि वह उसके द्वारा अपनी आवश्यकतओं के अनुसार वातावरण बना लेता है। वह सफलतापूर्वक समस्याओं का समाधान करके अपने लिए सुन्दर वातावरण निर्मित कर लेता है।

7. सामाजिक प्रथाओं एवं परम्पराओं की उपेक्षा (Negligence of Social Customs and Traditions)- प्रयोजनवादी समाज में नाना प्रकार की प्रचलित रूढ़ियों, बंधनों एवं परम्पराओं की सर्वथा उपेक्षा करते हैं। ये लोग 'विचार' की अपेक्षा 'क्रिया' को विशेष महत्व देते हैं, क्योंकि उनका विचार है कि विचार हमेशा 'क्रिया'से ही उत्पन्न होते हैं।

8. आध्यात्मिक तत्वों की उपेक्षा (Negligence of Spiritual Elements)- प्रयोजनवादी व्यावहारिक जीवन से संबंध रखना उचित समझते हैं। ईश्वर, आत्मा, धर्म इत्यादि का व्यावहारिक जीवन से संबंध न होने के कारण इनका कोई महत्व नहीं है। हॉ, यदि व्यावहारिक जीवन में उनकी आवश्यकता अनुभव हो तो वे उन्हें स्वीकार करने में भी नहीं चूकते। कुछ भी हो प्रयोजनवादी आध्यात्मिक तत्वों की उपेक्षा करते हैं।

12.4.1 प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम Pragmatism Curriculum)

प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम निम्नलिखित बातों पर आधारित हैः-

1. उपयोगिता सिद्धान्त (Principle of Utility) - प्रयोजनवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम में ऐसे नियमों को स्थान देना चाहिए जो बालकों के भावी जीवन में काम दें और उन्हें ज्ञान तथा सफल जीवन की क्षमता प्रदान करें। इस दृष्टि से उनके अनुसार पाठ्यक्रम में भाषा, स्वास्थ्य विज्ञान, शारीरिक प्रशिक्षण, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान-बालिकाओं को गृह-विज्ञान आदि विषयों को स्थान देना चाहिए जो कि मानव प्रगति में सहायक हों।

2. सानुबंधित का (Principle of Integration) - प्रयोजनवादियों का विचार है कि जो विषय पाठ्यक्रम में निर्धारित किए जायें उन सबमें आपस में संबंध होना चाहिए, क्योंकि ज्ञान का पृथक-पृथक विभाजन नहीं होता। उनका विचार है कि बालकों को समस्त विषय एक-दूसरे से संबंधित कर पढ़ाने चाहिए, जिससे न केवल बालकों का ज्ञान प्राप्त करना सार्थक हो वरन् शिक्षकों को पढ़ाने में भी सुविधा हो।

3. बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम (Child-Centered Curriculum)- प्रयोजनवादियों का विचार है कि पाठ्यक्रम का संगठन इस प्रकार करना चाहिए कि उसमें बालक की प्राकृतिक अभिरूचियों को पूर्ण स्थान हो। बालक की ये अभिरूचियां मुख्य रूप से चार हैं- 1. बातचीत करना, 2. खोज करना, 3. कलात्मक अभिव्यक्ति एवं 4. रचनात्मक कार्य करना। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम में लिखने, पढ़ने, गिनने, प्रकृति विज्ञान, हस्तकार्य एवं ड्राइंग का अध्ययन करने के साधनों को स्थान मिलना चाहिए।

4. बालक के व्यवसाय, क्रियाओं एवं अनुभव पर आधारित (On the base of Child's Occupation Activities and Experience)- प्रयोजनवादियों का विचार है कि पाठ्यक्रम का संगठन बालक के व्यवसायों एवं अनुभव पर आधारित होना चाहिए। उनका विचार है कि किताबों को केवल रट लेना शिक्षा नहीं है बल्कि यह तो एक सुविचार प्रक्रिया है, फलस्वरूप पाठ्यक्रम में शिक्षा विषयों के अतिरिक्त सामाजिक, स्वतंत्र एवं उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं को स्थान मिलना चाहिए, जिससे कि बालकों में नैतिक गुणों का विकास होगा, स्वतंत्रता की भावना का संचार होगा, उन्हें नागरिकताकी प्रतिक्षा मिलेगी तथा उनमें आत्म-अनुशासन की भावना पैदा होगी।

12.4.2 प्रयोजनवादी शिक्षण पद्धति Pragmatic Method of Teaching

प्रयोजनवादी शिक्षाशास्त्रियों ने प्राचीन एवं रूढ़िवादी शिक्षा पद्धतियों का विरोध करते हुए वर्तमान शिक्षण विधियों का प्रतिपादन किया। उनका विचार है कि कोई पद्धति इसलिए स्वीकार नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह पहली से शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग होती आ रही है बल्कि उनका विचार है कि परिस्थितियों के अनुसार नवीन पद्धतियों की रचना करनी चाहिए। इस दृष्टिकोण से उन्होंने शिक्षण पद्धति के कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, जिनके आधार पर उसका निर्माण होना चाहिए। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:-

1. बाल केन्द्रित पद्धति (Child- Centered Method) - प्रयोजनवादियों का विचार है कि प्रत्येक शिक्षण पद्धति को 'बाल केन्द्रित' (Child-Center) होना चाहिए, अर्थात् शिक्षा पद्धति इस प्रकार होनी चाहिए जो बालक की अभिरूचियों, आवश्यकताओं, उद्देश्यों आदि के अनुकूल हो, जिससे कि बालक प्रसन्नतापूर्वक अपने जीवन में काम आने वाली शिक्षा ग्रहण कर सके।

2. करके सीखने अथवा स्वानुभव से सीखने की पद्धति (Method of Learning by doing or Experience)- प्रयोजनवादी विचार अथवा शब्द की अपेक्षा क्रिया पर अधिक जोर देते हैं। उनका विचार है कि बालकों को पुस्तकों की अपेक्षा क्रियाओं और अनुभवों से अधिक सीखना चाहिए जिससे कि उनके ज्ञान का व्यावहारिक मूल्य अधिक हो, फलस्वरूप वह 'करके सीखने अथवा स्वानुभव द्वारा सीखने' (Learning by doing or Experience) पर विशेष महत्व देते हैं।

3. सानुबन्धता की पद्धति ((Method of Integration)- प्रयोजनवादियों ने शिक्षा-पद्धतियों के निर्माण का तीसरा सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, जिसे सानुबन्धता का सिद्धान्त (Principal of Integration or Correlation))- कहते हैं। प्रयोजनवादी 'विभिन्नता में एकता के सिद्धान्त' (Principal of Unity in Divedrsity) का समर्थन करते हुए कहते हैं कि समस्त विषयों को परस्पर संबंधित कर पढ़ाना चाहिए, जिससे बालक जो ज्ञान और कौशल सीखते हैं, उनमें एकता स्थापित हो जाती है।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

प्र. 1 ''सत्य सदैव देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है, जो वस्तु एक स्थान पर सत्य है आवश्यक नहीं कि वह दूसरे स्थान पर भी सत्य होगी।'' यह विचारधारा है-

A. अस्तित्ववाद B. प्रयोगवाद C. आदर्शवाद D. प्रकृतिवाद

प्र. 2 प्रयोजनवाद समर्थन करता है-

A. एकत्ववाद (Mononism)B. द्वैतवाद (Dualism)C.बहुत्ववाद (Pluralism)

प्र. 3 ''विभिन्नता में एकता के सिद्धान्त (Principal of Utility In Diversity) का समर्थन करते हैं।'' यह विचारधारा है-

A. फलवाद/प्रयोजनवादB. आदर्शवाद C. प्रकृतिवाद D. अस्तित्ववाद

प्र. 4 ''प्रत्येक शिक्षण पद्धति को बाल केन्द्रित (Child-Cented) होना चाहिए।'' यह विचारधारा है-

A. प्राचीनकालीन B. आधुनिक C. अस्तित्ववादीD. प्रयोजनवादी

प्र. 5 ''मूल्य तो मानव की व्यक्तिगत व सामाजिक घटनाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं जो सदैव परिवर्तनशील होते हैं।'' यह विचारधारा है-

A. प्रयोजनवाद B. अस्तित्ववाद C. प्रकृतिवाद D. आदर्शवाद

प्र. 6 प्रयोग (Experiment) को ही सत्य की एकमात्र कसौटी कौन मानता है ?

A. प्रकृतिवाद B. अस्तित्ववाद C. प्रयोजनवाद D. आदर्शवाद

भाग-3

12.5 आदर्शवाद व प्रयोजनवाद में अंतर (Difference Between Idealism and Pragmatism)

दार्शनिक अंतर (Philosophical Difference)

आदर्शवाद (Idealism)	**प्रयोजनवाद (Pragmatism)**
1. आदर्शवाद एक 'अंतिम सत्ता' (Ultimate Reality) मानते हैं। 2. अंतिम सत्ता आध्यात्मिक स्वरूप की है। 3. आदर्शवादी शाश्वत मूल्यों तथा सत्यों पर विश्वास करते हैं। 4. आदर्शवादी 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' को शाश्वत मूल्य बताते हैं जो संसार की व्यवस्था के पहले से भी विद्यमान है। 5. आदर्शवाद के अनुसार अंतिम सत्ता ईश्वर ही है जो संपूर्ण जगत् का नियंत्रण तथा पालन करता है। 6. आदर्शवादी विचार को अधिक महत्व देते हैं। 7. आदर्शवादी बुद्धि को अधिक महत्व देते हैं। 8. आदर्शवादी ऐहिक या लौकिक जीवन को महत्व न देकर पारलौकिक जीवन को विशेष महत्व देते हैं।	1. प्रयोजनवाद अनेक सत्ताओं या तत्वों के आधार पर विश्व की व्याख्या करता है। 2. ये अनेक अलग-अलग प्रकृति के हो सकते हैं। 3. प्रयोजनवादियों के अनुसार सत्य सदैव परिवर्तनशील है। 4. प्रयोजनवादी किसी पूर्व-निश्चित मूल्य को स्वीकार न कर मनुष्य की क्रिया द्वारा मूल्यों की सृष्टि बतलाते हैं। 5. प्रयोजनवादी यदि व्यवहार में ईश्वर की आवश्यकता अनुभव करते हैं तभी ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। 6. प्रयोजनवादी विचार की अपेक्षा क्रिया को अधिक महत्व देते हैं। 7. प्रयोजनवादी बुद्धि के स्थान पर भावना तथा परिस्थितियों को अधिक महत्व देते हैं। 8. प्रयोजनवादी लौकिक या भौतिक जीवन को अधिक महत्व देते हैं।

शैक्षणिक अंतर (Educational Difference)	
9. आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य शाश्वत मूल्यों को प्राप्त करना है। 10. आदर्शवादी पाठ्यक्रम में शाश्वत मूल्यों से संबंधित विषयों को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। 11. आदर्शवादी शिक्षक को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। 12. आदर्शवाद प्रभावात्मक अनुशासन पर विशेष बल देता है।	9. प्रयोजनवाद के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक तथा व्यावहारिक जीवन उचित रूप से बिताने के लिए तत्वसंबंधी गुणों को विकसित करना है। 10. प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम में व्यावहारिक जीवन से संबंधित विषयों को अधिक महत्व देता है। 11. प्रयोजनवादी शैक्षिक परिस्थितियों के सृजन के लिए शिक्षक को आवश्यक बतलाते है। 12. प्रयोजनवाद सीमित मुक्त्यात्मक अनुशासन पर विश्वास करता है।

12.5.1 प्रकृतिवाद व प्रयोजनवाद में अंतर

दार्शनिक अंतर (Philosophical Difference

प्रकृतिवाद Naturalism	**प्रयोजनवाद (Pragmatism**
1. प्रकृतिवादी 'पुद्गल' (Matter) से संसार की समस्त वस्तुओं तथा विचारों की उत्पत्ति मानते हैं। इस तरह से वे एकत्ववादी हैं। 2. प्रकृतिवादी पदार्थ विज्ञान संबंधी प्राकृतिकनियमों की 'सार्वभौमिकता'	1. प्रयोजनवादी संसार की व्याख्या अनेक तत्वों के आधार पर करते हैं। इस प्रकार के बहुत्ववादी हैं। 2. प्रयोजनवादी किसी भी नियम या सिद्धान्त को सार्वभौमिक तथा वस्तुगत नहीं मानता बल्कि प्रयोजनवादी जेम्स के अनुसार समस्त

(Generalization)तथा'वस्तुनिष्ठता' (Objectivity) पर जोर देते हैं। 3. प्रकृतिवाद के अनुसार समानता सत्य की कसौटी है। 4. प्रकृतिवादी आदर्शो एवं मान्यताओं को पूर्णरूपेण स्वीकार नहीं करते। 5. प्रकृतिवादियों का दृष्टिकोण यांत्रिक तथा अवैयक्तिक है। इसी दृष्टि से ही तो 'व्यवहारवाद' को जन्म मिला। 6. प्रकृतिवादी ईश्वर के अस्तित्व को किसी भी माने में स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं।	नियमों का विकास देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार होता है। 3. प्रयोजनवाद के अनुसार 'पुनः निरीक्षण'(Observation) सत्यकी कसौटी है। 4. प्रयोजनवादी किसी न किसी रूप में आदर्शो तथा मान्यताओं को स्वीकार करते हैं। ड्यूवी के अनुसार यदि पूर्व-निश्चित मान्यताएं प्रयोग तथा अनुभव द्वारा सिद्ध होती हैं तो उन्हें भी स्वीकार कर लेना चाहिए। 5. प्रयोजनवादी मानव की प्रवृत्तियों, अनुभूतियों तथा भावनाओं पर बल देते हैं। इस दृष्टि से यह मानवीय विचारधारा कही जा सकती है। 6. यदि ईश्वर की मान्यता द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके तो प्रयोजनवादी ईश्वर को मानने में नहीं चूकते हैं।

शैक्षणिक अंतर (Educational Difference)

7. प्रकृतिवादी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य आत्म-प्रकाशन या वैयक्तिकता का विकास मानते हैं। 8. प्रकृतिवादी बालक में किसी भी प्रकार की आदत निर्माण करने के विरोध में हैं।	7. प्रयोजनवादी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक कल्याण तथा कार्य निपुणता को मानते हैं। 8. प्रयोजनवादी कार्य निपुणता या 'स्वभाव निर्माण' को ही शिक्षा का केन्द्र बिन्दु मानते हैं।

9. प्रकृतिवादी पाठ्यक्रम में उन विषयों को रखने पर बल देते हैं जिनसे आत्म-प्रकाशन तथा आत्म-रक्षा संभव हो सके।	9. प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम में उन विषयों को विशेष स्थान देते हैं जिनसे कि सारे समाज की प्रगति हो।
10. प्रकृतिवादी बालक की शिक्षा में शिक्षक की पूर्ण उपेक्षा करते हैं।	10. प्रयोजनवादी बालक में उत्तम गुणों के विकास के लिए शिक्षक को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं
11. प्रकृतिवादी प्राकृतिक परिणामों द्वारा अनुशासन के सिद्धान्त अर्थात् मुक्त्यात्मक अनुशासन का समर्थन करते हैं।	11. प्रयोजनवादी प्राकृतिक दुष्परिणामों से बालक की रक्षा करने की दृष्टि से सीमित मुक्त्यात्मक अनुशासन पर बल देते हैं।
12. प्रकृतिवादी शिक्षा नकारात्मक विचारधारा पर आधारित है।	12. प्रयोजनवादी शिक्षा सकारात्मक विचारधारा पर आधारित है।

तीनों विचारधाराओं में सामंजस्य आवश्यक हैं

उपर्युक्त शब्दों का यह निष्कर्ष न निकालना चाहिए कि चूंकि इन तीनों वादों मे अंतर है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में ये तीनों अलग-अलग कार्य करेंगे। वास्तव में रॉस के शब्दों में - ''यदि आदर्शवादी अपने आपको प्रगतिशील रखें तो प्रयोजनवाद एवं आदर्शवाद के बीच का अंतर कम हो जाता है।'' जहां तक मानव द्वारा निर्मित मूल्यों एवं आदर्शो का संबंध है वहां प्रयोगवाद प्रगतिशील आदर्शवाद से और जहां तक बालक एवं उसकी प्रगति अध्ययन का संबंध है वहां प्रयोगवाद प्रकृतिवाद से मिलता जुलता है। इसीलिए तो शायद प्रयोगवाद के प्रवर्तक जेम्स का कथन है, ''प्रयोगवाद को आदर्शवाद एवं प्रकृतिवाद की मध्यावस्था कहा जा सकता है।''

"Pragmatism is described as a Via-media between Idealism Naturalism" James

12.5.2 प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव (Impact of Pragmatism on Modern Education)

दर्शन के रूप में नहीं वरन् व्यवहार के रूप में प्रयोजनवाद ने आधुनिक शिक्षा पर बहुत प्रभाव डाला है। शिक्षा एक व्यावहारिक कला है और व्यावहारिक दृष्टि से प्रयोजनवाद शिक्षा से पुनःनिर्माण में बहुत सहायक सिद्ध हुआ। प्रयोजनवादी शिक्षा की निम्नलिखित धाराएं आज भी भारतीय शिक्षा में स्पष्ट हैः-

1. शिक्षा व्यापक रूप से विकास वृद्धि या व्यहार परिवर्तन का रूप लेती है।

2. शिक्षा के निकट के उद्देश्य बहुत महत्व रखते हों और उनकी प्राप्ति के लिए शिक्षण विधियां प्रगतिशील हों।

3. शिक्षा जीवन केन्द्रित हो और एक प्रगतिशील समाज में वह भी प्रगति का परिचय दे।

4. शिक्षा के सामाजिक प्रक्रिया है और समाज का पोषण है।

5. समाज शिक्षा संस्थाओं को अपने आदर्शो की पूर्ति के लिए स्थापित करता है। अतः शिक्षण संस्थाएं समाज का बन्धु रूप है।

6. जनतंत्रीय समाज के लिए जनतंत्रीय शिक्षा की आवश्यकता है।

7. ज्ञान की उत्पत्ति क्रिया से होती है, क्रिया प्रधान है, सफलतापूर्वक क्रिया का संपादन करने के लिए वह ज्ञान आता है और बालक क्रिया द्वारा सीखता है।

8. शिक्षा बालक की नैसर्गिक प्रवृत्तियों, रूचियों, शक्तियों आदि को केन्द्र बनाकर दी जाये परन्तु उसको साथ ही साथ सामाजिक रूप भी दिया जाये। बालक अपने हित के साथ-साथ समाज का हित करने की क्षमता भी सीख ले।

9. परम्परागत, रूढ़िगत तथा कठोर विधियों व विचारों को शिक्षा में लाकर एक लचकदार समाज में एक लचकदार शिक्षा की आवश्यकता है।

10. शिक्षा जीवन की तैयारी ही नहीं जीवन का लक्ष्य है। भविषय अनिश्चित है। अतः वर्तमान अधिक मूल्य रखता है। शिक्षा द्वारा बालकों को वह गुण, ज्ञान, मनोवृत्तियां व कौशल दिये जायें जो उन्हें एक बदलते हुए समाज में परिस्थितियों के अनुकूल अपना समाज में स्थान लेने योग्य बनाएं।

अपनी उन्नति जानिए (Check your progress)

प्र. 1 प्रयोजनवादी शाश्वत मूल्यों पर विश्वास करते हैं:-

A. सत्य B. असत्य

प्र. 2 प्रयोजनवादी भावना तथा परिस्थितियों से अधिक बुद्धि को अधिक महत्व देते हैं:-

A. सत्य B. असत्य

प्र. 3 प्रयोजनवादी शिक्षा में गतिशीलता व परिवर्तनशीलता पायी जाती है:-

A. सत्य B. असत्य

प्र. 4 प्रयोजनवादी 'पुद्गल' Metter से संसार की समस्त वस्तुओं तथा विचारों की उत्पत्ति मानते हैं। इस तरह से वे एक तत्ववादी हैं-

A. सत्य B. असत्य

प्र. 5 ''परम्परागत, रूढ़िगत तथा कठोर विधियों व विचारों को शिक्षा में लाकर एक लचकदार समाज में एक लचकदार शिक्षा की आवश्यकता है।'' यह विचारधारा है-

A. अस्तित्ववादी B. प्रकृतिवादी C. आदर्शवादी D. प्रयोजनवादी

12.6 सारांश (Summary)

शिक्षा दर्शन के रूप में प्रयोजनवाद का एक प्रगतिशील दर्शन है। वह शिक्षा को सामाजिक (Social), गतिशील (Dynamic) और विकास की प्रक्रिया (Process of Development0 मानता है। उसके इस विचार ने प्रगतिशील शिक्षा (Progressive Education) को जन्म दिया है। वास्तववाद

और प्रकृतिवाद ने शिक्षा को मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक आधार ही दिए थे, व्यावहारिकतावाद ने उसे एक तीसरा आधार भी दिया, जिसे हम सामाजिक आधार कहते हैं।

जहां तक शिक्षा के उद्देश्यों की बात है, व्यावहारिकतावाद उन्हें निश्चित करने के पक्ष में नहीं है। उसका स्पष्टीकरण है कि यह संसार और मनुष्य जीवन परिवर्तनशील है, इसलिए शिक्षा के कोई निश्चित उद्देश्य नहीं हो सकते, अगर शिक्षा का कोई उद्देश्य हो सकता है तो यही कि उसके द्वारा मनुष्य का सामाजिक विकास कर उसे इस योग्य बनाया जाए कि वह बदलते हुए समाज में अनुकूलन कर सके और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामाजिक पर्यावरण पर नियंत्रण रख सके और उसमें परिवर्तन कर सके। परन्तु जब तक मनुष्य यह नहीं जानता कि उसे सामाजिक पर्यावरण में किस सीमा तक अनुकूलन करना है और उसे अपनी किन आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है तब तक वह उचित मार्ग पर नहीं चल सकता। व्यावहारिकतावाद इन प्रश्नों के सही उत्तर नहीं देता, इसलिए उसके द्वारा निश्चित शिक्षा के ये उद्देश्य अपने में अपूर्ण हैं। डीवी महोदय ने सामाजिक कुशलता के विकास और किलपैट्रिक महोदय ने लोकतंत्रीय जीवन के विकास पर बल दिया है। हमारी दृष्टि से तो शिक्षा को मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना चाहिए।

शिक्षण विधियों के क्षेत्र में प्रयोजनवादियों की देन बड़ी मूल्यवान है। जिन मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन एवं प्रयोग वास्तववादियों और प्रकृतिवादियों ने किया, व्यावहारिकतावादियों ने उसमें सामाजिक पर्यावरण के महत्व को और जोड़ दिया। उन्होंने बच्चों की जन्मजात शक्तियों को पहचाना, उनके व्यक्तिगत भेदों का आदर किया और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सीखने, करके सीखने और अनुभव द्वारा सीखने पर बल दिया और इसके साथ-साथ इस बात पर भी बल दिया कि बच्चों को जो कुछ भी सिखाया जाये उसका संबंध उनके वास्तविक जीवन से होना चाहिए और उन्हें व्यावहारिक क्रियाओं के माध्यम से अनुभव करने के अवसर देने चाहिए। समस्त विषयों एवं क्रियाओं की शिक्षा एक ईकाई के रूप में देने पर भी इन्होंने बल दिया है। इन सिद्धान्तों पर डीवी महोदय ने समस्या समाधान विधि (Problem Solving Method) और किलपैट्रिक ने प्रोजेक्ट विधि (Project Method) का निर्माण किया। ईकाई विधि (Unit Technique0 भी इन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित है। आज संसार के सभी देशों की शिक्षा में इन विधियो को अपनाया जाता है।प्रयोजनवादी व्यक्ति और समाज दोनों के हित साधन के लिए विद्यालयों को समाज के सच्चे प्रतिनिधि के रूप् में देखना चाहते हैं। उनके इस विचार ने विद्यालयों को सामुदायिक केन्द्रो (Community Centered) में बदल दिया है। अब विद्यालय

कोई कृत्रिम संस्थाएं नहीं माने जाते अपितु बच्चों की जैविक प्रयोगशालाओं के रूप में स्वीकार किये जाते हैं, जहां बच्चे वास्तविक क्रियाओं में भाग लेते हैं, स्वयं क्रिया करते हैं, निरीक्षण करते हैं और वास्तविक जीवन की शिक्षा प्राप्त करते हैं।

12.7 कठिन शब्द (Difficult Words)

प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा Metaphysics of Pragmatism

यह अनेक वस्तुओं और अनेक क्रियाओं का परिणाम है, वस्तु और क्रियाओं की व्याख्या के झमेले में ये नहीं पड़ते। इस इन्द्रियग्राह संसार के अतिरिक्त ये किसी अन्य संसार के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। ये आत्मा-परमात्मा के अस्तित्व को भी नहीं स्वीकारते। इनके अनुसार मन का ही दूसरा नाम आत्मा है और मन एक पदार्थ जन्म क्रियाशील तत्व है।

प्रयोजनवाद की ज्ञान मीमांसा Epistemology of Pragmatism

प्रयोजनवादियों के अनुसार अनुभवों की पुनर्रचना ही ज्ञान है। ये ज्ञान को साध्य नहीं अपितु मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने का साधन मानते हैं। इसकी प्राप्ति सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने से स्वयं होती है। कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को ये ज्ञान का आधार मानते हैं और मस्तिष्क तथा बुद्धि को ज्ञान का नियंत्रक।

प्रयोजनवाद की आचार मीमांसा Ethics of Pragmatism

प्रयोजनवादी निश्चित मूल्यों और आदर्शो में विश्वास नहीं करते इसलिए ये मनुष्य के लिए कोई निश्चित आचार संहिता नहीं बनाते। इनका स्पष्टीकरण है कि मनुष्य जीवन में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है इसलिए उसके आचरण को निश्चित नहीं किया जा सकता। उसमें तो वह शक्ति होनी चाहिए कि वह बदले हुए पर्यावरण में समायोजन कर सके।

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

भाग-1

उत्तर-1 B. अमेरिका उत्तर-2C. अमेरिका

उत्तर-3 प्रयोजनवाद को हम प्रयोगवाद, फलवाद, क्रियावाद, व्यवहारवाद, कारणवाद, नैमित्तिकवाद, अनुभववाद आदि नामोंसे पुकारते हैं।

उत्तर-4 A. सत्य उत्तर-5 B. असत्य

उत्तर-6 प्रयोजनवाद

भाग-2

उत्तर-1 B. प्रयोगवाद उत्तर-2C. बहुत्ववादउत्तर-3A. फलवाद (प्रयोजनवाद)

उत्तर-4 D. प्रयोजनवाद उत्तर-5 A. प्रयोजनवाद उत्तर- C. प्रयोजनवाद

भाग-3

उत्तर-1 B. असत्य उत्तर-2 B. असत्य उत्तर-3 A. सत्य

उत्तर-4 B. असत्य उत्तर-5 D. प्रयोजनवादी

12.9 सन्दर्भ (Reference)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008).*उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006).*शैक्षिक समाजशास्त्र*.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008).*शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*.नई दिल्ली:रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996).*भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा:रतन प्रकाशन मंदिर.

12.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें (Useful Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008).*उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006).*शैक्षिक समाजशास्त्र*.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008).*शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*.नई दिल्ली:रजत प्रकाशन.

12.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

प्र. 1 प्रयोजनवाद से आप क्या समझते हैं? प्रयोजनवाद एवं शिक्षा के संबंधों की चर्चा विस्तृत रूप से कीजिए।

प्र. 2 प्रयोजनवाद में तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं आचार मीमांसा के बारे में विस्तृत रूप से वर्णन कीजिए।

प्र. 3 प्रयोजनवाद की विशेषताओं की विस्तृत रूप से व्याख्या कीजिए।

प्र. 4 प्रयोजनवाद के आधारभूत सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

प्र. 5 प्रयोजनवादी शिक्षण पद्धति की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

प्र. 6 प्रयोजनवाद की दो परिभाषाएं देते हुए प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

इकाई 13: अस्तित्ववाद (Existentialism)

13.1 प्रस्तावना Introduction

13.2 उद्देश्य Objectives

भाग-1

13.3 अस्तित्ववाद और शिक्षा Existentialism and Education

13.3.1 अस्तित्ववाद का अर्थ Meaning of Existentialism

13.3.2 अस्तित्ववाद की परिभाषाएं Definition of Existentialism

13.3.3 अस्तित्ववाद की विशेषताएं Characteristics of Existentialism

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

भाग-2

13.4 अस्तित्ववादी और शिक्षा Existentialism and Education

13.4.1 अस्तित्ववादी शिक्षा का अर्थ Meaning of Existentialism

13.4.2 अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य Objectives of Existentialism

13.4.3 अस्तित्ववाद व पाठ्यक्रम Curriculum and Existentialism

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

भाग-3

13.5 अस्तित्ववाद और शिक्षक Existentialism and Teacher

13.5.1 अस्तित्ववाद और विद्यार्थी Existentialism and Students

13.5.2 अस्तित्ववाद और शिक्षण विधि Existentialism and Teaching method

अपनी उन्नति जानिए Check your progress

13.6 सारांश Summary

13.7 शब्दावली/कठिन शब्द Difficult Words

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर Answer of Practice Question

13.9 सन्दर्भ Reference

13.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ Useful Books

13.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न Long answer type Question

13.1 प्रस्तावना(Introduction)

अस्तित्ववाद मनुष्य के अस्तित्व की संभावना और उसके वर्तमान रूपों से संबंधित है। स्वतंत्रता की भावना को नैसर्गिक तथा स्वतंत्रता को जन्म सिद्ध अधिकार मान लेने के बाद इस यात्रा का प्रारम्भ होता है, जिसमें मानवीय जीवन की संभावनायें प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुलभ हो सके। सोरेन किर्कगार्ड एवं जीन पॉल सार्त्रे ने अस्तित्ववादी चिन्तन को नया नैतिक धरातल प्रदान किया। उन्होंने स्वतंत्रता के प्रश्न को एक मानवीय प्रश्न बनाया और उसे समाज के संगठनात्मक ढांचे के अन्दर व्यवस्थित करने का प्रयास किया। मानवीय विकास के वर्तमान दौर की उसने पहली बार परिस्थितिगत तात्विक व्याख्या की और लगभग उसे कार्ल मार्क्स से मिलती-जुलती शब्दावली में वर्ग समाज कहा। सार्त्रे मनुष्य की वैयक्तिक इच्छाओं को ही अस्तित्व का केन्द्रीय बिन्दु मानता है तथा वर्तमान विघटनकारी परिस्थितियों के लिए औद्योगिक सभ्यता को उत्तरदायी ठहराता है।

वास्तव में अस्तित्ववाद पिछली दो शताब्दियों के 125 वर्षों में जिस तरह के परस्पर विरोधी विचारों को एक साथ मिला-जुलाकर एक बिन्दु पर केन्द्रित करता रहा है कि मानवीय अस्तित्व संकट के दौर से गुजर रहा है और मनुष्य के लिए अपने अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न बन गया है। वह सभी दार्शनिकों की प्रवृतियों का प्रस्थान बिन्दु रहा है। मानवीय अस्तित्व के प्रारूप के बारे में अस्तित्वाद की धारणा अभी स्पष्ट नहीं है बल्कि स्वतंत्रता तथा परिस्थितियों की व्याख्या इसके दो मुद्दे हैं, जहां से सब कुछ नियंत्रित होता है। अस्तित्व की निरर्थकता तीसरा बिन्दु है जहां सभी विचारक सहमत होते हैं और स्वतंत्रता को चरितार्थ करने के प्रश्न पर पुनः गतिरोध उत्पन्न होता है।

13.2 उद्देश्य (Objectives)

1. अस्तित्ववाद और शिक्षा के संबंध में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. अस्तित्ववाद का अर्थ, परिभाषाएं और विशेषताओं के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. अस्तित्ववादी शिक्षक, विद्यार्थी व शिक्षण विधि के बारे में जान सकेंगे।
5. अस्तित्ववाद और मानव जीवन का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

13.3 अस्तित्ववाद और शिक्षा (Existentialism and Education)

प्राचीन काल से आज तक दर्शन शास्त्र में सब कहीं अस्तित्व की समस्याओं पर विचार किया जाता रहा है। प्राचीन उपनिषदों में यह समस्या थी कि मनुष्य में वह तत्व क्या है जिसे उसका सच्चा अस्तित्व माना जा सकता है। पूर्व और पश्चिम में सब कहीं दार्शनिकगण अस्तित्व की प्रकृति के विषय में विचार करते रहे हैं। संक्षेप में, संसार में कोई भी दर्शन ऐसा नहीं है जो किसी न किसी अर्थो में अस्तित्ववादी न कहा जा सकता हो। तब फिर समकालीन दर्शन में अस्तित्ववादी दार्शनिक सम्प्रदाय की विशेषता क्या है? इसकी विशेषता यह है कि यह दार्शनिक समस्याओं में सत् (Being) से अधिक सम्भूति (Becoming) पर, सामान्य (Universal) से अधिक विशेष (Particulars) पर और तत्व (Essence) से अधिक अस्तित्व (Existence) पर जोर देता है। कीर्केगार्ड के शब्दों में, ''अस्तित्ववादी की मुख्य समस्या यह है कि मैं ईसाई किस प्रकार बनूंगा।'' नास्तिकवादी यहां पर ईसाई शब्द के स्थान पर प्रमाणिक सत् (Authentic Being) शब्द का प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार अस्तित्ववादियों ने ज्ञान (knowledge) और व्याख्या (Explaining) के स्थान पर क्रिया (Action) और चुनाव (Choice) पर जोर दिया है, क्या (What) के स्थान पर कैसे (How) को महत्वपूर्ण माना है।

अस्तित्ववादी दर्शन का प्राचीन यूनानी दर्शन से संबंध बतलाते हुए सुकरात को अस्तित्ववादी माना गया है। डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में ''अस्तित्ववाद एक प्राचीन प्रणाली के लिये एक नया नाम है।'' इसी बात को दूसरी तरह से रखते हुये ब्लैकहम ने लिखा है, ''यह प्रोटेस्टेंट अथवा स्टोइक प्रकार के व्यक्तिवाद की आधुनिक शब्दों में पुनः स्थापना प्रतीत होता है, जो कि पुनर्जागरण युग के अनुभववादी व्यक्तिवाद अथवा आधुनिक उदारतावाद अथवा एपीक्यूरस के व्यक्तिवाद और रोम या मास्को तथा प्लेटो की सार्वभौम व्यवस्था के विरूद्ध लड़ा हुआ दिखलाई पड़ता है। यह आदर्शो के संघर्ष में मानव अनुभव के आवश्यक सोपानों में से एक की समकालीन पुनर्जागृति है, जिसे इतिहास ने अभी समाप्त नहीं किया है।

13.3.1 अस्तित्ववाद का अर्थ Meaning of Existentialism

अस्तित्ववाद आधुनिक समाज तथा परम्परागत दर्शन की कुछ विशेषताओं के विरूद्ध एक आन्दोलन है। यह अंशतः ग्रीक की विवेकशीलता या शास्त्रीय-दर्शन के विरोध स्वरूप प्रकट हुआ।

अस्तित्ववाद प्रकृति तथा तर्क के विरूद्ध वैयक्तिक की संज्ञा से प्रकट हुआ। यह विचार आधुनिक या प्रौद्योगिक युग की अवैयक्तिक प्रवृत्ति के विरोध स्वरूप प्रकट हुआ। औद्योगिक समाज व्यक्ति को मशीन के अधीन रखने पर बल देता है। इस कारण यह खतरा उत्पन्न हो गया है कि मानव एक यंत्र या वस्तु बनता जा रहा है। इस प्रकृति के विरोधस्वरूप यह विचार उभरा है। यह वैज्ञानिकवाद तथा प्रत्यक्षवाद की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप विकसित हुआ। वैज्ञानिकवाद तथा प्रत्यक्षवाद मानव की बाह्य शक्ति पर बल देते हैं तथा उसे (मानव को) भौतिक क्रियाओं के अंग के रूप में संचालित करता है। इसका अधिनायकवादी प्रवृत्ति के विरोध में विकास हुआ। अतः अस्तित्ववाद एक प्रतिक्रियात्मक सिद्धान्त के रूप में उभरा है। व्यक्ति की विषम परिस्थितियों में उत्पन्न वेदनाओं का अनुभव कर उसे स्वर देने के लिए यह विचार एक समयोचित प्रयास है, प्रभुत्व और बाह्य दर्शनों का स्वतंत्र के नाम पर विरोध किया तथा स्पष्ट किया कि व्यक्ति अपने राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि संबंधों में स्वतंत्र किन्तु दायित्वयुक्त है। यह विरोध चिन्तन या तर्क बुद्धि की खोज नहीं बल्कि भोगे हुए सत्य का परिणाम है, जिसने उनके जीवन को झकझोर दिया।

आधुनिक युग में अभ्युदय के साथ ही धर्म ने विज्ञान को अपनी ज्योतिशलाका पकड़ा दी और विज्ञान ने औद्योगिक तथा प्रौद्योगिक प्रगति के क्रम में व्यक्ति को व्यक्ति नहीं रहने दिया। उसके अस्तित्व का अर्थ उसी की आंखों में समाप्त कर दिया। इसके साथ ही हीगल के 'विश्व मन' तथा मार्क्स के 'साम्यवाद' ने भी व्यक्ति की विशिष्टता और स्वतंत्रता को कोई महत्व नहीं दिया। इन सबके साथ युक्त होकर विश्वयुद्धों ने मूल्यों का विघटन किया। परम्परागत मूल्यों की मृत्यु ने धर्म, नैतिकता, विज्ञान, समानता भ्रातृत्व के सिद्धान्तों को धूल में मिला दिया। इस प्रकार अस्तित्ववाद शास्त्रीय तथा परम्परागत दर्शन पर एक प्रहार के रूप में विकसित हुआ, जिसने जीवन से असम्बद्ध दर्शन को समाप्त कर दिया।वस्तुतः अस्तित्ववाद मानवीय जीवन और नियति का यथार्थ परक विश्लेषण है। सोरेन किर्कगार्ड के अनुसार, अस्तित्व शब्द का उपयोग इस दावे पर बल देने के लिए किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति या इकाई अपने आप में स्वयं जैसी या अद्भुत है तथा आध्यात्मिक या वैज्ञानिक प्रक्रिया के संदर्भ में अविश्लेषणीय है। यह वह अस्तित्वमय है, जो स्वयं चुनाव करता है एवं स्वयं चिन्तन करता है। उसका भविषय कुछ अंशों में उसके स्वतंत्र चुनाव पर निर्भर है। अतः इस संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

13.3.2 अस्तित्ववाद की परिभाषाएं Definitions of Existentialism

अस्तित्ववाद की निम्न परिभाषाएं हैं:-

"जीन पॉल सार्त्रे लिखते हैं कि- ''अस्तित्ववाद अन्य कुछ नहीं वरन् एक सुसंयोजित निरीश्वरवादी स्थिति से सभी निष्कर्षो को उत्पन्न करने का प्रयास है।''

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका के अनुसार- ''अस्तित्ववादी दर्शन चिन्तन का वह मार्ग है जो सम्पूर्ण पार्थिव ज्ञान का उपयोग करता है, उसे इस क्रम में परिवर्तित करता है, जिससे मानव पुनः स्वयं जैसा बन सके।''

डॉ. राधाकृष्णन के शब्दों में- ''अस्तित्ववाद एक प्राचीन प्रणाली के लिए एक नया नाम है।''

13.3.3 अस्तित्ववाद की विशेषताएं Characteristics of Existentialism

अस्तित्ववाद की निम्न विशेषताएं हैं:-

(1) आदर्शवाद की आलोचना Criticism of Idealism - अस्तित्ववाद आदर्शवाद के विरूद्ध विद्रोह के रूप में खड़ा हुआ है। अस्तु, अस्तित्ववादी दार्शनिक आदर्शवाद अथवा प्रत्ययवाद के सिद्धान्त का खण्डन करते हैं। प्रत्ययवाद के अनुसार मानव व्यक्तित्व किसी सार्वभौम सारतत्व या आध्यात्मिक तत्व की अभिव्यक्ति है। इसके बिल्कुल विरूद्ध अस्तित्ववादियों के अनुसार मानव अस्तित्व सार्वभौम सार तत्व (Universal Essence) के पहले होताहै। प्रत्ययवाद के अनुसार मानव व्यक्तित्व की स्वतंत्रता सार्वभौम आध्यात्मिक तत्व की स्वतंत्रता पर निर्भर है।

(2) अन्तर्द्वन्द की समस्या पर जोर Emphasis on problem of Inner conflict- आज के जटिल संसार में सबसे बड़ी समस्या मनुष्य को किसी सिद्धान्त का अनुयायी बनाना नहीं बल्कि उसे उसकी स्वतंत्रता का बोध कराना है। ऐसा होने से आदान प्रदान सहज हो जाता है। संसार में शान्ति केवल शान्ति-शान्ति चिल्लाने से नहीं मिलेगी। जब तक मानव वस्तु से भी निम्न बना रहेगा तब तक शान्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार अन्य दर्शनों की तुलना में अस्तित्ववादी दर्शन अन्र्द्वन्द की समस्याओं पर विशेष जोर देता है। परम्परागत दर्शन इन समस्याओं को महत्वपूर्ण नहीं मानते। मानव की जगत से पृथकता और स्वयं अपने से पृथकता से ही दर्शन प्रारम्भ होता है।

(3) प्रकृतिवाद की आलोचना Criticism of Naturalism- अस्तित्ववादी दार्शनिक एक ओर आदर्शवाद और दूसरी ओर उसके विपरीत दर्शन प्रकृतिवाद की भी आलोचना करते हैं। प्रकृतिवादी दर्शन के अनुसार-मानव व्यक्तित्व प्राकृतिक नियमों से नियंत्रित होता है और वह किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं रखता। दूसरी ओर अस्तित्ववादियों ने मानव को प्रकृति के द्वारा नियंत्रित न मानकर व्यक्तित्व की स्वतंत्रता की स्थापना की है।

(4) निराशा से उत्पत्ति Born from Despair - हमारे चारों ओर का जगत अनेक संघर्षो और समस्याओं से भरा हुआ है, किन्तु सामान्य समझदार व्यक्ति इनसे समझौता करके जीवन जीता रहता है। अस्तित्ववादी को यह जीवन असंभव लगता है और वह अपने को असहाय महसूस करता है। वह अत्यधिक चिन्ता से व्याप्त हो जाता है। उसे भय लगता है कि वह कर्तव्यों को पूरा नहीं कर सकेगा। उसे प्रतीत होता है कि वह चारों ओर के जगत को समझ नहीं पा रहा है। वह समय की आवश्यकताओं को पूरा करने में अपने को असमर्थ पाता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कुछ लोग इसे असामान्य संवेदनशीलता कह सकते हैं।

(5) मानव व्यक्तित्व का महत्व Value of Human Personality- अस्तित्ववादी दार्शनिक मानव व्यक्तित्व को अत्यधिक महत्वपूर्ण ठहराते हैं और इसके सामने ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, जगत किसी को भी इतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं मानते। मानव व्यक्तित्व का मूल तत्व स्वतंत्रता है। समाज व्यक्ति के लिए है न कि व्यक्ति समाज के लिए है। यदि सामाजिक नियम व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक हों तो व्यक्ति को इन नियमों का विरोध करने का अधिकार है। इस धारणा को लेकर अस्तित्ववादी साहित्यकारों और कलाकारों ने अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता को बनाये रखने के लिए सब कहीं भारी संघर्ष किया है और कर रहे हैं। वे इस स्वतंत्रता को अत्यधिक पवित्र मानते हैं और उसे किसी भी कीमत पर बेचने के लिए तैयार नहीं हैं। विभिन्न अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने इस स्वतंत्रता की अलग-अलग प्रकार से व्याख्या की है।

(6) वैज्ञानिक दर्शन की आलोचना Criticism of Scientific Philosophy- प्रत्ययवाद और प्रकृतिवाद के अतिरिक्त अस्तित्ववादी दार्शनिक वैज्ञानिक दर्शन के आलोचक हैं। वास्तव में इन तीनों प्रकार के दर्शनों के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में ही अस्तित्ववाद का जन्म हुआ है। पाश्चात्य समाजों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ-साथ नगरीयता बढ़ी। बड़े-बड़े नगरों में मानव का अस्तित्व

भीड़ में खो गया। विशालकाय मशीनों के सामने उसका महत्व नगण्य हो गया। कारखाने का एक पुर्जा बनकर वह अपने अस्तित्व को भूल गया। यांत्रिक सभ्यता में उसके मूल्य खो गये। पग-पग पर वह यंत्रों और मशीनों का गुलाम बन गया। अस्तित्ववाद मानव के इसी अमानवीयकरण के विरूद्ध एक विद्रोह है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास का जो भयंकर रूप सामने आया उसे देखकर साहित्यकारों और कलाकारों ने मानव समस्याओं की ओर ध्यान देना आवश्यक समझा और मानव अस्तित्व के महत्व को फिर से स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव की। अस्तु, साहित्य और कला के क्षेत्र में और क्रमशः धर्म व दर्शन के क्षेत्र में भी अस्तित्ववादी चिन्तन बढ़ने लगा।

(7) दार्शनिक व्यवस्था की रचना नहीं No Construction of Philosophical system- प्राचीनकाल से दार्शनिकगण ईश्वर, आत्मा और जगत, देश और काल, सृष्टि और विकास इत्यादि समस्याओं पर विचार करते रहे हैं। अस्तित्ववादी की समस्या व्यक्तिगत, वर्तमान और व्यावहारिक है। वह इन परम्परागत दार्शनिक प्रश्नों पर विचार नहीं करता। इसलिए वह दार्शनिक सिद्धान्त रचना को महत्व नहीं देता।

(8) आत्मनिष्ठता का महत्व Importance of Subjectivity - अस्तित्ववादी दार्शनिक कीर्केगार्ड ने कहा था कि सत्य आत्मनिष्ठता है। जबकि विज्ञान से प्रभावित दार्शनिकों ने आत्मनिष्ठता और व्यक्तिगत अनुभव को विशेष महत्वपूर्ण माना है। अस्तित्ववादी दर्शन मानव को उसके व्यक्तित्व के विकास में सहायता करता है और उसके प्रत्यक्ष अनुभवों जैसे-भय, आनन्द, घुटन इत्यादि की व्याख्या करके उनमें अन्तर्निहित सत् तत्व के दर्शन कराता है। प्रत्येक व्यक्ति आत्मनिष्ठ होकर ही अपने अन्दर के सम् (Being) को जान सकता है। यह एक रचनात्मक अनुभव है। इसी से मानव मूल्यों का सृजन होता है। यह एकाकीपन (Loneliness) की स्थिति है, जिसमें व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से केवल अपने अस्तित्व केसामने खड़ा होता है।

(9) व्यक्ति और विश्व के संबंध की समस्या पर जोर Emphasis on the Problem of the individual and Word - अन्त में अस्तित्ववादी दर्शन के अनुसार एक प्रमुख समस्या व्यक्ति और विश्व का संबंध है। इसकी जो परम्परागत व्याख्यायें की गयी हैं, उनसे यह समस्या हल नहीं होती। यदि निरपेक्ष सार्वभौम तत्व को हेगेल के समान मान लिया जाये तो व्यक्ति में किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं रहती। अस्तु, अस्तित्ववादी ऐसे दर्शनों के विरूद्ध हैं क्योकि इस प्रकार के दर्शनों के रहते हुए

व्यक्ति का कोई नैतिक उत्तरदायित्व नहीं बनता। अस्तित्ववादियों के अनुसार मानव को किसी भी नियम के अधीन नहीं किया जा सकता है,चाहे वह विश्व का नियम हो, प्रकृति का नियम हो, राज्य का नियम अथवा समाज का नियम। नियम कार्य की प्रमाणिकता नहीं दिखलाता, उल्टे कार्य ही नियम को प्रमाणिक बनाता है।

अस्तित्ववादी दर्शन किसी एक विचारक की सृष्टि नहीं है। यह दर्शन अनेक दार्शनिकों के लेखों में बिखरा हुआ है जिनमें प्रमुख हैं-नीत्शे (Nietzshe) सोरेन कीकेगार्ड (S.Kierkegaard), गैब्रियल मार्सेल (G.Marchel), मार्टिन हाईडैगर (M.Heideggar) ज्यां पॉल सार्त्र (J.P.Sartre), कार्ल जास्पर्स ;(K.Jaspers), एबगनामो (Abbagnamo), बरदाइयेव (Barduaev), कामू (Camus), इत्यादि। इन दार्शनिकों ने अस्तित्व के विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार के सिद्धान्त उपस्थित किये हैं। सार्त्र अपने दर्शन को विशेष रूप से अस्तित्ववादी कहता है जबकि मार्सेल अपने को अस्तित्ववादी मानने के लिए भी तैयार नहीं है। कीर्केगार्ड और मार्सेल दोनों आत्मवादी विचार हैं। कुछ अस्तित्ववादी आस्तिक हैं और कुछ नास्तिक हैं। जास्पर्स और सार्त्र के चिन्तन में दर्शन का मनुष्य से उतना संबंध नहीं है, जितना कि कीर्केगार्ड के दर्शन में दिखलाई पड़ता है। कीर्केगार्ड, जास्पर्स और मार्सेल ईश्वरवादी हैं। दूसरी ओर नीत्शे हाईडेगर और सार्त्र नास्तिक हैं।

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress -

प्र. 1. 'अस्तित्ववाद एक प्राचीन प्रणाली के लिए नया नाम है', यह परिभाषा है-

(अ) डॉ. राधाकृष्णन् (ब) कीर्केगार्ड (स) ब्लैकहम (द) रॉस

प्र. 2. कौन मानव को प्रकृति के द्वारा नियंत्रित न मानकर व्यक्ति की स्वतंत्रता की स्वतंत्रता पर बल देता है-

(अ)प्रकृतिवादी (ब) अस्तित्ववादी (स) आदर्शवादी (द) प्रत्ययवादी

प्र. 3. ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, जगत से भी ऊपर मानव को महत्व देते हैं-

(अ) आदर्शवादी (ब) प्रकृतिवादी (स) अस्तित्ववादी (द) रॉस

प्र. 4. 'प्रत्येक व्यक्ति आत्मनिष्ठ होकर ही अपने अन्दर के सम् (Being) को जान सकता है, यह रचनात्मक अनुभव है।' यह परिभाषा है-

(अ) आदर्शवाद (ब) प्रकृतिवाद (स) प्रत्ययवाद (द)अस्तित्ववाद

प्र. 5. अस्तित्ववाद आदर्शवाद के विरूद्ध विद्रोह के रूप में खड़ा हुआ है-

(अ) सत्य (ब) असत्य

भाग-दो

13.4 अस्तित्ववादी शिक्षा(Existentialism Education)

अस्तित्ववादी शिक्षा के संबंध में पूर्ण आस्था तथा निश्चय के साथ यह नहीं कहा जा सकता है कि अमुक अस्तित्ववादी ने शिक्षा के संबंध में निश्चित ग्रन्थ या लेख में शैक्षिक विचारों को प्रकट किया है। बटलर ने कहा है कि ''अस्तित्ववादी दर्शन ने शिक्षा में कोई विशेष रूचि प्रकट नहीं की है।''

अतः जिन शैक्षिक निहितार्थो को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, वे अस्तित्ववादी विचारकों द्वारा निष्कर्षित नहीं किये गये हैं।

13.4.1 अस्तित्ववादी शिक्षा का अर्थ Meaning of Existentialism Education

अस्तित्ववादी विचारकों का मत है कि हम भौतिक वास्तविकताओं या सत्ताओं के जगत में निवास करते हैं तथा हमने इन सत्ताओं के विषय में उपयोगी तथा वैज्ञानिक ज्ञान का विकास कर लिया है, लेकिन हमारे जीवन में सबसे महत्वपूर्ण पक्ष वैयक्तिक या अवैज्ञानिक है। इसलिए अस्तित्ववादी इस बात पर बल देते हैं कि सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रमुख ज्ञान मानवीय दशाओं या चयनों से संबंधित है।

इस विचार के अनुसार शिक्षा वह प्रक्रिया है जो स्वतंत्रता के चयन के लिए चेतना विकसित करती है। शिक्षा हममें स्व-चेतना की भावना का निर्माण करती है। इसी के कारण हम मानव प्राणी कहने के अधिकारी हो जाते हैं।

13.4.2 अस्तित्ववादी मनोविज्ञान Existentialism Psychology

अस्तित्ववादी शैक्षिक चिन्तन, सीखने वाले के माध्यमिक तथा रजस्वला के उत्तरोत्तर काल पर बल देता है। अस्तित्ववादियों के अनुसार, जब बालक का जन्म होता है तब बालक के अस्तित्व को जन्म मिलता है। इसके बाद पूर्व अस्तित्व का पक्ष आता है। इस समय बालक अपने 'स्व' के प्रति चेतनशील नहीं होता है। इसके बाद 'अस्तित्ववादी आन्दोलन' आरम्भ होता है। इस समय व्यक्ति आकस्मिक रूप से अपने अस्तित्व के बारे में सचेत हो जाता है तथा यह भावना भी विकसित होती है कि पुनः अपनी बाल्यावस्था में जो कि 'स्व' की अज्ञानता का समय होता है। इस भावना को 'Pre-Existentialism Nostaligia' कहा जाता है। व्यक्ति इस भावना का बहादुरी के साथ सामना करता है। मनोवैज्ञानिक विचारधारा को निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट किया जा रहा है-

अ	ब	स
Pre-Existentialism Phase		Existentialism Phase

(अ) जन्म (बालक का जन्म)

(ब) वह स्थिति जिसमें बाल्यवस्था की स्थिति को वापस नहीं लाया जा सकता है।

(स) मृत्यु

13.4.3 अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य Objectives of Existentialism Education

अस्तित्ववाद का विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति अद्भुत या अनोखा है। अतः शिक्षा को व्यक्ति में इस अनोखेपन को विकसित करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शिक्षा वैयक्तिक भेदों को संतुष्ट करे। शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को अपने अद्भुत गुणों को विकसित करने के योग्य बनाना चाहिए। अर्थात् असमनुरूपता शिक्षा का एक वांछनीय गुण है।

सार्त्रे की विचारधारा के अनुसार मानव अनुभूति करने में सक्षम है। वह जो बनना चाहता है, बनने के लिए स्वतंत्र है। शिक्षा का उद्देश्य उसे अपने मूल्यों के चयन में सक्षम बनाना होना चाहिए। आज की शिक्षा में निम्न उद्देश्यों को सम्मिलित करके शिक्षा को एक नई दिशा प्रदान की जा सकती है-

(1) स्वाभाविक वातावरण में शिक्षा देना।

(2) प्रामाणिक अस्तित्व का निर्माण करना।

(3) स्वानुभूतियों के अनुकूल व्यक्तित्व का विकास करना।

(4) स्वतंत्रतापूर्वक मूल्यों के चयन के लिए प्रेरित करना।

(5) उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना।

(6) व्यक्ति को जीवन के लिए तैयार करना।

(7) स्वतंत्र एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना।

(8) वैयक्तिता का विकास करना।

13.4.4 अस्तित्ववाद व पाठ्यक्रम Existentialism and Curriculum

अस्तित्ववादी पाठ्यक्रम की प्रस्तावना में आस्था नहीं रखते हैं। छात्र स्वयं अपने पाठ्यक्रम का चयन अपनी आवश्यकता, योग्यता तथा जीवन की परिस्थितियों के अनुकूल करे। यद्यपि वे ब्रह्माण्ड के विषय में मूलभूत ज्ञान प्रदान करने के पक्ष में नहीं हैं, फिर भी वे पाठ्यक्रम को उन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्य सामूहिक विषयों की अपेक्षा मानवीय अध्ययनों पर अधिक बल देते हैं। इन मानवीय अध्ययनों के माध्यम से मानव दुःख, चिन्ता तथा मृत्यु आदि के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है। सार्त्रे की विचारधारानुसार मानविकी एवं सामाजिक विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाए क्योंकि ये विषय व्यक्ति के रागात्मक पक्ष का विकास करके उसे इस जगत की वास्तविकताओं यथा-पीड़ा, व्यथा, प्रेम, घृणा, पाप, मृत्यु आदि से परिचित कराते हैं। इस प्रकार व्यक्ति जीवन में आने वाले सुख-दुःख के लिए तैयार हो जाता है।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

प्र. 1. अस्तित्ववादी दर्शन ने शिक्षा में कोई विशेष रूचि प्रकट नहीं की है-

(अ)बटलर (ब) सार्त्रे (स) ब्लैकहम (द) रॉस

प्र. 2. ''शिक्षा हममें स्व-चेतना की भावना का निमार्ण करती है। इसी के कारण हम मानव प्राणी कहने के अधिकारी हो जाते हैं।'' यह विचारधारा है-

(अ) अस्तित्ववाद (ब) प्रयोजनवाद (स) आदर्शवाद (द) प्रयोगात्मकवाद

प्र. 3. स्वतंत्र एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना किसका उद्देश्य है-

(अ) आदर्शवाद (ब) अस्तित्ववाद (स) प्रयोजनवाद (द) प्रयोगवाद

प्र. 4. 'छात्र स्वयं अपने पाठ्यक्रम का चयन अपनी आवश्यकता, योग्यता तथा जीवन की परिस्थितियों के अनुकूल करें।'' यह विचारधारा है-

(अ)प्रयोजनवाद (ब) प्रकृतिवाद (स) आदर्शवाद (द) अस्तित्ववाद

प्र. 5. पीड़ा, व्यथा, प्रेम, घृणा, पाप, मृत्यु आदि वास्तविकताओं से परिचय कराता है-

(अ) अस्तित्ववाद (ब) प्रयोजनवाद (स) प्रकृतिवाद (द) आदर्शवाद

भाग-तीन

13.5 अस्तित्ववाद व शिक्षक(Existentialism and Teachers)

अस्तित्ववादी विचारधारा में शिक्षक को आरोहण करने वाले व्यक्ति के रूप में नहीं देखा गया है। उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह विषय सामग्री को इस प्रकार प्रस्तुत करे कि बालक उसमें निहित सत्य को स्वतंत्र साहचर्य द्वारा खोज सके। शिक्षक बालक का मार्गदर्शन अवश्य करें, परन्तु छात्रों की क्षमताओं व योग्यताओं के अनुरूप प्रत्येक बालक का अपना 'स्व' होता है। शारीरिक, मानसिक तथा आंतरिकता से जो कुछ वह है, वही उसका व्यक्तित्व है। बालक का 'स्व' कुण्ठित न

होने पाये। वह किसी बात को इसलिए स्वीकार न कर ले कि यह उसको स्वीकार करनी ही है। वरन् वह प्रत्येक बात का परीक्षण, आलोचना एवं जांच करके ही स्वीकार करे। शिक्षक छात्रों को अपनी आंतरिक भावनाओं के विषय में बातचीत करने के लिए प्रोत्साहित करे जिससे वे अपनी सत्ता को स्पष्ट कर सकें।

13.5.1 अस्तित्ववाद व विद्यार्थी Existentialism and Students -

अस्तित्ववादी सीखने वाले व्यक्ति को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। ये सुव्यवस्थित व्यक्ति या सामंजस्यपूर्ण व्यक्तित्व पर बल नहीं देते हैं बल्कि व्यक्ति को अनिर्मित मानते हैं। वह स्वयं को निर्मित करने वाला है। वह स्वतंत्र रहकर अपने व्यक्तित्व को जीवन्त बनाना चाहता है। इस कारण सार्त्रे मनुष्य के उत्तरदायित्व को अधिक महत्वपूर्ण बनाता है। जिससे वह अपने मूल्यो को निर्मित कर सके। वस्तुतः अस्तित्ववादी शिक्षक-विद्यार्थी के बीच 'मैं-तू' के संबंध को स्थापित करने पर बल देता है।

13.5.2 अस्तित्ववाद व शिक्षण विधि Existentialism and Teaching Method

अस्तित्ववादी सुकराती उपागम का समर्थन करता है। वे इसी कारण 'शिक्षक-शिष्य' के मध्य मैं-तू' के संबंध स्थापित करने पर बल देते हैं। इस कारण वे विद्यालयी शिक्षा की अपेक्षा पारिवारिक शिक्षा को उपयुक्त मानते हैं। डब्ल्यू. आर.निबलैट का मत है कि अस्तित्ववादी समय-तालिका की बजाए पारस्परिक संपर्क पर अधिक बल देते हैं। सृजनात्मकता के लिए शिक्षा पर अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने अधिक बल दिया है। इस कारण वे शिक्षण में व्यक्तिगत अवधान पर अधिक बल देते हैं।

सार्त्रे के अनुसार सच्चा ज्ञान वही है जो स्वयं मनुष्य द्वारा अर्जित किया जाये। अतः अस्तित्ववादी शिक्षा में 'करके सीखने के' सिद्धान्त पर बल दिया जाता है।

13.5.3 अस्तित्ववादी विद्यालय Existentialism Schools

अस्तित्ववादियों के अनुसार विद्यालय वह स्थान है जहां शिक्षक संवाद तथा विचार-विमर्श कर सकता है। यह विचार-विमर्श चयन तथा जीवन संबंधी मामलों कें संबंध में रहता है। इस स्थान पर विषयों के लिए विचार-विमर्श करने के लिए परिस्थितियों को निर्मित किया जा सकता है। विद्यालय

में शिक्षक तथा शिक्षार्थी दोनों प्रश्न पूछने, उत्तर सुझाने तथा संवादों में संलग्न रहने के अवसर प्राप्त करते हैं।

13.5.4 अस्तित्ववाद व अनुशासन Existentialism and Discipline -

सार्त्रे किसी भी आचार-संहिता को स्वीकार नहीं करता। वह बालक को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करता है। ऐसी परिस्थिति में यह संभव है कि असंख्य विद्यार्थी मनमानी करें और समाज में अव्यवस्था फैल जाये। सार्त्रे के अनुसार वैयक्तिक चेतना द्वारा इस समस्या को आसानी से सुलझाया जा सकता है। स्वतंत्र चयन से वैयक्तिक निर्वाह की क्षमता उत्पन्न होती है।

व्यक्ति जो कुछ चयन करेगा, शुभ होगा। इसी प्रकार अशुभ का चयन भी हो जाता है तो उसका भोक्ता वह स्वयं है। इस प्रकार चयन से वैयक्तिक दायित्व उत्पन्न होता है। इस उत्तरदायित्व भाव तथा स्वतंत्रता से परे कोई नैतिक गुण नहीं होता। इससे ही अनुशासन लाया जा सकता है।अस्तित्ववाद ऐसा दर्शन है जिसने क्रान्तिकारी विचारों से मानव के अस्तित्व को मिटते देखा और पुनः मानव प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए उसके न हो या उसे शिक्षित न किया जाये। आज के युग में मनुष्य के अस्तित्व की प्राथमिकता को बनाए रखते हुए अतिमानव के व्यक्तित्व की कल्पना उभारने का प्रयास अस्तित्ववाद ने किया है।

अपनी उन्नति जानिए Check your progress -

प्र. 1. शिक्षक-विद्यार्थी के बीच 'मैं-तू' के संबंध को स्थापित करने पर बल देता है-

(अ) प्रकृतिवादी (ब) प्रयोजनवादी (स) अस्तित्ववादी (द) आदर्शवादी

प्र. 2. शिक्षण विधि में समय तालिका की बजाए पारस्परिक समर्पण पर अधिक बल देते हैं-

(अ) अस्तित्ववादी (ब) प्रकृतिवादी (स) प्रयोजनवादी (द) आदर्शवादी

प्र. 3. करके सीखने के सिद्धान्त पर बल देते हैं-

(अ) प्रकृतिवादी (ब) अस्तित्ववादी (स) प्रयोजनवादी (द) आदर्शवादी

प्र. 4. वैयक्तिकता का विकास संभव है-

(अ) प्रकृतिवादियों द्वारा (ब) आदर्शवादियों द्वारा

(स)प्रयोजनवादियों द्वारा (द) अस्तित्ववादियों द्वारा

13.6 सारांश (Summary)

अस्तित्ववाद का विकास समकालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हुआ, जिनमें मानव ने अपनी आत्मा खो दी है। इस दर्शन ने कला और साहित्य पर व्यापक प्रभाव डाला है। राजनीति में वह युद्ध के विरूद्ध है। उसके अनुयायी सक्रिय रूप से युद्ध का विरोध करते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में अस्तित्ववाद का योगदान अग्रलिखित हैं-

(1) सम्पूर्ण विकास - अस्तित्ववादियों का लक्ष्य शिक्षा के द्वारा बालक के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास है। शिक्षा का सरोकार सम्पूर्ण मनुष्य से है। उसका लक्ष्य चरित्र निर्माण और आत्म-साक्षात्कार है।

(2) आत्मगत ज्ञान - विज्ञान के वर्तमान युग में वस्तुगत ज्ञान पर इतना अधिक जोर दिया जा रहा है कि आत्मगत शब्द अयथार्थ, व्यर्थ, अज्ञानपूर्ण और अप्रांसगिक के लिए प्रयोग किया जाता है। अस्तित्ववादियों ने यह दिखलाया कि आत्मगत ज्ञान वस्तुगत ज्ञान से भी अधिक महत्वपूर्ण उनका कहना है कि सत्य आत्मगत है। वह मानव मूल्य है और मूल्य तथ्य नहीं होते। मूल्यों में आस्था कम होती है। अस्तु, विज्ञान और गणित का शिक्षा के साथ-साथ शिक्षा के प्रत्येक स्तर पाठ्यक्रम में मानविकी अध्ययनों, कला और साहित्य को उपयुक्त स्थान दिया जाना चाहिए। आधुनिक मनुष्य की अनेक परेशानियां अत्यधिक वस्तुगत दृष्टिकोण के कारण हैं। इसके लिए अस्तित्ववादी विचारों के प्रकाश में आत्मगत सुधार जरूरी है।

(3) परिवेश का महत्व - वर्तमान औद्योगिक, आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक परिवेश मूल्यहीन हैं। अस्तु, वह सब प्रकार की अस्तव्यस्तता, भ्रष्टाचार, तनाव और संघर्ष बढ़ाता है। अस्तित्ववादियों

ने एक ऐसे परिवेश जुटाने की बात की, जिसमें आत्म-विकास और आत्म-चेतना संभव हुए। विद्यालय में इस परिवेश के लिए मानविकी अध्ययनों, कला और साहित्य की शिक्षा दी जानी चाहिए। इनसे शिक्षार्थी में वैयक्तिकता का विकास होगा और वह सामाजिक पहिये का एक पुर्जा मात्र बनकर नहीं रहेगा। दूसरी ओर वह आत्म-चेतन और संवेदनशील व्यक्ति बनेगा।

अस्तित्ववाद के उपरोक्त योगदान के बावजूद एक जीवन दर्शन के रूप में उसने संतुलित विचार उपस्थित नहीं किये। उसकी प्रतिभा के बावजूद उसमें अनेक मानसिक रोग के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। आधुनिक अस्तित्ववाद के जनक कीर्के-गार्ड के दर्शन में अनेक असामान्य तत्व हैं। वास्तव में यदि सत्य वस्तुगत नहीं है तो आत्मगत भी नहीं है। बुद्धिवाद के विरूद्ध अस्तित्ववाद का विद्रोह महत्वपूर्ण होते हुए भी अत्यधिक सीमित है। नैतिक और धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में अस्तित्ववादी प्रणालियां अधिक उपयोगी होते हुए भी वे विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में उपयोगी नहीं हैं। संक्षेप में, शिक्षा के क्षेत्र में अस्तित्ववादी शिक्षा की सीमाएं निम्नलिखित हैं:-

(1) शिक्षा का अस्तित्ववादी लक्ष्य अत्यधिक एकांगी है।

(2) मानविकी अध्ययनों, कला और साहित्य पर अत्यधिक जोर देना उतना ही एकांकी है, जितना कि विज्ञान कीशिक्षा पर अत्यधिक जोर देना।

(3) आत्म-साक्षात्कार के जोश में अस्तित्ववादी यह भूल जाते हैं कि जीविकोपार्जन भी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है। इस दृष्टि से शिक्षा का उपयोगितावादी लक्ष्य भी महत्वपूर्ण है।

(4) अस्तित्ववादी अध्यापन प्रणाली नैतिक और धार्मिक शिक्षा में महत्वपूर्ण हो सकती है, किन्तु वह विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अध्यापन में महत्वपूर्ण नहीं है।

शिक्षा के क्षेत्र में अस्तित्ववाद के उपयोग और सीमाओं के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वह शिक्षा के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण कमियों को पूरा करता है।

13.7 शब्दावली/कठिन शब्द (Difficult Words)

अस्तित्ववाद - अस्तित्ववाद आधुनिक समाज तथा परम्परागत दर्शन की कुछ विशेषताओं के विरूद्ध एक आन्दोलन है। यह अंशतः ग्रीक की विवेकशीलता या शास्त्रीय-दर्शन के विरोध स्वरूप प्रकट हुआ।

प्रकृतिवाद - प्रकृतिवादी दर्शन के अनुसार मानव व्यक्तिगत प्राकृतिक नियमों से नियंत्रित होता है और वह किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं रखता। दूसरी ओर अस्तित्ववादियों ने मानव को प्रकृति के द्वारा नियंत्रित न मानकर व्यक्तित्व की स्वतंत्रता की स्थापना की है।

अस्तित्ववादी अनुशासन - सार्त्रे किसी भी आचार संहिता को स्वीकार नहीं करता। वह बालक को पूर्ण स्वतंत्रता देता है। वह जो कुछ चयन करेगा शुभ होगा। इस प्रकार अशुभ का चयन भी हो जाता है तो उसका भोक्ता वह स्वयं है।

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of ExerciseQuestions)

भाग-1

उत्तर 1. (अ) डॉ. राधाकृष्णनउत्तर. 2. (ब) अस्तित्ववाद

उत्तर. 3. (स) अस्तित्ववादउत्तर4. (द)अस्तित्ववाद

उत्तर. 5. (अ) सत्य

भाग-2

उत्तर. 1.(अ) बटलरउत्तर. 2.(अ) अस्तित्ववाद

उत्तर. 3(ब) अस्तित्ववादउत्तर 4 (द) अस्तित्ववाद

उत्तर. 5.(अ) अस्तित्ववाद

भाग-3

उत्तर. 1.(स) अस्तित्ववादउत्तर. 2.(अ) अस्तित्ववाद

उत्तर 3 (ब) अस्तित्ववादउत्तर. 4.(द) अस्तित्ववाद

13.9 सन्दर्भ (Reference)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008).*उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006).*शैक्षिक समाजशास्त्र*.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008).*शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*.नई दिल्ली:रजत प्रकाशन.

13.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ (Useful Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*.आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008).*उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*.मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006).*शैक्षिक समाजशास्त्र*.नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008).*शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*.नई दिल्ली:रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996).*भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा:रतन प्रकाशन मंदिर.

13.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long Answer Type Question)

प्र. 1. अस्तित्ववाद का अर्थ बताते हुए अस्तित्ववाद और शिक्षा में संबंधों को स्पष्ट कीजिए।

प्र. 2. अस्तित्ववाद की विशेषताओं का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्र. 3. अस्तित्ववाद की दो परिभाषाएं दीजिए व अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।

प्र. 4. अस्तित्ववाद में पाठ्यक्रम व शिक्षण विधि की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

प्र. 5.अस्तित्ववादी शिक्षा से आप क्या समझते हैं। अस्तित्ववाद में शिक्षक की भूमिका की स्पष्ट व्याख्या कीजिए।

इकाई 14: गिजुभाई का शिक्षा दर्शन (Education Philosophy of Gijju Bhai)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

14.2 उद्देश्य (Objectives)

भाग-एक Part I

14.3 गिजुभाई का जीवन-वृत्त (Life –Sketch of Gijju Bhai)

14.3.1 गिजुभाई का जीवन दर्शन (Gijju Bhai Philosophy of Life)

14.3.2 गिजुभाई की शैक्षिक गतिविधियां एवं तत्कालीन शैक्षिक दशा

(Activities of Gijju Bhai and Then Educational Condition)

अपनी उन्नति जाँचिए (Check your Progress)

भाग-दो Part II

14.4 गिजुभाई का शिक्षा दर्शन (Education Philosophy of Gijju Bhai)

14.4.1. गिजुभाई के शैक्षिक सिद्धांत (Educational Principles of Gijju Bhai)

14.4.2 शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Education)

14.4.3 पाठ्यक्रम (Curriculum)

14.4.4 शिक्षण-पद्धति (Method of Teaching)

14.4.5 विद्यालय (School)

14.4.6 अनुशासन (Discipline)

14.4.7 मूल्याँकन (Evaluation)

14.5 गिजुभाई का शैक्षिक योगदान (Contribution of Gijju Bhai to Education)

14.6 प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के संदर्भ में गिजुभाई के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता (Relevance of Gijubhai's Educational Ideas in the context of National Educationa Policy 2020 for Early Childhood Care and Education. (ECCE))

अपनी उन्नति जाँचिए (Check your Progress)

14.7 सारांश (Summary)
14.8 शब्दावली (Glossary)
14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)
14.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Books)
14.11 सहायक / उपयोगी पाठ्यसामग्री (Useful Books)
14.12 अधिगम- अभ्यास (Learning Exercise)
14.12.1 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)
14.12.2 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)
14.12.3 वस्तुनिष्ठ (Objective Type Questions)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा सामाजिक विकास और परिवर्तन का महत्वपूर्ण साधन है। किसी भी समाज और देश के लिए बच्चे उसके भविष्य होते हैं। बाल शिक्षा की बुनियाद जितनी अच्छी होगी देश का भविष्य भी उतना ही अच्छा,मजबूत और उज्ज्वल होगा। गिजुभाई ने इस तथ्य को पहचान कर बाल शिक्षा के विकास को सुनिश्चित करने और बालकों को एक खुशहाल बचपन एवं सुनहरा भविष्य प्रदान करने हेतु तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में सुधार लाने के लिए भगीरथ प्रयास किया। भावी पीढ़ी के लिए स्व-अनुभवों पर आधारित एक नया दर्शन प्रस्तुत किया। उनका मूलमन्त्र था – बालदेवो भव: गिजुभाई का जन्म ब्रिटिश शासन काल में हुआ था। अंग्रेजों के उत्पीड़न से भारतीय समाज और शिक्षा बदहाल थी। बच्चों को गुलामी के भयभीत वातावरण में दमनकारी शिक्षा दी जा रही थी तब गिजुभाई और अन्य भारतीय शिक्षाविदों ने निष्कर्ष निकाला कि हमें ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता है जो सम्पूर्ण राष्ट्र को अंग्रेजों से मुक्त कराने के साथ ही समाज और शिक्षा में परिवर्तन लाने की क्षमता विद्यार्थियों में भर सके। गिजुभाई ने यह कार्य बाल-शिक्षा से आरम्भ किया। इस इकाई में हम भारतीय शिक्षाशास्त्रीय गिजुभाई के शिक्षा दर्शन को समझने का प्रयास करेंगे।

14.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप सक्षम होंगे :

1. गिजुभाई का जीवन-वृत्त एवं जीवन दर्शन को समझने में।

2. गिजुभाई की शैक्षिक गतिविधियां एवं तत्कालीन शैक्षिक दशा का विश्लेषण करने में।

3. गिजुभाई का शिक्षा दर्शन समझने में।

4. गिजुभाई के द्वारा परिकल्पित शिक्षा के सिद्धांतों का वर्णन करने में।

5. गिजुभाई के शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धयति, अनुशासन, विद्यालय, एवं मूल्यांकन का आलोचनात्मक परीक्षण करने में।

6. बालकेन्द्रित शिक्षा के संदर्भ में गिजुभाई के योगदान का मूल्यांकन करने में।

7. प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की सिफ़ारिशों के संदर्भ में गिजुभाई के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता की समीक्षा करने में ।

भाग-एक Part I

14.3 गिजुभाई का जीवन-वृत्त (Life –Sketch of Gijju Bhai)

भारतीय बाल शिक्षाविद गिजुभाई का पूरा नाम गिरिजाशंकर भगवान जी बधेका था, जिन्हें लोकप्रिय रूप से गिजुभाई के नाम से जाना जाता है। गिजुभाई का जन्म 15 नवम्बर 1885 को सौराष्ट्र (गुजरात) के चितल गाँव में हुआ था। उनकी माता का नाम कशीबा बाई और पिता का नाम भगवान जी बधेका था। उनका पालन-पोषण गुजरात राज्य के भावनगर शहर में हुआ था। जीविकोपार्जन के लिए वे 1907 में पूर्वी अफ्रीका चले गए। 1910 में वापस लौटने पर बम्बई में कानून की पढ़ाई की और 1911 में वकील के रूप में अभ्यास शुरू किया और उच्च न्यायालय में वकालत करने लगे। पुत्र के जन्म के बाद, उन्हें बाल शिक्षा और बाल विकास में रुचि विकसित हुई। 1916 में वकालत त्याग कर दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन भावनगर के आजीवन सदस्य बनकर दक्षिणामूर्ति में सहायक अधीक्षक बनकर शिक्षण कार्य में जुट गए। वर्ष 1916 से 1920 तक वे विनय मंदिर (हाईस्कूल) के मुख्याध्यापक रहे। इस अवधि में उन्होंने अध्यापकों तथा छात्रों का निकटता से अवलोकन किया। तीन वर्ष की आयु के बच्चों के लिए 'बाल मंदिर' की स्थापना की। गिजुभाई ने मॉन्टेसरी के शिक्षा सिद्धान्तों का गहन अध्ययन किया और उसके सिद्धान्तों को भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल रूपांतरित कर भारत में मोंटेसरी शिक्षा प्रणाली की शुरुआत की। गिजुभाई ने मॉन्टेसरी के शिक्षा सिद्धान्तों को स्थानीय वातावरण तथा वर्तमान आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में न केवल देखा, परखा, अपितु मनोविज्ञान के सूत्रों के आधार पर उनकी मीमांसा भी की और अपनी मौलिकता, निर्भीकता

एवं आत्मविश्वास से एक नया रूप दिया। गिजुभाई महात्मा गाँधी जी से भी प्रभावित थे। गाँधी जी से प्रेरित होकर उन्होंने भावी पीढ़ी को चेतना युक्त, निडर, साहसी और ज्ञानी बनाने का संकल्प लिया। बालकों के प्रबल समर्थक, साथी एवं उन्नायक का मात्र 54 वर्ष की आयु में 23 जून 1939 में निधन हो गया।

14.3.1 गिजुभाई का जीवन दर्शन (Gijju Bhai Philosophy of Life)

गिजुभाई ने न किसी दर्शन का प्रतिपादन किया और न किसी दर्शन की व्याख्या की पर जैसा कि हर शिक्षाशास्त्री का अपना एक दर्शन होता है, जो उसके अपने स्व-अनुभवों पर आधारित होता है। उसी तरह गिजुभाई का भी अपना एक दर्शन था जो बालकों की समस्या पर केन्द्रित था। गिजुभाई का दर्शन बाल-केन्द्रित दर्शन था। उन्होंने बालकों को देवस्वरूप मानकर "बालदेवो भव:"का मंत्र दिया था। बालक ही देवता है, जिस प्रकार देवता को मनाने के लिए अनेक यत्न किये जाते हैं, उसी प्रकार बालक को भी यत्न पूर्वक संभालने और सम्मान देने की आवश्यकता है। इस प्रकार गिजुभाई बालक को ईश्वर की श्रेष्ठतम कृति मानते थे, और बालक को स्वतंत्र रूप से प्रस्फुटित होने देने के प्रबल पक्षधर थे इसीलिए गिजुभाई को भारत में प्रारम्भिक बाल देखभाल और शिक्षा (ECCE) Early Childhood Care and Education आंदोलन के अग्रदूत के रूप में माना जाता है।

14.3.2 गिजुभाई की शैक्षिक गतिविधियां एवं तत्कालीन शैक्षिक दशा (Activities of Gijju Bhai and Then Educational Condition)

भारत में पूर्व-प्राथमिक और प्राथमिक कक्षाओं के परिदृश्य में गिजुभाई एक चिंतनशील शिक्षक के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत होते हैं। गिजुभाई के समय देश में महात्मा गाँधी जी के नेतृत्व में स्वतंत्रता आन्दोलन चल रहा था। गिजुभाई भी प्रत्यक्ष रूप से गाँधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन से जुड़ गये और शरणार्थी शिवरों में निवास करने लगे। वहाँ उन्होंने बालकों की बानर सेना बना कर अक्षर ज्ञान योजना आरम्भ किया। गाँधी जी ने जो काम अहिंसक रीति से देश को आजाद कराने के लिए किया। वही काम शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों की आजादी के लिए गिजुभाई ने अल्पसमय में किया। अंग्रेजों द्वारा लादी गई तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था के दमनात्मक, भयभीत वातावरण से त्रस्त बालकों को स्वतंत्र कर उन्हें अपनी रुचि एवं योग्यता के अनुसार पढ़ने और सीखने की आजादी दिलाई। गिजुभाई भारत में प्रारम्भिक बाल्यावस्था

देखभाल और शिक्षा (ECCE) आंदोलन के अग्रदूत माने जाते हैं। इसलिए गिजुभाई *बालकों के गाँधी कहलाए*। गाँधी जी ने स्पष्ट कहा था उनके राष्ट्रीय आंदोलन का एक प्रमुख अंग शिक्षा सुधार है, क्योंकि तत्कालीन शिक्षा पद्धति, बालकों के स्वभाव के विपरीत कुरूर व निर्दयी थी । उन्हें विद्यालय में पढ़ाई के नाम पर डांट-फटकार तथा हिंसा का शिकार होना पड़ता था। इन सबके विरुद्ध माता-पिता व शिक्षकों की अदालत में बालकों के पक्ष में वकालत की। गिजुभाई ने बालकों की शिक्षा पर गम्भीर चिंतन किया और गुजराती भाषा में प्रचुर साहित्य का निर्माण किया। जहाँ एक ओर गाँधी जी की प्रेरणा से देश में स्वराज आन्दोलन की लहर चल पड़ी थी। वहीं दूसरी ओर गिजुभाई ने बाल लेखन-साहित्य में नई क्रान्ति ला दी और शिक्षा से संबन्धित साहित्य की रचना करके एक नए युग का सूत्रपात किया। गिजूभाई ने विद्यार्थी भवन के आचार्य के रूप में 4 वर्ष तक कार्य करने के बाद सन् 1920 में दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन में एक 'बालमन्दिर' की स्थापना की। इस बाल मन्दिर में 3 वर्ष की आयु से लेकर 6 वर्ष की आयु के बालकों को प्रवेश दिया जाता था। । गिजुभाई इन बालकों के मध्य रहकर उन्हें पढ़ने-लिखने, काम करने, खेलने, बागवानी करने, नाचने, गाने, अभिनय करने, कहानी कहने, आनन्द मनाने, दृश्य-दर्शन करने, यन्त्र बजाने, गरबा नृत्य, कविता पाठ करने, प्रश्न एवं नाटक की योजना बनाने, फूल-पौधे लगाने, क्यारी लगाने, प्रकृति के दर्शन करने की शिक्षा प्रदान करते थे। गिजुभाई बच्चों की जिज्ञासा जागृत करते थे तथा बीच – बीच में स्वच्छता का पाठ पढ़ाते रहते हैं। गिजुभाई अपनी पाठशाला में छात्र-छात्राओं को आदर पूर्वक सम्मान से बुलाते हैं –"नमस्ते विमला बेन ! कल फिर से शाला में आइयेगा" इससे बच्चों में अपने गुरु के प्रति अपनत्व व आदर सत्कार की भावना जागृत होती है।

14.3.2.1 बालकों के लिए गिजुभाई का लेखन कार्य (Gijjubhai 's Writing Work)

गिजुभाई एक बहुमुखी लेखक थे और उनके लेखन का उद्देश्य बच्चों के लिए सीखने को मजेदार और आकर्षक बनाना था। उन्होंने बाल शिक्षा, यात्रा और हास्य से संबंधित विभिन्न विषयों पर 200 से अधिक पुस्तकें लिखीं। उनका लेखन बच्चों, शिक्षकों और अभिभावकों पर लक्षित था।

14.3.2.2 **अपने अनुभवों के बारे में लिखना (Writing about his experiences):** गिजुभाई ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दिवास्वप्न' में बाल शिक्षा और बाल विकास से संबंधित अपने अनुभवों के बारे में लिखा। उन्होंने अपने अनुभवों, टिप्पणियों और विचारों को साझा किया कि बच्चे कैसे सीखते हैं, बढ़ते हैं और विकसित होते हैं, और कैसे शिक्षा उनके व्यक्तित्व को आकार देने में भूमिका निभा सकती है।

14.3.2.3 **कहानियाँ, कविताएँ और गीत लिखना (Writing stories, poems, and songs):-** गिजुभाई ने बच्चों के लिए कहानियाँ, कविताएँ और गीत लिखे। उनके लेखन का उद्देश्य बच्चों के लिए सीखने को मजेदार और आकर्षक बनाना था। उन्होंने बच्चों को विभिन्न अवधारणाओं और विचारों के बारे में सिखाने के लिए कहानी, कविता और गीतों का इस्तेमाल किया।

अपनी उन्नति जाँचिए (Check your Progress)

नोट:- अपने उत्तरों की तुलना इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

अति-लघुउत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1. गिजुभाई का पूरा नाम क्या था ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न- (Objective Type Questions)

प्रश्न 2. बालकों के लिए बालदेवो भव: का मंत्र दिया था –

(अ) अरविन्दो ने (ब) टैगोर ने (स) गिजुभाई ने (द) जे .कृष्णमूर्ति ने

रिक्तस्थान की पूर्ति कीजिए -

प्रश्न 3. गिजुभाई ने 1920 में ---------- स्थापना की थी।

(अ) विद्या मंदिर की (ब) बाल मंदिर (स) शिशु मंदिर (द) बाल वाटिका

भाग-दो Part II

14.4 गिजुभाई का शिक्षा दर्शन (Educational Philosophy of Gijju Bhai)

गिजुभाई शिक्षा को जीवन-पर्यन्त चलने वाली एक ऐसी क्रिया मानते थे, जो व्यक्ति में स्वत: स्फूर्त होती है। जिसके चलते व्यक्ति कुछ सीखने का प्रयास करता है। गिजुभाई के अनुसार – "शिक्षा जीवन व्यापी क्रिया है। इसका उद्गम हमारे भीतर से होता है। उद्गम का मूल

है अंतरात्मा की भूख, कोई आदमी किसी को नहीं सिखा सकता।'' शिक्षा विकास है और विकास की आधारशिला है स्वतन्त्रता। स्वतन्त्रता के माध्यम से बालक का सर्वांगीण विकास होना चाहिए, क्योंकि शिक्षा बालक के लिए है न कि बालक शिक्षा के लिए। शिक्षा पूर्ण स्वतंत्रता के वातावरण में रहकर सीखने के लिए है। इसलिए शिक्षा को बच्चे के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से प्रकट करने में मदद करनी चाहिए। आवश्यक है बच्चों की भावनाओं को समझें और बच्चों के लिए ऐसा माहौल तैयार करें ताकि भय के बिना खेल, कहानियों और गीतों के माध्यम से एक-दूसरे से सीखें। इस प्रकार गिजुभाई ने बालकेन्द्रित शिक्षा को प्रमुखता दी है जिसमें बालक कि स्वतन्त्रता, स्वावलंबन, सामुदायिक हिस्सेदारी और विद्यालय से अपनत्व की अवधारणा को सम्मिलित किया है। उनके बाल केंद्रित शिक्षा का स्वरूप निम्नलिखित है-

13.4.1 बाल केंद्रित शिक्षा (Child Centred Education)-गिजुभाई ने शिक्षण को बाल–केन्द्रित और स्वाभाविक व व्यावहारिक प्रक्रिया माना है, जिसे एक पवित्र शब्द 'स्वर्ग' (Heaven) से व्यक्त किया है। स्वर्ग का अर्थ है- आनंदमय जीवन। गिजूभाई ने अपने भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है-

- स्वर्ग बालक के सुख में है (Heaven is in the happiness of the child)
- स्वर्ग बालक के स्वास्थ्य में है (Heaven is in the health of the child)
- स्वर्ग बालक के आनंद में है (Heaven is in the pleasure of the child)
- स्वर्ग बालक के खेलप्रिय भोलेपन में है (Heaven is in the playful innocence of the child)
- स्वर्ग बालक के गाने तथा गुनगुनाने में है (Heaven is in the songs and Humming of the child)

14.4.2. गिजुभाई के शैक्षिक सिद्धांत (Educational Principles of Gijju Bhai)

भारत में पूर्व प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में नए सिद्धान्त तथा विधियाँ निर्माण करने वाले वे प्रथम शिक्षाविद् थे। उन दिनों जब बच्चों को छः वर्ष की आयु तक घर में रखा जाता था, तीन वर्ष

की आयु के बच्चों के लिए विद्यालय की कल्पना एक अद्वितीय विचार था। शिक्षा के क्षेत्र में यह एक नया आयाम था। गिजूभाई के शैक्षिक सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1. बाल केंद्रित शिक्षा सिद्धान्त (Child Centred Education Principle)
2. बालक के व्यक्तित्व तथा क्षमताओं आदि को समझने का सिद्धान्त (Principle of Understanding the Personality of the Child his Abilities etc)
3. प्रेम तथा सहानुभूति का सिद्धान्त (Principle of Love and Sympathy)
4. स्वतंत्रता का सिद्धान्त (Principle of Freedom)
5. बालक की भागीदारी का सिद्धान्त (Principle of Child's Partnership)
6. करके सीखने का सिद्धान्त (Principle of Learning by Doing)
7. रहने की कला सीखने का सिद्धान्त (Principle of Learning the Art of Living)
8. प्रत्यक्ष अनुभव का सिद्धान्त (Principle of Direct Experience)
9. व्यावहारिकता का सिद्धान्त (Principle of Practicability)
10. बालक की पवित्रता का सिद्धान्त (Principle of Child's Sanctity)
11. सिखाने के स्थान पर सीखने का सिद्धान्त (Principle of Learning to Learn rather than

Teaching) गिजूभाई के शैक्षिक सिद्धान्तों की झलक उनकी पुस्तक 'प्राथमिक विद्यालय में भाषा-शिक्षा' में इस प्रकार मिलती है-

1. 'विद्यालय नामक संस्था केवल अच्छे, भले, बुद्धिमान बालकों के लिए ही नहीं है, अपितु हर तरह के बालकों के लिए है'।
2. 'आज का समाज एक अँधेरे कुएं में पड़ा सड़ रहा है। उसे वहाँ से बाहर निकालकर स्वच्छ करना और उसका कल्याण करना शिक्षाशास्त्रियों का परम धर्म है'।
3. 'विद्यालयों का यह उद्देश्य होना चाहिए कि शिक्षा के माध्यम से प्रत्येक मनुष्य को समान अधिकार प्राप्त हों।'
4. 'जिसे हम बालक का उधम मचाना कहते हैं वह अधिकतर तो हमारी शिक्षा पद्धति के प्रति बालक का व्यक्तिगत विद्रोह है'।

14.4.3. शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Education)

गिजुभाई ने शिक्षा के उद्देश्यों में वैयक्तिक तथा सामाजिक उद्देश्यों के मध्य समन्वय स्थापित किया है। वो जीवन उपयोगी उद्देश्यों को महत्वपूर्ण मानते हैं। गिजुभाई बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए बाल्यकाल में ही सर्वांगीण विकास की नींव रखने के पक्ष में थे। गिजुभाई शिक्षा के माध्यम से जीवन में निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने पर बल देते हैं –

1.शारीरिक एवं मानसिक विकास :- स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन निवास करता है। इस दृष्टिकोण से गिजुभाई उत्तम शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए व्यायाम, योगासन, ध्यान, प्राणायाम के द्वारा बालकों के उत्तम स्वास्थ्य तथा अच्छी आदतों का निर्माण करते थे।

2. नैतिक और आध्यात्मिक विकास :- गिजुभाई सर्वधर्म समान मानते थे उनका मानना था आध्यात्मिक विकास के लिए सत्संग आवश्यक तत्व है, जिससे मानव अपने सर्वोत्म तत्व को समझ सकेगा और सच्चे 'मानव' की तरह सेवा कर सकेगा।

3. वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास:- वैयक्तिकता का विकास सामाजिक वातावरण में ही हो सकता है जहाँ यह समान रुचियों और समान क्रियाओं पर पोषित हो सकता है। इसलिए गिजुभाई कहते थे कि हम अपने विद्यालयों को समुदायों में बदल दें क्योंकि समुदाय में वैयक्तिकता को कुचला नहीं जाता वरन सामाजिक संपर्कों और सेवा के अवसरों से विकसित किया जाता है।

4. व्यावसायिक दक्षता का विकास:- तत्कालीन समाज में देश की स्थित ठीक नहीं थी। गिजुभाई मानते थे कि यदि बालक प्रारम्भ से ही व्यवसायों के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करें तो प्राप्त ज्ञान स्थायी होगा। साथ ही बालक भावी जीवन में आत्म-निर्भर भी होगा। हस्त-कौशलों को सीखने के वाद बालक अपनी आजीविका कमा सकेगा।

5.स्वच्छता के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना :- गिजुभाई स्वछता के माध्यम से बालकों में अच्छी आदतों के विकास की बात करते हुए माता – पिता से कहते थे –"बालक में स्वछता की आदत का विकास करने के लिए खुद की शारीरिक स्वच्छता से लेकर अपने परिवेश, घर और विद्यालय को भी स्वच्छ रखने की आदत डालनी चाहिए। ताकि वह हमेशा स्वच्छ और स्वस्थ रह सके।

6.स्वाध्याय की प्रवृत्ति का विकास :- गिजुभाई ने बालकों में.स्वाध्याय की प्रवृत्ति का विकास करने के लिए गुजरती भाषा में 200 बाल – पोथियाँ लिख कर बालकों को स्वाध्याय की ओर प्रेरित किया। उनका मानना है कि बालकों में पढ़ने की संस्कृति का विकास होने से न केवल वो एक अच्छे इंसान बन पाएंगे बल्कि समाज में अपनी भूमिका का सफल निर्वहन भी करेंगे।

14.4.4 पाठ्यक्रम (Curriculum)

गिजुभाई ने परीक्षा केन्द्रित **पाठ्यक्रम का विरोध किया है और बालकेन्द्रित एवं अनुभवजन्य पाठ्यक्रम का समर्थन किया है। उन्होंने ऐसे कोर** पाठ्यक्रम पर बल दिया है, जो पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा जीवन उपयोगी, लाभप्रद, रचनात्मक तथा व्यावहारिक है। खेल –कूद, भाषण, अभिनय, कहानी, कविता पाठ, वाद –विवाद, कताई-बुनाई, बागवानी, समाज सेवा को अतिरिक्त पाठ्यक्रम क्रियाओं में स्थान दिया है। पाठ्यक्रम क्रियाकेन्द्रित, श्रम में आस्था उत्पन्न करने वाला , स्वावलंबी बनाने वाला तथा वैज्ञानिक बुद्दि उत्पन्न करने वाला हो। गिजुभाई अनुसार उनके पाठ्यक्रम में सम्मिलित विषयों का शिक्षण निम्नलिखित प्रकार से होना चाहिये।

1. मातृभाषा शिक्षण :- गिजुभाई की एक और अनुपम कृति *'प्राथमिक शाला में भाषा शिक्षण'* है। इस पुस्तक में एक शिक्षक और बालक के बीच की उस प्रक्रिया की चर्चा है, जिससे बालक के भाषा शिक्षण की बुनियाद तैयार होती है। गिजुभाई के अनुसार पहले वाचन पर बल देना चाहिये इसके पश्चात् लेखन पर। **2. कविता शिक्षण:-** छात्रों का लोकगीतों के माध्यम से काव्य शिक्षण आरम्भ किया जाना चाहिये। लोकगीतों या ग्राम्य गीतों में स्पष्टता और उचित विषय वस्तु होने के कारण बालक उनकी ओर शीघ्र आकृष्ट होते हैं। कविता का परिचय गाकर भी कराया जा सकता है, उसे रटने की आवश्यकता नहीं होती।

3. व्याकरण शिक्षण :- गिजुभाई के अनुसार अनेक शालाओं में व्याकरण शिक्षण का कालांश अलग होता है। ऐसा नहीं होना चाहिये क्योंकि व्याकरण भाषा शिक्षण का ही एक भाग है। पाठ में संज्ञा, क्रिया, सर्वनाम तथा विश्लेषण आदि की पहचान बालक को खेल-खेल में ही करानी चाहिए।

4. इतिहास और भूगोल शिक्षण:- बालकों के लिये कहानी के माध्यम से इतिहास विषय को पढ़ाने से विषय रोचक बन जाता है। कहानी के माध्यम से इतिहास विषय को पढ़ाते समय, शिक्षक को यह ध्यान रखना चाहिये कि मूल घटना के आसपास कल्पित घटनाओं को इस प्रकार सजाकर पढ़ाना चाहिये कि उन्हें वास्तविकता का ध्यान कहानी के माध्यम से ही हो जाये। भूगोल पढ़ाने में ग्लोब तथा मानचित्रों की सहायता लेकर तथ्यों को स्पष्ट करना चाहिये।

5. चित्रकला शिक्षण:- चित्रकला में बालकों को वस्तुओं के नाम या वह वस्तु देकर उनकी आकृति बनाने हेतु कहना चाहिए। प्रारम्भ में उनके चित्र सुन्दर न बन सके परन्तु अभ्यास से वे ठीक चित्र बनान लगेंगे। बाद में उनके पेंसिल से जैसा भी सम्भव हो चित्र बनवाने चाहिये। अच्छे चित्रों को प्रदर्शन हेतु रखवाना चाहिए। इससे बालकों को प्रोत्साहन मिलता है।

5. खेलकूद:-गिजुभाई के अनुसार नियत समय पर खेलने-कूदने हेतु बालकों को मुक्त किया जाना चाहिए। खेलने-कूदने का अर्थ खेलना, कूदना तथा मौज- भरना है। इसमें हारने-जीतने का कोई महत्व नहीं होना चाहिए। जीतने वालों को पुरस्कार आदि के वितरण से बालकों में हीन भावनाएँ जागृत हो जाती है।

14.4.4 शिक्षण-पद्धति (Method of Teaching)

गिजूभाई ने पूर्व विद्यालयी शिक्षण के लिए -नाटक पद्धति, कहानी पद्धति, भ्रमण पद्धति, अवलोकन पद्धति तथा मॉण्टेसरी पद्धति पर बल दिया है-

14.4.4.1 मांटेसरी पद्धति (Montessori method) --- गिजुभाई ने पूर्व विद्यालयी शिक्षण में मॉण्टेसरी पद्धति को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है तथा इसे बालक के सम्पूर्ण विकास के लिये उपयुक्त समझा है। यह ढ़ाई से 6 वर्ष के बालकों के हेतु प्रयोग में लाई जाने वाली पद्धति है जिसका विकास बीसवीं सदी के प्रारंभ में डॉ॰ मारिया मांटेसरी द्वारा हुआ।मांटेसरी शिक्षा पद्धति ऐसी शिक्षा पद्धति है, जिसमें विशेषत: निर्देशन में वैयक्तिकता का स्थान है।

14.4.4.2 प्रमुख शिक्षण पद्धतियाँ – प्रश्नोत्तर पद्धति, जोड़ीदार पद्धति, नाट्य प्रयोग पद्धति, स्वशिक्षण पद्धति, श्रवण पद्धति, चलचित्र पद्धति, प्रत्यक्ष पद्धति, कक्षा पद्धति, उन्मेष पद्धति, खेल पद्धति, सिद्धांतमूलक और दृष्टांतमूलक पद्धतियाँ इत्यादि।

14.4.4.3 बाल-मंदिर में विभिन्न विषयों की शिक्षण अधिगम विधियाँ (Teaching Learning Methods of Different Subjects in Bal Mandir)

बाल-मंदिर में विभिन्न विषयों का शिक्षण निम्न लिखित विधियों द्वारा दिया जाता था-

1. पहले पढ़ना फिर लिखना (Before reading than writing)- 'पाठशाला में भाषा' पुस्तक में भाषा शिक्षण दिया गया है। इसके चार चरण हैं-

I. बाल-मंदिरों में पहले भाषा को पढ़ना सिखाया जाता था, तत्पश्चात लिखना।

II. दूसरे चरण में रेखा चित्रण से लेखन कार्य आरम्भ किया जाता था।

III. तीसरे चरण में बालक को उँगलियों से कलम पकड़ना सिखाया जाता था।

IV. चौथे चरण में विभिन्न आकार बनाकर अक्षर बनाना सिखाया जाता था।

2. श्रुतलेख (Dictation)--- श्रुतलेख के माध्यम से लेखन की गति और शुद्धता पर बल दिया जाता था।

3. कविता शिक्षण (Poem Teaching)--- लोक गीतों के द्वारा विद्यार्थियों को वाक्य शिक्षण प्रारम्भ कराया जाता था। यह माना जाता था कि लोक गीतों से रसानुभूति के साथ-साथ वाक्य शिक्षण भी दिया जा सकता है।

4. व्याकरण शिक्षण (Grammar Teaching)-- व्याकरण शिक्षण खेल-खेल से ही दिया जाता था। उन्होंने अपनी पुस्तक 'द्विवास्वप्न' में इस पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

5. इतिहास शिक्षण (History Teaching)--- बच्चों को इतिहास कहानी के रूप में पढ़ाया जाता था।

6.भूगोल शिक्षण (Geography Teaching)--भूगोल शिक्षण में ग्लोब तथा नक्शों का प्रयोग किया जाता था।

7. चित्रकला शिक्षण (Drawing Teaching)-- बच्चों को विभिन्न प्रकार की वस्तुओं द्वारा चित्रकला का शिक्षण दिया जाता था। बच्चों का चित्र बनाने में उत्साह बढ़ाया जाता था। बाद में पेन्सिल से रंग भरना सिखाया जाता था।

8. गणित शिक्षण (Mathematics Teaching)--गणित का शिक्षण मॉन्टेसरी विधि के अनुसार था, परंतु स्थानीय सामग्री का प्रयोग किया जाता था।

9. खेल-कूद (Sports) --अनेक प्रकार के खेलों पर बल दिया जाता था।

10.कहानी कहना (Story Telling)--- गिजुभाई की शिक्षण की विधियों में सर्वाधिक क्रान्तिकारी एवं प्रभावी विधि थी- कहानी कहना। इसी से जुड़ी प्रवृति है- बाल-नाट्य। बाल-

मंदिर में उन्होंने बाल रंगमंच अलग से बनवाया था, जिसमें नियमित रूप से नाटकों के आयोजन होते थे।

14.4.5. विद्यालय (School)

गिजुभाई ने 'स्कूल' के बजाय 'मंदिर' शब्द का प्रयोग किया है। प्राइमरी, मिडिल और हाई स्कूल की जगह बाल-मंदिर, किशोर मंदिर, विनय मंदिर से स्कूल को इंगित किया था। उन्होंने मंदिर शब्द का प्रयोग इसलिए किया है कि यह एक ऐसी जगह है जहां बच्चे को पीटा नहीं जाएगा, अपमानित नहीं किया जाएगा या उसका उपहास नहीं किया जाएगा। गिजुभाई ने ज़ोर देकर कहा कि बच्चों पर वयस्क विचारों को थोपने की बजाय वे उनके अनुसार खेल-कूद कर कुछ सीखने का अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए। उन्होंने बच्चों को शिक्षित करने के पारंपरिक तरीके को खारिज करते हुए मोंटेसरी के सिद्धान्तों की अपनी पद्धति से पूर्ण स्वतंत्रता के वातावरण में बाल केंद्रित शिक्षा (पूर्व-स्कूली शिक्षा) प्रदान किया। उनके नवीन शैक्षिक विचारों की झलक उनकी रचना 'दिवास्वप्न' में लक्ष्मी शंकर नामक शिक्षक की काल्पनिक कहानी के माध्यम से मिलती है, जो शिक्षा की रूढ़िवादी संस्कृति को अस्वीकार करता है। गिजूभाई के अनुसार–"विद्यालय बाल-विकास की एक प्रयोगशाला होनी चाहिए। जिसमें बालकों के विकास के अनुरूप सम्पूर्ण साधन – सामग्री हो, ताकि बालक स्वयं प्रयोग कर सकें और अनुभव प्राप्त कर सकें।

14.4.6 अनुशासन (Discipline)

गिजुभाई ने बालकेन्द्रित स्व-अनुशासन का समर्थन किया है और **आत्म-अनुशासन के महत्व पर जोर दिया** है। उन्होंने दमनात्मक अनुशासन का विरोध किया है। वह अनुशासन के साधन के रूप में शारीरिक दंड के इस्तेमाल के खिलाफ थे और उनका मानना था कि यह बच्चे के विकास के लिए हानिकारक है। **अनुशासन बनाए रखने के लिए पुरस्कार और ईनाम देने वाले विद्यालयों का भी गिजुभाई ने विरोध किया है। इससे बच्चों में लालच की भावना का विकास और गुलामी की प्रवृत्ति का विकास होता है।**

14.4.6 मूल्याँकन (Evaluation)

गिजुभाई परीक्षा पद्धति का प्रबल विरोध करते थे। उनका मानना है कि परीक्षा के नाम पर बालक पर अत्याचार किया जाता है। इसलिए वह परीक्षा प्रणाली को पूरी तरह बदल देना चाहते थे, क्योंकि बच्चों के लिए परीक्षा के परिणाम हमेशा हानिकारक होते हैं। इससे बच्चों में परीक्षा के बुरे परिणामों से कुंठा की भावना का विकास हो सकता है और अच्छे परिणामों से घमंड आ सकता है। गिजुभाई का मानना था कि मूल्याँकन बालक के विकास का और उसमें शिक्षक के योगदान का होना चाहिए।

14.5 गिजुभाई का शैक्षिक योगदान (Contribution of Gijju Bhai to Education)

बालकों की शिक्षा व्यवस्था में अभूतपूर्व परिवर्तन लाने वाले उच्चकोटि के बाल शिक्षाविद गिजुभाई ने अपने 54 वर्ष के छोटे से जीवन काल में बाल शिक्षण के क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान दिया। बालकों को स्वतंत्रता, सृजनशीलता का वातावरण प्रदान किया। भय, सुरक्षा, अभाव एवं अपमान से बालकों को मुक्त किया। वह बच्चों की उदास छबि को आनन्द से भर देना चाहते थे। गिजुभाई द्वारा बाल-देखभाल और शिक्षा के क्षेत्र में दिये गये बहुमूल्य योगदान का विवरण निम्नलिखित हैं –

14.5.1 बाल-मंदिर की स्थापना : (Establishment of Bal Mandir) :- 1920 में गिजुभाई ने बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिए दक्षिणमूर्ति भवन में बाल मंदिर' प्री-प्राइमरी स्कूल की स्थापना की और अपनी स्वयं की शिक्षण पद्धति विकसित की। उसे पूजा का स्थान दिया। उनके प्रभाव से गुजरात में दूर-दूर तक नए बाल-मंदिर खुलने लगे और उन सभी स्थानों पर वे भाषण देने जाते थे। आज भी यह संस्था उतनी ही प्रखरता एवं उत्कृष्टता से बाल-देखभाल और शिक्षा का अनुकरणीय उदाहरण बनकर कार्यरत है। उन्होंने अपने द्वारा स्थापित संस्थानों में हाशिए पर रहने वाले समूहों को शामिल किया था। अगस्त 1920 में दक्षिणामूर्ति बालमंदिर, एक प्री-प्राइमरी स्कूल अस्तित्व में आया। इस बाल मंदिर को 'बच्चे की पूजा का स्थान' माना गया। इस बाल मंदिर में बच्चे हँसते खिल-खिलाते हुए उत्साह और उमंग के साथ आते और दिनभर मनवांछित गतिविधियों में लीन रहकर जीवन रक्षा के उपयोगी पाठ पढ़ते थे। इस नवनिर्मित बाल-मंदिर की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं –

1. बालक की पवित्रता (Sanctity of the Child)-- बाल-मंदिर में बालक को देवता के समान माना जाता था।

2. बाल केंद्रित शिक्षा (Child Centred Education)--- बाल-मंदिर की प्रत्येक गतिविधि बालक की रुचि तथा क्षमता आदि पर आधारित थी।

3. स्नेहमय वातावरण (Environment of Love) ---बालकों को स्नेह से पढ़ाया-लिखाया जाता था।

4. बालक की भागीदारी (Participation of Child)- शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में बालक की भागीदारी सुनिश्चित की जाती थी।

5. व्यवहारिकता (Practicability)- बालक को व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी।

6. स्वतंत्रता का वातावरण (Environment of Freedom)--दक्षिणमूर्ति बाल-मंदिर में जहाँ बालक के स्वतंत्र व्यक्तित्व को सम्मान देने की नीति प्रयुक्त की गयी, वहीं स्वावलंबन, स्वतंत्रता, अनुशासन और बाल-अभिव्यक्ति पर सर्वाधिक बल दिया गया।

7. सृजनात्मक पाठ्यक्रम (Creative Curriculum)--- बाल-मंदिर में शिक्षण के मुख्य अंग थे- संगीत, इन्द्रिय शिक्षण, शांति की क्रीड़ा, जीवन व्यवहार तथा मुक्त व्यवसाय के कार्य, भाषा शिक्षण, गणित शिक्षण, प्रकृति परिचय, कहानी कहना, चित्रकारी, बाल-नाट्य, बाल-क्रीड़ा, प्रवास एवं भ्रमण इत्यादि।

8. क्रिया द्वारा शिक्षण (Learning by Doing)- बुनियादी रूप से जिस तत्व को गिजुभाई ने बाल-मंदिर में सर्वाधिक महत्व दिया, वह थी- विविध क्रियाएँ। गुजरात के सांस्कृतिक लोकगीतों और लोक-नृत्यों से उन्होंने शिक्षण में रोचकता ला दी। मुख्य तौर पर निम्न शिक्षण अधिगम विधियों को प्रयोग में लाया जाता था-

- ☐ करके सीखने की विधि (Learning by Doing)
- ☐ खेल विधि (Playway Method)
- ☐ अवलोकन विधि (Observation Method)
- ☐ कहानी कथन विधि (Story Telling Method)
- ☐ क्षेत्रीय भ्रमण विधि (Field Trip Method)
- ☐ चित्र तथा मॉडल विधि (Picture and Model Method)

14.5.2 दक्षिणमूर्ति छात्रावास की स्थापना-: (Establishment of Dakshinamurti Hostel) गिजुभाई अपने पुत्र की शिक्षा के सिलसिले में जब छोटे बच्चों के विद्यालय में गए तो उन्हें मांटेसरी पद्धति की एक पुस्तक मिली। उसका गिजुभाई पर बहुत प्रभाव पड़ा। 1916 में भावनगर में एक दक्षिणमूर्ति छात्रावास की स्थापना की। इस छात्रावास में बारडोली सत्याग्रह के लिए अपने घर त्यागने वाले किसान परिवारों का पुनर्वास किया गया था। शिक्षा की नई पद्धति के प्रयोग के लिए शिक्षकों का प्रशिक्षण आवश्यक समझ कर गिजुभाई के आचार्यत्व में 'दक्षिणमूर्ति' को अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्र का रूप दे दिया।

14.5.3 अध्यापक मंदिर की स्थापना-: (Establishment of Teacher Temple)

गिजुभाई ने सीखने के प्रारंभिक वर्षों में बच्चों के साथ जुड़े शिक्षकों को महत्व दिया था। औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षकों को प्रशिक्षण नहीं दिया जाता था। शिक्षा की नई पद्धति के प्रयोग के लिए शिक्षकों का प्रशिक्षण आवश्यक समझ कर गिजुभाई ने 'दक्षिणमूर्ति' को अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्र का रूप दे दिया और शिक्षकों को प्रशिक्षण के रचनात्मक तरीकों की ओर उन्मुख किया। गिजुभाई ने 1925 में दक्षिणामूर्ति में अध्यापक मंदिर की शुरुआत की। उसके बाद राजकोट में एक अध्यापक मंदिर शुरू किया।

14.5.4 शिक्षण पत्रिका का प्रकाशन-: (Publication of educational magazine)-

वर्ष 1925 में गिजुभाई द्वारा 'बालक की दुनिया' नामक 'शिक्षण पत्रिका' शुरू की गई। यह एक गुजराती मासिक शिक्षण पत्रिका' थी, जो विशेष रूप से शिक्षकों, माता-पिता और समाज के बीच जागरूकता फैलाने के लिए प्रकाशित की थी। इस पत्रिका में उन्होंने बच्चों के जीवन तथा शिक्षण के बारे में 'बालक की दुनिया' (World of Children) पर प्रकाश डाला। इस पत्रिका ने विशेष रूप से माता-पिता और सामान्य रूप से अन्य लोगों में बच्चों के लिए समग्र शिक्षा की आवश्यकता पर काफी जागरूकता पैदा की। इसमें बाल विकास, बाल मनोविज्ञान और शिक्षा से संबंधित विषयों को भी शामिल किया गया था।

14.5.5 नूतन बाल शिक्षण संघ का गठन-: - (Formation of new child education association) --गिजुभाई ने 1926 में ताराबाई मोदक के साथ मिलकर नूतन बाल शिक्षण संघ का गठन किया। जो बाद में प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई)

बालवाड़ी के विकास का आधार बना। उन्होंने पूरे भारत में, विशेषकर गुजरात, मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र और सौराष्ट्र क्षेत्र में बच्चों की शिक्षा के अपने मॉडल का बड़े पैमाने पर प्रचार किया। गिजुभाई के नूतन बाल शिक्षण संघ का गठन करने का मुख्य उद्देश्य था उनके द्वारा स्थापित संस्थानों में हाशिए पर रहने वाले समूहों को शामिल करना।

14.5.6 समावेशी शिक्षा (Incusive Education)--गिजुभाई ने दलितों को दक्षिणामूर्ति संस्था में प्रवेश के लिए आमंत्रित किया। बारडोली सत्याग्रह के लिए अपने घर त्यागने वाले किसान परिवारों का पुनर्वास दक्षिणामूर्ति संस्था में किया। जिस स्कूल की उन्होंने स्थापना की थी वह आज भी भावनगर के छोटे से शहर में मौजूद है, जहाँ शिक्षक गिजुभाई की शिक्षण पद्धति का पालन करते हैं। यह शिक्षाविदों, शिक्षकों और शिक्षा के नवीन तरीकों में रुचि रखने वाले सभी लोगों के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने सभी पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए शिक्षा को सुलभ बनाने के लिए कम लागत वाली शिक्षण सामग्री और उपकरणों का उपयोग किया।

14.5.7 सम्मेलनों का आयोजन (Organizing Conferences) - गिजुभाई ने बाल शिक्षा की एक नई प्रणाली की वकालत की थी जिसे मजबूत करने के लिए उन्होने 1925 में भावनगर में एक सम्मेलन आयोजित किया था। उसमें शिक्षाविदों, शिक्षकों, अभिभावकों और आम लोगों को भी शामिल किया था। 1928 में पुनःएक सम्मेलन किया और इसी प्रकार का एक आयोजन अहमदाबाद में भी किया जिसमें नई शिक्षा प्रणाली से बच्चों को होने वाले लाभों के बारे में बताया गया।

14.5.8 भारत में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का परिचय (Introduction of Pre-Primary Education in India): भारत में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की शुरुआत करने का श्रेय गिजुभाई और ताराबाई मोदक को जाता है, और इन दोनों द्वारा शुरू की गई पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को बालवाड़ी के नाम से जाना जाता था। गिजुभाई ने बाल-मन्दिर को बच्चों की आनन्द की किलकारी करती संस्था में बदल दिया।

14.5. 9 मोंटेसरी शिक्षण पद्धति (Montessori Teaching Method):- गिजुभाई ने भारत के लोगों के लिए मोंटेसरी शिक्षण पद्धति की शुरुआत की।

14.5.10 मूछों वाली माँ (Mustache Mother of ECCE):- गिजुभाई को प्रारंभिक बाल देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) की मूंछ वाली माँ के रूप में भी संबोधित किया गया था। उन्होने बाल शिक्षण और बाल विकास के लिए ऐसी धूनी रमाई कि बाल शिक्षण के सिवा कोई दूसरा जाप नहीं किया। बालकों के साहित्य, बालकों की क्रीड़ा, बालकों का आरोग्य, बालकों की भाषा, गणित, कला-कारीगरी, सभी कुछ बालक ही बालक। इस प्रकार वह बच्चों के मूछों वाली माँ बन गये।

14.5.11 बच्चों के लिए अभियान (Campaign for Children): बच्चों के लिए गिजुभाई का अभियान मुख्य रूप से भारत में गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में चला।

14.5.12 गिजुभाई बालकों के गांधी-: (Gijju Bhai as the Gandhi of Children)

स्वयं महात्मा गांधी गिजुभाई की प्रतिभा को मानते थे और उनका आदर करते थे। जिस प्रकार गाँधी जी ने देशवासियों और विशेषकर गाँवों में रहने वालों के लिए कार्य किया, उसी प्रकार गिजुभाई ने गाँवों एवं गलियों में भटकने वाले बालक जो अभावग्रस्त एवं साधनहीन माताओं-पिताओं की विवशतावश शिक्षा से वंचित थे, उनके लिए बाल मंदिर स्थापित किए और उन्हें जीवन में एक नयी दिशा दी तथा उनके लिए नए संसार की परिकल्पना की। गिजुभाई ने बाल-विद्या मंदिरों को पूजा का स्थान दिया। उनका बाल-विद्या मंदिर भयमुक्त एवं प्रेम और आनंदयुक्त था। उन्होने सभी जाति-वर्ग के बच्चों के लिए एक समान शिक्षा की व्यवस्था की थी, जहां प्रत्येक बालक–बालिका स्वयं काम करने की स्वाभाविक वृत्ति के अनुसार काम करते हुए अपना सर्वांगीण विकास करते हैं। इसीलिए गिजुभाई को बालकों के गांधी भी कहा जाता है।

14.5.13 स्वच्छता के अग्रदूत :- गिजुभाई स्वच्छता के अग्रदूत रहे हैं। उन्होंने तत्कालीन धूल धूसरित गंदी पाठशालाओं की दशा सुधारने के लिए विद्यालय और समुदाय में जन-जागरण अभियान चलकर स्वच्छता के महत्व की चेतना लोगों में जाग्रत की थी। गिजुभाई पाठशालाओं को साफ –सुथरी देखने के अभिलाषी थे उनका कहना था कि विद्यालय स्वच्छ हो तभी बालकों का मन वहाँ लगेगा क्योंकि पाठशाला फकत पढ़ाई का स्थान न रहकर जीवन विकास का स्थान बनने लगेगी।

14.5.7 गिजुभाई के प्रकाशन (Publication of Gijju Bhai)

गिजुभाई गुजराती के सशक्त तथा प्रभावी लेखक थे। उन्होंने लगभग 200 पुस्तकें लिखी हैं। उनकी पुस्तकों के विषय मुख्य रूप से बाल विकास, शिक्षा, यात्रा और हास्य के इर्द-गिर्द केंद्रित थे। उनके लेखन का उद्देश्य बच्चों के लिए सीखने को मजेदार और आकर्षक बनाना था।

इन पुस्तकों को तीन भागों में बांटा जा सकता है-

1 अध्यापकों के लिए पुस्तकें

2- माता-पिता के लिए पुस्तकें

3- बच्चों के लिए पुस्तकें

14.5.7.1 अध्यापकों के लिए पुस्तकें (Books for teachers)-- गिजुभाई एक उच्च कोटि के शिक्षाशास्त्री थे उन्होंने अध्यापकों के लिए भी अनेक पुस्तकें लिखी। उनकी पुस्तक दिवास्वप्न एवं प्राथमिक शाला में भाषा शिक्षा ये दो पुस्तकें गिजुभाई को श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्रियों की पंक्ति में खड़ा कर देती हैं।

'दिवास्वप्न' में लेखक तत्कालीन प्राथमिक शाला की आलोचना करता है और उसका शिक्षक भावी शाला की कल्पना करता है। पूरी पुस्तक कहानी शैली में लिखी हुई है तथा शिक्षक द्वारा भावी विद्यालय का दिवास्वप्न देखने का विवरण प्रस्तुत करती है।

दूसरी पुस्तक है **'प्राथमिक शाला में भाषा शिक्षा'** जिसमें गिजुभाई ने भाषा की शिक्षा पर अपने सिद्धान्त दिए हैं। लेखन से पूर्व वाचन की शिक्षा लोकगीत द्वारा कविता-शिक्षण खेल में व्यावहारिक व्याकरण की शिक्षा, कहानी द्वारा इतिहास बता देना, ग्लोब के माध्यम से खेल-खेल में भूगोल सिखा देना, मॉन्टेसरी विधि से गणित सिखा देना जैसे आधुनिक सिद्धान्तों की व्याख्या 'प्राथमिक शाला में भाषा शिक्षा'में मिलती है।

14.5.7.2 माता-पिता के लिए पुस्तकें (Books for parents)- गिजुभाई ने वयस्क शिक्षा पर भी ध्यान केंद्रित किया। उन्होंने 1930 में प्रौढ़ शिक्षा अभियान शुरू किया। गिजुभाई ने 200 से अधिक पुस्तकें लिखीं।

14.5.7.3 बच्चों के लिए साहित्य सृजन (Literary creation for children)

गिजुभाई गुजरात में बच्चों के साहित्य के महानतम लेखक माने जाते हैं। गिजुभाई ने बच्चों का साहित्य, उनकी भावनाओं, संवेगों, रुचियों तथा प्रवृतियों को ध्यान में रख कर रचा है। बच्चों के साहित्य जैसे लघु कथाएँ, नर्सरी कविताएँ और साहसिक यात्रा कहानियों पर पुस्तकें बच्चों के लिए प्रकाशित हुई हैं। उन्होंने गुजराती भाषा में, यथार्थवादी, समझने में आसान विचारों को व्यक्त किया है। इस प्रकार उन्होंने विशेष रूप से शैक्षिक प्रणाली में अद्भुत योगदान दिया है।

14.6 प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के संदर्भ में गिजुभाई के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता (Relevance of Gijjubhai's Educational Ideas in the context of National Education Policy 2020 for Early Childhood Care and Education (ECCE)

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत में शैक्षिक उपलब्धि और शैक्षिक विशेषताओं के समग्र उत्थान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण विकास है, जिसमें प्री-स्कूली शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया है। एनईपी 2020 के अनुसार भारत को वैश्विक ज्ञान की महाशक्ति बनना है। भारत के अग्रणी बाल-शिक्षक गिजुभाई जिन्होंने बच्चों की शिक्षा के विषय पर महत्वपूर्ण प्रकाशन किया है। प्री-स्कूली वर्षों या विकासात्मक चरणों में एक शिशु का दिमाग कैसे विकसित होता है? इसके बारे में उनकी मान्यताएँ महत्वपूर्ण हैं। गिजुभाई ने देश में प्रचलित ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली का विरोध किया। क्योंकि उनका मानना था कि इस प्रणाली में शिक्षकों को नए विचारों को पेश करने या छात्रों को सीखने में रुचि विकसित करने के लिए और प्रेरित करने के लिए शिक्षा में बदलाव लाने की कोई स्वतंत्रता नहीं थी। उन्होंने देश में मोंटेसरी शैक्षिक दर्शन की शुरुआत की। प्री-स्कूल शिक्षा और बच्चों के विकास के लिए नित नए प्रयोग किए और इन प्रयोगों का कार्यान्वयन भी किया, जो एनईपी-2020 में परिलक्षित होता है। यह निम्नलिखित हैं-

14.6.1 प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा: - भारत में प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा का क्रमिक विकास का एक विशेष सांस्कृतिक और सामाजिक स्थान

रहा है। परम्परागत रूप से, प्रारम्भिक शिक्षा परिवार आधारित थी और बच्चों को मूल्य और सामाजिक कौशल सिखाने पर केन्द्रित थी। सामाजिक-सांस्कृतिक और परिवेश में बदलाव के साथ-साथ भारत में प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा में भी सुधार और बदलाव आया। आधुनिक भारत में प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा की शुरुआत करने वालों में गिजुभाई और ताराबाई मोदक का नाम अग्रणी है। वे आधुनिक शिक्षा में उन पहले भारतियों में से थे, जिन्होंने छोटे बच्चों की शिक्षा के लिए बाल केन्द्रित दृष्टिकोण और देखभाल की संकल्पना बनाई। उनका विचार था कि शिक्षा बच्चे की मातृभाषा में होनी चाहिए और बच्चे के सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण से जुड़ी होनी चाहिए और समुदाय को भी सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से शामिल होना चाहिए। । प्रारम्भिक शिक्षा की के विचारों को संदर्भित करते हुए उन्होंने कहा 'समुदाय आधारित प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा समुदाय आधारित कार्यक्रमों के औपचारिक आयोजन से होनी चाहिए।' यद्यपि प्रारम्भिक शिक्षा विचारक फ्रेडरिक फ्रोबेल के विचारों पर आधारित किंडरगार्टन के मॉडल अंग्रेज़ी मिशनरियों के द्वारा कुछ शहरों में स्थापित किए गए थे। लेकिन भारत में पहला स्वदेशी प्री-स्कूल 1916 में गिजुभाई के द्वारा स्थापित किया गया था। गिजुभाई द्वारा स्थापित, पहला स्वदेशी प्री-स्कूल विकासवाड़ी केन्द्र बाद में देश में सामुदायिक ECCE कार्यक्रमों के विकास के लिए एक प्रेणादायक सेटिंग बन गया। पूर्व-बुनियादी (प्री-बेसिक) और बुनियादी शिक्षा के संदर्भ में महात्मा गाँधी के उभरते विचारों और 1939 में मोंटेसरी की भारत यात्रा के साथ, प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के व्यवस्थित ढाचे की नींव को और मज़बूती मिली। वर्तमान में प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) को एनईपी 2020 में प्राथमिकता दी गई है । यह शिक्षा नीति 2020 विभिन्न शैक्षणिक स्तरों पर प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल के लिए एक मजबूत आधार स्तभ है। इसके अंतर्गत 3-6 आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए स्कूलों में निःशुल्क, लाभकारी और उत्कृष्ट डे-केयर और सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा जिसमें बच्चे का संपूर्ण विकास इस कार्यक्रम का लक्ष्य है । प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा पर गिजुभाई के विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने135 वर्ष पहले थे। प्रारम्भिक बाल्यावस्था की अवधि जीवन भर सीखने और विकास की बुनियाद रखती है इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए गिजुभाई ने भारत में पूर्व प्राथमिक शिक्षा के संबंध में 3 वर्ष से 6 वर्ष के बच्चों के लिए सर्वप्रथम 1920 में बाल मंदिर की स्थापना की और आचार्य के रूप में वहाँ

रहकर शिक्षा में अद्भुत नवाचार किया। बाल विकास कार्यों में गिजुभाई स्वयं साथ-साथ रहते, बालकों को बताते तथा सिखाते और बालकों को प्यार से कार्य में लगाते थे।

14.6.2 समग्र विकास :-नई शिक्षा नीति 2020 विद्यार्थियों के समग्र विकास पर जोर देती है। शिक्षा आजीवन सीखने की एक शैक्षणिक प्रक्रिया है और आजीवन सीखने का आधार बाल-शिक्षा है। गिजुभाई ने सीखने के माहौल में स्वतंत्रता की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होने बार-बार एक ऐसा स्थान स्थापित करने का प्रयास किया है जहाँ बच्चे स्वतंत्र रूप से अपनी बात कहने में सक्षम हों। गिजुभाई का शैक्षणिक दर्शन विशेष है उनका बाल केंद्रित शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण रचनावादी है। जिसका उपयोग शिक्षण और सीखने दोनों में किया जाता है। गिजुभाई ने एक ऐसी शैक्षिक प्रणाली का विरोध किया जो बच्चों को "मुक्त" और "प्राकृतिक" वातावरण में सीखने की क्षमता प्रदान नहीं करती थी। उन्होंने बच्चों की खुशी, स्वास्थ्य, आनंद और शांति को सबसे अधिक महत्व दिया जिससे बच्चों का समग्र विकास हो सके। बाल-पोषण और विकास हेतु माता-पिता को स्वास्थ्य वर्धक भोजन और स्वच्छता का सन्देश दिया। एनईपी 2020 के अनुसार भी बाल-विकास के लिए मध्याह्न भोजन में पौष्टिक भोजन शामिल होगा। जिसमें मध्याह्न भोजन के पूरक के रूप में, छात्र को नाश्ते के लिए मूंगफली, चना या ताजे फल जैसे स्वास्थ्यवर्धक पोषण प्राप्त होगा। गिजुभाई का भी मानना है कि भूखे रहने से बालक कुपोषित हो सकते हैं अत: बालकों को कुपोषण से बचाने के लिए ताजा और स्वास्थ्यवर्धक पोषाहार देना आवश्यक हैं। गिजुभाई के समग्र विकास और सीखने के प्रारंभिक वर्षों से संबंधित विचार आज भी अत्यधिक प्रासंगिक हैं।

14.6.4 समावेशी शिक्षा:- गिजुभाई द्वारा दक्षिणामूर्ति संगठन में दलितों का स्वागत किया गया। इसके अतिरिक्त, वह उन किसान परिवारों के पुनर्वास के प्रभारी थे, जो बारडोली सत्याग्रह के दौरान अपने घर छोड़कर भाग गए थे। भावनगर के छोटे से गांव में, शिक्षक गिजुभाई द्वारा बनाए गए स्कूल में उनकी शिक्षण तकनीकों का उपयोग करते हैं। एनईपी-2020 के अनुसार समावेशी शिक्षा सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित आबादी के सभी वर्गों के लिए सीखने को प्रोत्साहित करती है। इसमें वंचित क्षेत्रों और विशेष शिक्षा क्षेत्र के विशेष आवश्यकता वाले बच्चों, शारीरिक रूप से विकलांग समूहों और सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित छात्रों के लिए शैक्षिक अवसरों में श्रेणी-वार अंतराल को कम करने से संबंधित हैं। एनईपी-2020 के अनुसार, शिक्षा में योग्यता-आधारित शिक्षा, पाठ्यचर्या एकीकरण और विज्ञान पर

आधारित मानसिकता के विकास पर जोर दिया गया है। भारतीय मूल्यों, क्षमताओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करने की संभावनाएँ राज्य और स्थानीय समुदाय के निर्णयों के अनुसार, प्रत्येक छात्र को लकड़ी का काम, बिजली का काम, धातु जैसे व्यावसायिक शिल्पों के चयन में निर्देशशित काम, बागवानी, मिट्टी के बर्तन बनाना, आदि शामिल है, जो गिजुभाई 135 वर्ष पहले ही अपने पाठ्यक्रम में लागू कर चुके थे। गिजुभाई द्वारा 20 वीं शताब्दी में ही बाल-शिक्षण हेतु शिक्षण साधनों पुस्तकालयों और प्रयोग शालाओं की आवश्यकता और महत्व को बताया गया है जिसकी उपयोगिता के बारे में एनईपी-2020 में कहा गया है कि पुस्तकों, पत्रिकाओं और अन्य शिक्षण-सीखने के संसाधनों सहित पढ़ने के लिए पर्याप्त संसाधनों को आसानी से सुलभ बनाया जाएगा और पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं को सुदृढ़ किया जाएगा।

14.6.5 प्रौद्योगिकी का उपयोग:- गिजुभाई अपनी कक्षा के छोटे विद्यार्थियों को प्रेरित करने के लिए कक्षा में फिल्में भी दिखाया करते थे। गिजुभाई ने शैक्षिक सेटिंग्स में एक सीखने के माहौल को बढ़ावा देने की आवश्यकता पर जोर दिया जो विद्यार्थियों को आज्ञाकारी रूप से सुनने के बजाय 'अन्वेषण' करने के लिए प्रोत्साहित करता है। एनईपी-2020 में छिपी हुई क्षमताओं को उजागर करने और पोषित करने के लिए प्रौद्योगिकी के व्यापक उपयोग पर बल दिया गया है।

14.6.6 शिक्षण विधियाँ (Teaching Methods)-- प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) में एनईपी 2020 ने गिजुभाई की शिक्षण विधियों की प्रासंगिकता को प्राथमिकता दी है। एनईपी 2020 में भी बच्चों को खेल के जरिए सीखाने की सिफारिश की गई है। जिसमें बातचीत, कहानियों और कविताओं के माध्यम से सीखने में बच्चों को मज़ा आता है। गिजुभाई की शिक्षण विधियाँ निम्न हैं जो वर्तमान में भी प्रासंगिक हैं -

1. दैनिक जीवन का अनुभव (Daily Life Experience): गिजुभाई का मानना था कि एक बच्चे का दैनिक जीवन का अनुभव शिक्षण में एक मूल्यवान उपकरण है। इसे उन्होंने अपनी शिक्षण पद्धति के आधार के रूप में इस्तेमाल किया। बच्चे जो कहते हैं उसे ध्यान से सुनना, उनके प्रश्नों का अर्थपूर्ण उत्तर देना, उनकी रुचि जगाने के लिए उनसे प्रासंगिक प्रश्न पूछना और उन्हें सोचने के लिए सहजता से लेना (push) भी बच्चों को सीखने में मदद करता है। गिजुभाई का कहना है कि बातचीत में, कविताओं और कहानियों में बच्चों को शामिल करना भी उनके साथ आत्मीयता बढ़ाने का अच्छा तरीक़ा है।

2. अवलोकन पद्धति (Observation Method): गिजुभाई ने शिक्षण में अवलोकन के महत्व पर जोर दिया और बच्चों को अपने ज्ञान और कौशल को विकसित करने के लिए अपने पर्यावरण और परिवेश का निरीक्षण करने के लिए प्रोत्साहित किया।

3.चर्चा पद्धति (Discussion Method): गिजुभाई का मानना था कि चर्चा शिक्षण का एक प्रभावी तरीका है और बच्चों को अपनी राय और विचार व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है, इस प्रकार उनके महत्वपूर्ण सोच कौशल का विकास होता है।

4.प्रश्न-उत्तर विधि (Question-Answer Method): गिजुभाई ने बच्चों को सोचने और प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए प्रश्न-उत्तर विधि का उपयोग किया, जिससे उनकी जिज्ञासा और सीखने को विकसित करने में मदद मिली।

5.गतिविधि पद्धति (Activity Method): गिजुभाई का मानना था कि बच्चे गतिविधियों के माध्यम से सीखते हैं, और सीखने के अनुभवों को हाथों-हाथ प्रोत्साहित करते हैं । उन्होंने बच्चों के सीखने को मज़ेदार और आकर्षक बनाने के लिए ड्राइंग, पेंटिंग और गायन जैसी विभिन्न गतिविधियों का इस्तेमाल किया।

6.कहानी सुनाने की विधि (Storytelling Method): गिजुभाई का मानना था कि कहानियाँ एक शक्तिशाली शिक्षण उपकरण हैं और उनका उपयोग बच्चों को महत्वपूर्ण पाठ और मूल्य बताने के लिए किया जाता है। उन्होंने अक्सर पारंपरिक लोक कथाओं और नैतिक संदेश वाली कहानियों का इस्तेमाल किया। यह संभव है कि अलग-अलग विषयों को एक ही तरीके से सीखने पर एक जैसा प्रभाव नहीं पड़ेगा। गिजुभाई इतिहास पढ़ाने के लिए कहानी कहने के प्रयोग के पक्षधर थे। उन्होंने सोचा कि किसी घटना का वर्णन करने के बजाय एक कहानी सुनाने से बच्चों को इसे अधिक प्रभावी ढंग से याद रखने में मदद मिलेगी।

14.6.7 खेल-कूद का महत्व:- खेल वास्तविक शिक्षा प्रदान करते हैं। गिजुभाई का मानना था कि खेल चरित्र निर्माण के विकास में सहायक होते हैं। उन्होंने कहा, "खेल वास्तविक शिक्षा हैं प्रारम्भिक वर्षों में बच्चे एक ही जगह पर लम्बे समय तक नहीं बैठे रह सकते। वे इधर-उधर जाने की इच्छा रखते हैं। बाहर खेलना उन्हें प्राकृतिक वातावरण की खोजबीन करने, अपनी शारीरिक सीमाओं का परीक्षण करने, ख़ुद को व्यक्त करने और आत्मविश्वास बनाने का मौका उपलब्ध कराता है। ऐसा करना उनके समग्र गत्यात्मक कौशल, शारीरिक फिटनेस और सन्तुलन

बनाने में मदद करता है। बच्चे जगह का, दौड़ने, कूदने और चढ़ने और एक-दूसरे से धक्का-मुक्की करने की आज़ादी का पूरा मज़ा लेते हैं। बाहर खेलना कई बच्चों के लिए आराम करने और शान्त होने जैसा है। और यह बहुत मज़ेदार है! राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बच्चों को खेल के ज़रिए सीखाने का सुझाव दिया गया है।

14.6.8 (बालवाड़ी / विद्यालय) (Balwadi/School)

गिजुभाई भारत में प्री-स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में एक महान अग्रणी विचारक थे जो बच्चों के लिए एक ऐसे स्कूल के सपने को साकार करते हैं जहां बेंत का कोई डर नहीं होता। एक ऐसी जगह जहां बच्चे स्वेच्छा से जाते थे और वापस अपने घर माता-पिता के पास आने के लिए इन्कार करते थे। बच्चे गिजुभाई को मूछों वाली माँ कहकर पुकारते थे। गिजुभाई की बालवाड़ी / विद्यालय या बालमन्दिर की प्रासंगिकता एनईपी 2020 के संदर्भ में बच्चों के लिए उनकी आवश्यकताओं के अनुसार पर्याप्त शिक्षण सामग्री उपलब्ध होनी चाहिए, जिसमें शैक्षिक खिलौने, कहानी की किताबें और अन्य शैक्षिक संसाधन शामिल हैं। यह बच्चों के लिए एक उत्तेजक और समृद्ध सीखने का माहौल प्रदान करता है।

13.6.8 परीक्षा पैटर्न में बदलाव:- गिजुभाई परीक्षाओं के विरुद्ध थे। रैंकों का आवंटन करके गिजुभाई ने कभी भी अपने छात्रों की क्षमताओं का मूल्यांकन नहीं किया। उनका मानना था कि ग्रेड या रैंकिंग देने से केवल शत्रुता और ईर्ष्या भड़कती है और बच्चों के बीच अनुचित प्रतिद्वंद्विता को बढ़ावा मिलता है। उन्होंने रैंकिंग और परीक्षा द्वारा क्षमताओं का निर्धारण करने की प्रणाली का विरोध किया। एनईपी- 2020 ने भी परीक्षा पैटर्न में बदलाव किया है। अब परीक्षाएँ ही सब कुछ नहीं हैं। बालकों को पढ़ने और गेम खेलने दोनों की सुविधाएँ दी जाएँगी। अब स्कूल के परिणामों की तुलना छात्रों के आईक्यू से नहीं की जाएगी। बल्कि उनका उपयोग केवल उत्कृष्टता में सुधार करने और संस्थान को आगे बढ़ाने के लिए किया जाएगा।

अपनी उन्नति जाँचिए (Check your Progress)

नोट :- अपने उत्तरों की तुलना इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1. गिजुभाई की शैक्षणिक पुस्तक का नाम क्या है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 2. गणित शिक्षण के लिए गिजुभाई ने किस पद्धति का समर्थन किया है?

(अ) माँण्टेसरी पद्धति (ब) किंडर गार्टन (स) प्रोजेक्ट मैथड (द) डिवी की पद्धति

रिक्तस्थान की पूर्ति कीजिए –

प्रश्न 3. गिजुभाई के अनुसार बालक की शिक्षा----------से प्रारम्भ होनी चाहिए –

(अ) ड्राइंग (ब) लेखन (स) गिनती (द) पठन

14.7 सारांश (Summary)

राष्ट्रीय शिक्षा का आधार बाल-शिक्षा को मानते हुए गिजुभाई ने बाल–शिक्षा के क्षेत्र में नवीन आयाम स्थापित किये और बाल-शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के कई उपाय प्रस्तुत किये। देशभर में शिक्षा में सुधार का जो आंदोलन छिड़ा हुआ था उन सबके बीच गिजुभाई ने शिक्षण की जो नई पद्धति और तरीके विकसित किए वो तत्कालीन परिस्थियों में प्रभाव पूर्ण होकर देश भर में प्रसारित हुई जो आज भी प्रासंगिक हैं। उनके प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा की सार्थकता और उपयोगिता को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के शिक्षा संरचना के बुनियादी चरण - ईसीसीई (Early Childhood Care and Education) में देखा जा सकता है। गिजुभाई को बाल जगत का पारखी माना जाता है। उन्होंने शिक्षा को शिशुओं की रुचि, रुझान एवं आवश्यकताओं पर आधारित किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि बच्चों की अपनी दुनियां होती है, वे स्वतंत्र रहना चाहते हैं, खेलना-बनाकर दौड़ना चाहते हैं और कहानी सुनने-सुनाने में रूचि लेते हैं। अत: उन्हें समाज एवं शिक्षक को इन सबके अवसर प्राप्त कराने चाहिए। गिजुभाई ने अंग्रेजी शिक्षा तकनीकी में तथ्यों को रटने-रटाने के बीच बच्चों की प्रकृति और मनोभावों के अनुकूल अपनी बाल-केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था द्वारा भारतीय बच्चों को बिना डराए-धमकाए उन्हें प्यार-दुलार से पढ़ने-लिखने और सीखने के लिए जिस स्वस्थ प्राकृतिक और स्वतंत्र वातावरण का निर्माण कर मोंटेसरी शिक्षा पद्धति के सिद्धान्तो को भारतीय परिवेश में प्रभावी बनाने के उपाय बताये और बालकेन्द्रित शिक्षण के क्षेत्र में अनेक सफल प्रयोग किये उनके इस अमूल्य योगदान के लिए बाल शिक्षा जगत में सदैव याद किये जायेंगे।

14.8 शब्दावली (Glossary)

ECCE (Early Childhood Care and Education):- प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा का अर्थ जन्म से 6 वर्ष तक के शुरुआती जीवन से है ,जिसमें बालक की सामाजिक, भावनात्मक, संज्ञानात्मक और शारीरिक आवश्यकताओं पर ज़ोर देते हुए बालक के समग्र विकास के लक्ष को पूर्ण करना है ताकि बालक आजीवन सीखने एवं कल्याण की दिशा में आगे बढ़ सके और अपनी क्षमता को पहचान सके।

14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

Part –I (भाग-I)

उत्तर-1.गिरिजाशंकर भगवान जी बधेका

उत्तर-2. (स) गिजुभाई ने

उत्तर-3. (ब) बाल मंदिर

Part –II (भाग दो)

उत्तर-1. प्राथमिक शाला में भाषा शिक्षा

उत्तर-2. (अ) माँण्टेसरी पद्धति

उत्तर-3. (द) पठन

14.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Books)

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020), नई दिल्ली: मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार।

बधेका, गिजुभाई, दिवास्वप्न, जयपुर: गीतांजलि पब्लिकेशन।

बधेका, गिजुभाई, प्राथमिक विद्यालय में भाषा शिक्षा, जयपुर: गीतांजलि पब्लिकेशन।

14.11 सहायक / उपयोगी पाठ्यसामग्री (Useful Books)

अग्रवाल, जे०सी० (2009), उदीयमान भारतीय समाज में अध्यापक, आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन।

पाण्डेय, रामशकल (2007), उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।

14.12 अधिगम-अभ्यास (Learning Exercise)

14.12.1 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. गिजुभाई के शैक्षिक दर्शन एवं सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।
2. गिजुभाई द्वारा संचालित 'बाल मंदिर' की विवेचना कीजिए।
3. शिक्षक-प्रशिक्षक के रूप में गिजुभाई की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

14.12.2 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. 'बाल देवो भव' को स्पष्ट कीजिए।
2. बाल-केन्द्रित शिक्षा को स्पष्ट कीजिए।
3. गिजूभाई के अनुशासन की चर्चा कीजिए।

14.12.3 वस्तुनिष्ठ (Objective Type Questions)

(A) बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple -Chice Questions)

1. सत्याग्रह आन्दोलन के शरणार्थी शिवरों में बालकों की बानर सेना बनाई थी-

(अ) सुभाष चंद्र बोस ने (ब) चंद्रशेखर आजाद ने (स) महात्मा गाँधी ने (द) गिजुभाई ने

2. सन 1916 में गिजुभाई ने अपना सम्बंध स्थापित किया था-

(अ)) दक्षिणा मूर्ति विद्यार्थी भवन से (ब) ब्रह्म समाज से (स) आर्य समाज से (द) प्रार्थना समाज से

3. प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ECCE) किस चरण को कवर करता है ?-

(अ) बुनियादी शिक्षा (ब) प्राथमिक शिक्षा (स) पूर्व-प्राथमिक शिक्षा (द) माध्यमिक शिक्षा

उत्तर- 1. (द) 2. (अ) 3. (स)

(B) रिक्त स्थानों की पूर्ति करो (Fill in the blanks)

1. गिजुभाई का जन्म ---------- में हुआ था।

(अ) 15 नवंबर 1881 (ब) 15 नवंबर 1885 (स) 15 नवंबर 1888 (द) 15 नवंबर 1889

2. गिजुभाई द्वारा शरणार्थी शिवरों में बालकों के लिए----------योजना चलाई गई।

(अ) संस्कार योजना (ब) सत्कार योजना (स) साक्षर योजना (द) अक्षर योजना

3. गिजुभाई द्वारा दिवास्वप्न रचना में ----------शिक्षा की परिकल्पना की गई है ----

(अ) शिक्षक केन्द्रित (ब) बाल केन्द्रित एवं गतिविधि आधारित (स) अनुशासन प्रिय (द) रटंत प्रणाली

उत्तर- 1. (ब) 2. (द) 3. (ब)

C. सत्य / असत्य प्रश्न (True / False Questions)

1. भारत में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की शुरुआत गिजुभाई ने की थी -- सत्य/ असत्य
2. गिजुभाई बालकों को देवस्वरूप नहीं मानते थे ----- सत्य / असत्य
3. गिजुभाई के दिवास्वप्न रचना में काल्पनिक शिक्षक का नाम लक्ष्मीशंकर है ----सत्य/असत्य

4. गिजुभाई मूलत: गुजराती भाषा के लेखक थे -------सत्य/ असत्य

उत्तर- 1. (सत्य) 2. (असत्य) 3. (सत्य) 4. (सत्य)

ईकाई -15 जे. कृष्णमूर्ति

15.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

15.3 जीवन परिचय

15.4 दार्शनिक विचार

15.5 कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचार

15.5.1 शिक्षा के उद्देश्य

15.5.2 शिक्षक

15.5.3 शिक्षार्थी

15.5.4 शिक्षक शिक्षार्थी सम्बन्ध

15.5.5 पाठ्यक्रम

15.5.6 शिक्षण विधियाँ

15.5.7 अनुशासन

15.6 वर्तमान समय में जिद्दू कृष्णमूर्ति के विचारों की प्रासंगिकता

15.7 जे. कृष्णमूर्ति की प्रमुख रचनाएँ

15.8 सारांश

15.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.11 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही शिक्षा समस्त दार्शनिकों के लिए एक मंथन का विषय रही है। भारत में अनेक महान दार्शनिक हुए हैं। जैसे- महात्मा गाँधी, विवेकानंद, रविंद्रनाथ टैगोर, श्री अरविन्द घोष जिनमें से जे. कृष्णमूर्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। इन सभी दार्शनिकों ने शिक्षा एवं दर्शन पर अपने अपने विचार प्रस्तुत किए सभी का शिक्षा को लेकर अपना-अपना दर्शन है। अन्य सभी दार्शनिकों की तरह प्रख्यात दार्शनिक और विश्व शिक्षक जे. कृष्णमूर्ति भी शिक्षा को लेकर गहरी चिंता रखते हैं। इसके अलावा उन्होंने रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़े कई अन्य सामान्य विषयों पर भी बात की उन्होंने आधुनिक समाज में हिंसा और भ्रष्टाचार के साथ रहने की समस्याओं के बारे में, व्यक्ति की सुरक्षा और खुशी की खोज के बारे में, और मानव जाति को भय, क्रोध, चोट और दुःख के आंतरिक बोझ से मुक्त करने की आवश्यकता के बारे में एवं विवाह, रिश्तों के विषय में बात की। जे. कृष्णमूर्ति की प्राथमिक चिंता शिक्षा के लिए है। शैक्षिक उद्देश्य कृष्णमूर्ति की स्पष्ट दृष्टि प्रस्तुत करते हैं कि शिक्षा प्रश्न पूछने, पूछताछ करने और स्वीकार न करने की संस्कृति को शामिल करके बच्चे के दिमाग को जागृत करती है। जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार "हम चीजों के माध्यम से, रिश्तों के माध्यम से, विचारों के माध्यम से खुशी की तलाश करते हैं और उनकी नश्वरता का एहसास नहीं करते हैं। खुशी का सही अर्थ जानने के लिए हमें आत्म-ज्ञान की नदी का पता लगाना चाहिए। आत्म-ज्ञान अपने आप में कोई अंत नहीं है।" जिद्दु कृष्णमूर्ति ने शिक्षित, दार्शनिक और आध्यात्मिक विचार के संगम पर एक महान प्रभाव डाला। उनके विचारों के कारण कृष्णमूर्ति को आधुनिक आध्यात्मिक शिक्षकों के लिए एक अनुकरणीय के रूप में देखा जाता है। जिद्दू कृष्णमूर्ति ने एक अन्वेषक के रूप में सभी मान्यताओं पर सवाल उठाने और अपने श्रोताओं को चुनौती देने के लिए जीवन के कई मूलभूत मुद्दों पर कार्य किया।

15.2 उद्देश्य

इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- कृष्णमूर्ति के जीवन से जुड़े तथ्यों को जान पाएंगे।
- कृष्णमूर्ति के दार्शनिक विचारों को समझ सकेंगे।

- कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचारों को समझ सकेंगे।
- कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षक की विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे।
- उनके अनुसार पाठ्यक्रम ,शिक्षण विधियाँ ,अनुशासन आदि को समझ पाएंगे।
- कृष्णमूर्ति जी की कुछ प्रमुख रचनाओं का नाम जान पाएंगे।
- कृष्णमूर्ति जी के विचारों की वर्तमान में उपादेयता कू स्पष्ट कर पाएंगें।

15.3 जीवन परिचय

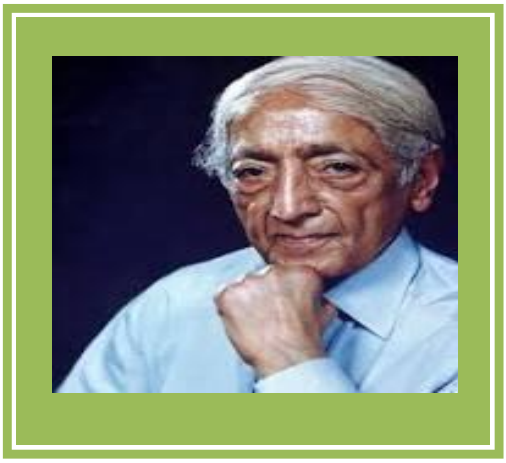

जे. कृष्णमूर्ति

जे. कृष्णमूर्ति का जन्म 12 मई, 1895 को तमिलनाडु में हुआ था। उन्होंने एक दार्शनिक, लेखक और प्रवचनकर्ता के रूप में खूब ख्याति प्राप्त की। जे. कृष्णमूर्ति विशेषज्ञ थे। उन्होंने मानसिक क्रान्ति, ध्यान और समाज में सकारात्मक परिवर्तन के लिए कई प्रयास किए। वे अपने माता-पिता की आठवीं संतान थे। उनका नाम कृष्णमूर्ति इसीलिए रखा गया क्योकि वासुदेव की आठवी संतान कृष्ण ही थे। ब्राह्मण परिवार में जन्मे कृष्णमूर्ति के पिताजी एक थियोसोफिस्ट थे कृष्णमूर्ति ने अपनी शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया इस दौरान उन्हें कई मुसीबतों का भी सामना करना पडा, जिससे उन्हें कड़ी

मेहनत की सीख मिली। थियोसॉफिकल सोसायटी ने कृष्णमूर्ति और उनके भाई नित्यानंद को भी अपने स्वामित्व में शिक्षा-दीक्षा का ग्रहण करवाया। इनकी बेहतर शिक्षा के लिए ही इस सोसाइटी ने इन दोनों भाइयों को विदेश भी भेजा था। यह समय उनके लिए कई परेशानियों से भरा था थियोसॉफिकल सोसायटी ने कृष्णमूर्ति और उनके भाई नित्यानंद को भी अपने स्वामित्व में शिक्षा दीक्षा का ग्रहण करवाया । इनकी बेहतर शिक्षा के लिए ही इस सोसाइटी ने इन दोनों भाइयों को विदेश भी भेजा था। वर्ष 1911 से 1914 तक कृष्णमूर्ति और नित्यानंद ने कई यूरोपीय यात्राएं की।

कृष्णमूर्ति समाज के प्रमुख सदस्यों एवं विशेषकर एनीबेसेंट के बहुत करीबी बन गए, जिन्होंने उनके समग्र व्यक्तित्व को विकसित करने में अपनी मुख्य भूमिका निभाई। बाद में आगे चलकर कृष्णमूर्ति की प्रतिभा से परिचित होकर एनी बेसेंट ने इन्हें कानूनी रूप से अपना पुत्र घोषित किया। वर्ष 1911 में एक अंतरराष्ट्रीय संगठन 'ऑर्डर ऑफ द स्टार इन द ईस्ट' की स्थापना की गई। यह 'विश्व शिक्षक' के लिए तैयार किया गया एक मंच था, जिसमें कृष्णमूर्ति को इसका प्रमुख बनाया गया था। हालाँकि, 1929 में, कृष्णमूर्ति ने उस भूमिका को त्याग दिया जो उनसे अपेक्षित थी, उन्होंने अपने विशाल अनुयायियों के साथ ऑर्डर को भंग कर दिया, और इस काम के लिए दान किए गए सभी धन और संपत्ति को वापस कर दिया।

कृष्णमूर्ति ने किसी भी जाति, राष्ट्रीयता या धर्म के प्रति कोई निष्ठा का दावा नहीं किया और वह किसी परंपरा से बंधे नहीं थे। उनका उद्देश्य मानव जाति को वातानुकूलित मन की विनाशकारी सीमाओं से बिना शर्त मुक्त करना था। लगभग साठ वर्षों तक उन्होंने दुनिया की यात्रा की और 1986 में नब्बे वर्ष की आयु में अपने जीवन के अंत तक बड़े दर्शकों से सहजता से बात की। उनके पास कोई स्थायी घर नहीं था, लेकिन जब वे यात्रा नहीं कर रहे थे, तो वे अक्सर ओजाई, कैलिफ़ोर्निया, ब्रॉकवुड पार्क, इंग्लैंड और चेन्नई, भारत में रहते थे। अपनी बातचीत में, उन्होंने लोगों को दैनिक जीवन में अपने विचारों और भावनाओं की सूक्ष्मताओं से अवगत होकर, आत्म ज्ञान के माध्यम से खुद को बदलने की आवश्यकता की ओर इशारा किया और बताया कि इस आंदोलन को रिश्ते के दर्पण के माध्यम से कैसे देखा जा सकता है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली के महान मार्गदर्शक, दर्शनिक पथप्रदर्शक, आध्यात्मिकता के धनी; जिन्होंने आत्मज्ञान को विशेष प्रकार से अवलोकन किया। ऐसे महान व्यक्ति जे. कृष्णमूर्ति का 14 फरवरी

1986 को अपने जीवन के 91वें वर्ष के दौरान अमेरिका में देहावसान हो गया। कृष्णमूर्ति ने देह जरूर त्यागा हो लेकिन उनके विचार, दर्शन और आध्यात्मिकता आज भी भारत और विश्व भर की पुस्तकों में समाहित है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. अंतरराष्ट्रीय संगठन 'ऑर्डर ऑफ द स्टार इन द ईस्ट' की स्थापना कब की गई।
2. कृष्णमूर्ति का जन्म कब और किस स्थान में हुआ ?
3. कृष्णमूर्ति ने ऑर्डर ऑफ द स्टार इन द ईस्ट'को कब भंग किया ?
4. ऑर्डर ऑफ द स्टार इन द ईस्ट'के प्रमुख कौन थे ?

15.4 कृष्णमूर्ति के दार्शनिक विचार

कृष्णमूर्ति एक स्वतंत्र विचारक थे। अतः उन्होंने अपने आप को किसी विचारधारा या मत में नहीं बाँटा एक दार्शनिक विचार के व्यक्ति कृष्णमूर्ति ने दर्शन के हर पक्ष का बखूबी अवलोकन किया। उनके जीवन पर प्रकृति का गहरा प्रभाव पड़ा, वे चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति प्राकृतिक सौंदर्य को पहचाने और उसे नष्ट ना करें। वे कहा करते थे कि शिक्षा पुस्तक मात्र से ही नहीं सीखी जाती बल्कि प्रकृति के अनुपम सौंदर्य का दर्शन करके भी सीख सकता है।

कृष्णमूर्ति के दार्शनिक विचार निम्न हैं

दर्शन- कृष्णमूर्ति के अनुसार दर्शन वह है,जो हमें साथ के लिए प्रेम, जीवन के लिए प्रेम तथा प्रज्ञा के लिए प्रेम जागृत करता है। कृष्णमूर्ति के अनुसार आत्मज्ञान एवं आत्मबोध का होना ही वास्तविक दर्शन है। जे .कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षण संस्थानों में दर्शन के नाम पर जो कुछ भी सिखाया जाता है वो सिद्धांतों एवं विचारों की व्याख्या होती है, जिसमें सत्य के वास्तविक स्वरूप को हम समझ नहीं पाते हैं। दर्शन से ही व्यक्ति को अपने वास्तविक स्वरुप का अध्ययन होता है ।

सत्य- कृष्णमूर्ति के अनुसार सत्य को जानने का कोई विशिष्ट मार्ग नहीं है, जिस पर चलकर हम सत्य को जान ले या प्राप्त कर लें और ना ही हम किसी धर्म ,पुरोहित या किसी कर्मकांड के द्वारा जान सकते हैं। उनके अनुसार सत्य तो स्वयं के अंदर छुपा होता है ।कृष्णमूर्ति के अनुसार अज्ञानी व्यक्ति वह नहीं है जो शिक्षित नहीं है बल्कि अज्ञानी व्यक्ति वह होता है जो स्वयं कि सत्ता से अनभिज्ञ है। सत्य को व्यक्ति अपने मानष में झाँककर स्वयं के व्यक्तिगत अनुभवों के द्वारा जान सकता है ।सत्य का अनुभव व्यक्तिगत है ।सत्य सम्पूर्णता की अनुभूति है ।

दुःख और दुःख का भोग- कृष्णमूर्ति के अनुसार दुःख और कष्ट दोनों अलग-अलग बाते हैं । मनुष्य के भूत और भविष्य की यादें ही दुःख का कारण होती हैं । कष्ट का सम्बन्ध शारीरिक पीड़ा से होता है, जिसे औषधि के द्वारा ठीक किया जा सकता है । लेकिन दुःख का कारण मानसिक पीड़ा से होता है जिसे दूर करने के लिए व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक स्थितियों को पूरी तरह से जानना जरूरी होता है ।

भय- कृष्णमूर्ति भय को व्यक्ति के मन का एक गंभीर रोग मानते हैं जो व्यक्ति के जीवन को पूरी तरह प्रभावित करता है। भय का कारण व्यक्ति के जीवन में होने वाली प्रतियोगिताएं एवं उनसे जुड़ी अनिश्चितताएँ होती हैं । व्यक्ति अपना जीवन एक निश्चित रेखा पर व्यतीत करता है यदि किसी कारण से उसमें उतार चढ़ाव आए या कोई बाधा उत्पन्न हो जाए तो वह भयभीत हो जाता है । कृष्णमूर्ति के अनुसार आत्मज्ञान होने पर भय से मुक्ति सम्भव है ।

मृत्यु- कृष्णमूर्ति के अनुसार मनुष्य मृत्यु से भयभीत रहता है, क्योंकी उसे जीवन के अर्थ का ज्ञान ही नहीं है उनके अनुसार मृत्यु दो प्रकार की होती है –एक मन की मृत्यु दूसरी शरीर की । शरीर की मृत्यु तो अनिवार्य घटना है । मन की मृत्यु ही वास्तविक मृत्यु है ।

युद्ध और हिंसा- युद्ध और हिंसा आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। युद्ध और हिंसा प्रायः शक्ति प्रदर्शन ,पद की प्रतिष्ठा, धन एवं वासना के लिए होता है । वर्तमान में सभ्यता के इस विकास में आज की हिंसा मनुष्य के अस्तित्व के लिए खतरा बन गई है ।वास्तविकता में वही व्यक्ति अहिंसक है जो अपने मन की सभी विभाजनात्मक प्रवृत्तियों को जानकार आत्मज्ञानी हो गया है।

आत्मा का स्वरुप - कृष्णमूर्ति जी के आत्मा के सम्बन्ध में विचार भारतीय दर्शन में आत्मा के स्वरुप से एकदम भिन्न है। कृष्णमूर्ति के अनुसार सामान्यतः मनुष्य जिसे आत्मा कहता है वह उसका अहंकार

होता है जो देखने के रूप में होता है। भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा को ना तो उत्पन्न किया जा सकता है और नहीं नष्ट किया जा सकता है आत्मा अजर और अमर है। कृष्णमूर्ति के अनुसार आत्मा शब्द एक प्रकार का विचार है।

ज्ञान एवं प्रज्ञा- मनुष्य की सोचने समझने की शक्ति उसे अन्य जीव जन्तुओं से श्रेष्ठ बनाती है। कृष्णमूर्ति के अनुसार जब कोई अनुभूति होती है तो ज्ञान उपजता है व ज्ञान अनुभव प्रसूत है जो स्मृतियों के रूप में मस्तिष्क में संचित रहता है। उनके अनुसार ज्ञान के तीन रूप हैं। वैज्ञानिक ज्ञान, सामूहिक ज्ञान ,व्यक्तिगत ज्ञान।

कृष्णमूर्ति के अनुसार यदि मनुष्य में प्रज्ञा है तो वह ब्रह्माण्ड के सौंदर्य की अनुभूति कर सकता है। अतः ज्ञान का उपयोग प्रज्ञा के द्वारा होना चाहिए।

प्रेम - कृष्णमूर्ति का मानना है कि प्रेम एक विलक्षण चीज है जब तक इसे विचार और वासना के धागे से न पिरोया जाए। प्रेम तो वह वस्तु है जिसमें वासनाओं, घृणाओं और किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होता है।

ईश्वर- ब्रह्माण्ड वादी दर्शन में ईश्वर को सृष्टि का रचयिता माना गया है एवं उसे सर्वशक्तिमान सत्ता के रूप में स्वीकारा गया है। कृष्णमूर्ति जी ने ईश्वर की सत्ता को तो नहीं नकारा है, बल्कि उन्होंने अनुभूति के विचारों को संप्रेषित न करने की बात कही है, वह ईश्वर शब्द को ही ईश्वर मानते हैं न कि मंदिर में ताले में बंद मूर्तियों को उनके अनुसार ईश्वर को ताले में बंद करने की क्या आवश्यकता है। ईश्वर तो सर्वत्र विद्यमान है ईश्वर कभी भी दृश्य नहीं बन सकता, वह तो मौन की अवस्था में सर्वत्र मौजूद है।

स्वतंत्रता– कृष्णमूर्ति के अनुसार जब हम किसी भी तरह दूसरे पर निर्भर नही होते हैं और अपने कार्य स्वयं चिंतन मनन एवं विवेक के साथ करने की अवस्था में होते हैं तो ऐसी अवस्था को स्वतंत्रता की अवस्था कहते हैं। स्वतंत्र होने का अर्थ ज्ञानवान होने से लगाया जाता है अर्थात जब व्यक्ति सम्पूर्णता का अनुभव करके आनन्दित होता है वही स्वतंत्रता होती है।

कामवृत्ति, ब्रह्मचर्य एवं सृजनशीलता- कृष्णमूर्ति के अनुसार ,कामवृत्ति एक शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है, जिसे दूर नहीं किया जा सकता फिर भी इसके विरुद्ध व्यक्ति ने ब्रह्मचारी का पालन करके इसे और भी कठिन बना दिया है जिसके कारण मनुष्यों में कई प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न –

5. कृष्णमूर्ति के अनुसार सत्य क्या है ?
6. कृष्णमूर्ति के अनुसार स्वतंत्रता क्या है ?

15.5 कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचार

जिद्दू कृष्णमूर्ति की गणना आधुनिक युग के श्रेष्ठ विचारकों में होती है। शिक्षा से संबंधित जो उनके विचार हैं, वह बहुत ही महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। उनके विचार क्रांतिकारी थे। जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा का मूल उद्देश्य एक संतुलित मानव का विकास करना है ऐसा मानव जो चेतनायुक्त हो ,जो सद्भावना से परिपूर्ण हो, जो जीवन का उद्देश्य और अर्थ जानता हो, जे. कृष्णमूर्ति अपने बातों तथा विचार विमर्शों के माध्यम से अपनी शिक्षाओं को बच्चों तक पहुंचाते हैं। क्योंकि मानव-मन के मूलभूत परिवर्तनों से तथा एक नवीन संस्कृति के सृजन में जो केंद्रीभूत है, उसके सम्प्रेषण के लिए शिक्षा को कृष्णमूर्ति प्राथमिक महत्व का मानते हैं। ऐसा मौलिक परिवर्तन तभी संभव होता है, जब बच्चों की विभिन्न प्रकार की कार्यकुशलता तथा विषयों का प्रशिक्षण देने के साथ-साथ उसे स्वयं तथा क्रियाशीलता के प्रति जागरूक होने की क्षमता भी प्रदान की जाती है। उन्होंने प्रत्येक प्रकार की बाह्य प्रामाणिकता का विरोध किया, फिर चाहे वह व्यक्ति की हो या पुस्तक की हो। वह यथार्थ ज्ञान के पक्ष में थे। यथार्थ ज्ञान से उनका अभिप्राय ' सत्य' के ज्ञान से था और इस सत्य तक पहुंचने का साधन उन्होंने शिक्षा को माना है। जे.कृष्णमूर्ति के अनुसार सत्य अथवा यथार्थ तक व्यक्ति स्वयं ही अपने प्रयास से पहुंच सकता है ना कि किसी पुस्तक के माध्यम से। यह तो सिर्फ उनका मार्गदर्शन ही कर सकते हैं। किसी भी व्यक्ति को प्रयास खुद से ही करना होगा। कृष्णमूर्ति अपने समय की प्रचलित शिक्षा के विरोधी थे । उसे दोषपूर्ण मानते थे क्योंकि उनके अनुसार इसमें बालकों को केवल ज्ञान अर्जन कराया जाता है। ज्ञान को ढूंसा जाता है, परंतु जीवन में आने वाली चुनौतियों, परिस्थितियों में इस ज्ञान का उपयोग करना नहीं सिखाया जाता। छात्रों की भावनाओं एवं समस्याओं का ध्यान नहीं रखा जाता । प्रचलित शिक्षा बुद्धि का विकास करना नहीं सिखाती। वह ऐसी शिक्षा के पक्ष में थे,जो छात्रों में ना केवल ज्ञान अर्जन कराएं बल्कि संसार की ओर वस्तुगत तरीके से देखना भी सिखाएं। जिससे छात्र भौतिक जीवन की समस्याओं का समाधान कर सके।

जे .कृष्णमूर्ति के अनुसार "शिक्षा द्वारा ही मनुष्य को जीवन का सही अर्थ समझाया जा सकता है। और शिक्षा द्वारा ही उसे अनुचित मार्ग से सद्मार्ग पर लाया जा सकता है।"

15.5.1 शिक्षा के उद्देश्य

जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा का मूल उद्देश्य एक संतुलित मानव का विकास करना है अतः कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा के इस मूल उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति आवश्यक है।

शारीरिक एवं मानसिक विकास- कृष्णमूर्ति के अनुसार बालक को शारीरिक रूप से स्वस्थ होना आवश्यक है। तभी उसका मानसिक विकास संभव है।

सामाजिक विकास –व्यक्ति सामाजिक प्राणी है। अतः समाज में रहकर ही वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। अतः शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक विकास होना चाहिए।

आध्यात्मिक मूल्यों का विकास- आध्यात्मिक मूल्यों के विकास से तात्पर्य बालक के नैतिक मूल्यों का विकास, आध्यात्मिक चेतना का विकास,आत्म ज्ञान का विकास से है इनके विकास के लिए कृष्णमूर्ति आंतरिक स्वतंत्रता, आतंरिक शान्ति,आत्मानुशासन,धैर्य,एवं ज्ञान को अनिवार्य मानते हैं।

सांस्कृतिक विकास- कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य "ऐसे मानव का निर्माण करना है जो सुसंस्कृत, सभ्य और शिष्ट हो" अतः मनुष्य का सांस्कृतिक विकास आवश्यक है।

वैज्ञानिक बुद्धि का विकास- कृष्णमूर्ति ने वैज्ञानिक ज्ञान का विरोध नहीं किया उनका मानना था कि वैज्ञानिक बुद्धि एवं तकनीकी का प्रयोग मनुष्य के कल्याण के लिए हो।

सृजनात्मकता का विकास- कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षक को बच्चों पर पूर्व निश्चित मूल्य एवं सिद्धात थोपने नहीं चाहिए।। उन्हें स्वयं के द्वारा कार्य करने एवं निर्णय लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। उनके अनुसार विद्यालय का वातावरण शांत होना चाहिए। यदि छात्र स्वयं निर्णय लेंगे तो उनके अंदर सृजनात्मकता का विकास होगा।

संवेदनशीलता का विकास- कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक को संवेदनशील बनाना है।

चरित्र का निर्माण करना- कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य चरित्र का निर्माण करना है। उनके अनुसार असत्य को त्यागकर सत्य को अपनाने की शक्ति होना ,सत्य की खोज करना एवं सत्य पर अडिग बने रहने से जो चरित्र का निर्माण होता है ,वह स्थायी होता है ।

व्यावसायिक प्रशिक्षण- कृष्णमूर्ति के अनुसार व्यक्ति को जीविकोपार्जन हेतु कोई न कोई व्यवसाय जरूर करना होता है। अतःशिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य व्यावसायिक प्रशिक्षण होना चाहिए जिससे की व्यक्ति प्रारम्भ से ही किसी न किसी व्यवसाय में पारंगत हो जाए एवं अपने जीविकोपार्जन हेतु कोई भी व्यवसाय कर सके ।

15.5.2 शिक्षक

कृष्णमूर्ति के अनुसार एक योग्य शिक्षक वह होता है जो बच्चों के अनुरूप स्वतंत्र वातावरण तैयार कर सके ।जिसमें बच्चे का सर्वांगीण विकास हो सके उनके अनुसार शिक्षक एक मित्र की तरह कार्य करे शिक्षक की भूमिका बालकों को प्रेरित करने, प्रोत्साहित करने और उसके कार्यों में सहायक की तरह कार्य करने वाली होनी चाहिए । शिक्षक को बालकों का प्रेम एवं विश्वास जीतने वाला होना चाहिए ।उनके अनुसार शिक्षक निम्नलिखित कार्यों को करने में सक्षम हो।

सहयोगी के रूप में- कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षक की भूमिका एक सहयोगी की तरह हो छात्र अपनी किसी भी समस्या को बिना किसी डर एवं झिझक के शिक्षक के सम्मुख रख सके ।यदि शिक्षक छात्रों के साथ मित्रता पूर्ण व्यवहार रखेगा तो छात्रों के अंदर आत्मविश्वास की भावना का विकास होगा ।

मानसिक विकास- शिक्षक को छात्रों के मानसिक विकास में सहयोग प्रदान करना चाहिए । शिक्षक को छात्रों के मानसिक एवं बौद्धिक विकास करने के लिए उपयुक्त तथ्यों का सहारा लेना चाहिए ।

व्यावहारिक एवं पुस्तक ज्ञान में सामंजस्य- एक कुशल शिक्षक वही है, जो पुस्तकीय ज्ञान एवं आध्यात्मिक ज्ञान में उचित समन्वय करता है। एक कुशल शिक्षक व्यवहारिक ज्ञान की उपेक्षा भी नहीं कर सकता है। अतः शिक्षक का कार्य विभिन्न प्रकार की ज्ञानात्मक व्यवस्थाओं में समायोजन उत्पन्न करना है।

आध्यात्मिक विकास में सहयोग करना- शिक्षक को छात्रों में आध्यात्मिक ज्ञान के प्रति रुचि उत्पन्न करनी चाहिए क्योंकि आध्यात्म का विषय कठिन एवं नीरस होता है। इस विषय के प्रति रुचि उत्पन्न करके विकास की गति में निरन्तरता को बनाए रखा जा सकता है।

15.5.3 शिक्षार्थी

जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षार्थी को वातावरण के प्रति सजग व अन्वेषक होना चाहिए जो वर्तमान में अनुकरण की प्रवृति को दूर करने में सहायक हो सकते हैं वह नवाचार एवं सृजनात्मकता के द्वारा शिक्षा प्राप्त करे। शिक्षार्थी स्वयं सिद्धांत, नियम एवं मूल्यों का चयन कर सके किसी भी प्रकार का सिद्धांत नियम या ज्ञान उस पर न थोपे जाएं।

15.5.4 शिक्षक एवं शिक्षार्थी सम्बन्ध

कृष्णमूर्ति के अनुसार गुरु एवं शिष्य का सम्बन्ध मित्रवत होना चाहिए। जो प्राचीन समय में गुरु एवं शिष्य परंपरा के विरोधी थे उनके अनुसार शिष्य को गुरु का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए। क्योंकी शिक्षक का कार्य शिष्य को सही मार्ग दिखाना होना चाहिए। जिससे कि शिक्षार्थी ज्ञान प्राप्त कर सके इस प्रकार शिक्षक एवं शिक्षार्थी के सम्बन्ध में सहयोग एवं कर्तव्य का समावेश होना चाहिए। शिक्षार्थी को अपने शिक्षक का पूरा सम्मान करना चाहिए तभी वो ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

14.5.5 पाठ्यक्रम

जे. कृष्णमूर्ति छात्रों के सर्वांगीण विकास पर बात करते हैं। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य एक संतुलित मानव का विकास करना है। अतः पाठ्यक्रम में ऐसे विषय होने आवश्यक हैं, जिससे की मानव का आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक विकास हो। जैसे गणित, विज्ञान। आध्यात्मिक ज्ञान के लिए अध्यात्मिक विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान मिलना चाहिए। उनके अनुसार पाठ्यक्रम उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए जो छात्रों के जीवन के उद्देश्यों को पूरा कर सके।

वर्तमान युग तकनीकी ज्ञान का युग है, इसलिए पाठ्यक्रम क्रियाशील होना चाहिए। संतुलित विकास हेतु संतुलित पाठ्यक्रम होना चाहिए। पाठ्यक्रम अधिगम में सहायक एवं उपयोगी होना चाहिए जिससे की छात्रों की आवश्यकताएं पूरी हो सकें बालकों के नैतिक एवं मानवीय गुणों के विकास हेतु नैतिक शिक्षा होनी चाहिए। बालको को भौतिक ज्ञान दिया जाए। बालकों को व्यावसायिक

विषयों का ज्ञान देने के साथ-साथ व्यावसायिक प्रशिक्षण भी आवश्यक है। बालकों को आध्यात्मिक विषयो का ज्ञान दिया जाए। कला, संगीत, कविता आदि को पाठ्यक्रम में रखा जाना अनिवार्य हो ,बालको में तर्क, चिन्तन, जिज्ञासा, अभिव्यक्ति का विकास किया जाए। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण हेतु पाठ्यक्रम में शारीरिक ज्ञान देना चाहिए। शिक्षा का स्वरूप संकुचित होने के साथ साथ व्यापक शिक्षा भी होनी चाहिए। पाठ्यक्रम में सृजनशीलता का ज्ञान भी दिया जाए। कृष्णमूर्ति के अनुसार पर्यावरण शिक्षा का ज्ञान होना भी आवश्यक है।

15.5.6 शिक्षण विधियाँ

जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार करके सीखना और स्वयं के अनुभव से सीखना सर्वोत्तम होता है। उनके अनुसार शिक्षण की ऐसी विधियाँ होनी चाहिए, जिसमें छात्र निष्क्रीय श्रोता न बनकर क्रियाशील, अनुसंधानकर्ता तथा प्रयोगकर्ता बनकर रहे ।वो छात्र और शिक्षक के बीच की दूरी को कम करना चाहते थे जिससे की शिक्षक सहयोगकर्ता के रूप में कार्य करे ।शिक्षण विधि में ध्यान को भी सम्मिलित किया जाए। शिक्षण विधि ऐसी होनी चाहिए कि "स्वयं करके सीखना'' और ''अनुभवों से सीखना''का प्रयोग करके छात्र अधिगम प्राप्त करे। शिक्षण विधि बालक के स्तरानुसार मानसिक व शारीरिक विकास के अनुकूल होनी चाहिए। शिक्षण में आवश्यकतानुसार व्याख्यान, वाद् विवाद ,संगोष्ठी, कार्यशालाएं एवं शिक्षण उपयोगी गतिविधियों का आयोजन हो। शिक्षण में विषयों को सरल व रोचक बनाने हेतु सहायक सामग्री जैसे- दृश्य श्रव्य सामग्री का समुचित प्रयोग किया जाए। शिक्षण के दौरान छात्र अध्यापक अन्तःक्रिया व सहभागिता की भावना आवश्यक होती है। शिक्षण में आगमन, निगमन दोनो विधियों का समावेश होना आवश्यक हो। शिक्षण जिज्ञासापूर्ण हो तथा अन्त में विद्यार्थियों में स्वमूल्यांकन की प्रवृत्ति विद्यमान हो। उनके अनुसार उचित शिक्षा वही है,जो बालक के जीवन की समस्याओं का समाधान करने में सक्षम हो।

अतः कृष्णमूर्ति के अनुसार बालक के सम्पूर्ण विकास हेतु निम्नलिखित शिक्षण विधियों का होना आवश्यक है।

i) वार्तालाप, (ii) अध्ययन, (iii) स्वाध्याय, (iv) अवलोकन, (v) निदिध्यासन, (vi) प्रयोग, (vii) मनन, (viii) व्याख्यान, (ix) श्रवण, (x) दृष्टान्त।

15.5.7 अनुशासन

जे. कृष्णमूर्ति ने शिक्षार्थी में आन्तरिक अनुशासन पर बल दिया। जे.कृष्णमूर्ति के दर्शन में अनुशासन का विशेष महत्व है। जे.कृष्णमूर्ति के अनुसार अनुशासन से व्यवस्था आती है। व्यवस्था से स्वतंत्रता का जन्म होता है और स्वतंत्रता से अच्छाई, प्रेम और प्रज्ञता का प्रस्फुटन होता है। उन्होने सदैव आन्तरिक अनुशासन पर बल दिया। उनके अनुसार वास्तविक अनुशासन का अर्थ होता है अपने मन एवं हृदय के सहयोग से मित्रवत एवं स्नेहपूर्ण अवस्था में सीखना। अनुशासन शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य अवस्था का संबंध है। उन्होने लिखा है कि "अनुशासन शिष्यत्व से जुडा है, क्योंकि अनुशासन का संबंध सीखने से है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न-

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

7. जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार करके सीखना और .....से सीखना सर्वोत्तम होता है।
8. जे. कृष्णमूर्ति ने शिक्षार्थी में .....पर बल दिया।
9. शिक्षण में आगमन .....दोनो विधियों का समावेश होना आवश्यक हो।
10. कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा .....मुक्त होनी चाहिए।

15.6 वर्तमान समय में जिद्दू कृष्णमूर्ति के विचारों की प्रासंगिकता

शिक्षा के प्रति उनका दृष्टिकोण संपूर्ण व्यक्ति से संबंधित है, जिसमें उसके सभी भाग शामिल हैं इसलिए, शिक्षा का तात्पर्य एक व्यक्ति को समग्र रूप से तैयार करना है कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए, जिससे व्यक्ति में मानवोचित गुणों का विकास हो सके। आज की शिक्षा व्यक्ति को पढ़ना-लिखना एवं विविध तकनीकी ज्ञान प्रदान कर केवल उसका बौद्धिक विकास करती है ।जिससे सिर्फ दुःखमय जीवन उत्पन्न हुए हैं। शिक्षा का उद्देश्य किसी भी आदर्शों का अंधानुकरण करना नही है। बल्कि उसका उद्देश्य बालक को वास्तविकता अर्थात् प्रकृति तथा आस-पास के वातावरण के साथ समन्वय स्थापित करके, भय रहित उत्तम जीवन निर्वाह करने के लिये तैयार करना

है। जो वर्तमान समय में आवश्यक है, जे. कृष्णमूर्ति अपने समय में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था से संतुष्ट नहीं थे कृष्णमूर्ति यथार्थ ज्ञान के पक्ष में थे यथार्थ ज्ञान से उनका अभिप्राय सत्य के ज्ञान से था उनके अनुसार यथार्थ ज्ञान को व्यक्ति पुस्तक या किसी व्यक्ति आदि से प्राप्त नहीं कर सकता है। ये तो उसके सहायक के रूप उनकी सहायता कर सकते हैं। यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास तो व्यक्ति को स्वयं ही करना होगा वो परिवार ,विद्यालय एवं प्रकृति को भी मानव के उत्तम विकास में आवश्यक मानते हैं। जिद्दू कृष्णमूर्ति एक महान विचारक दार्शनिक एवं शिक्षाविद थे उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समाज एवं शिक्षा के हितों के लिए न्यौछावर कर दिया था। अतः उनके कार्यों उनके शिक्षा संबंधी विचारों उनके दर्शन का संकलन वर्तमान समय में निश्चित रूप से प्रभावकारी है। कृष्णमूर्ति ने "लाइफ अहेड" में कहा है कि सम्यक शिक्षा और सम्यक विकास में सीखना सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। उन्होंने सीखने के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है। सीखने का तात्पर्य केवल जानकारी का संग्रह नहीं बल्कि गहन समझ होना है।कृष्णमूर्ति के लेखन और व्याख्यान न केवल शिक्षा के संपूर्ण दायरे को कवर करते हैं, बल्कि एक पथप्रदर्शक के रूप में भी काम करते हैं, शिक्षक का मार्गदर्शन करते हैं। कृष्णमूर्ति का शिक्षा दर्शन आज भी कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग की दुनिया में बहुत प्रासंगिक है। कृष्णमूर्ति की शिक्षाएँ हमें अपने जीवन, उसके विभिन्न अध्यायों को पढ़ने में मदद करती हैं। उनका इरादा था कि शिक्षा को एक व्यक्ति को इस तरह से तैयार करना चाहिए कि वह दिन-प्रतिदिन की समस्याओं से निपट सके और अपने तरीके से समाधान ढूंढ सके। कृष्णमूर्ति ने एक सुरक्षित सीखने के माहौल, बच्चे में समग्र विकास, एकीकृत शिक्षा, ज्ञान का कोई पदानुक्रम नहीं और मनुष्य के बाहरी और आंतरिक विकास की वकालत की। कृष्णमूर्ति के विचार नवीनतम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बहुत अधिक प्रतिबिंबित होते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के कार्यान्वयन के साथ, कृष्णमूर्ति का एक संतुलित विकसित मानव एवं सकारात्मक समाज बनाने का दृष्टिकोण वास्तविकता बन जाएगा। कृष्णमूर्ति के शिक्षा के उद्देश्यों की भांति राष्ट्रीय शिक्षा नीति के उद्देश्यों में शिक्षा का मूल उद्देश्य एक संतुलित मानव का विकास करना है एनईपी भी मानव को सृजनशील बनाकर उनकी अद्वितीय प्रतिभाओं और क्षमताओं के विकास को अधिकतम करने के लिए प्रोत्साहित करती है। इस प्रकार हम देखते हैं की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में जे. कृष्णमूर्ति के विचार परिलक्षित होते हैं।

15.7 जे. कृष्णमूर्ति की प्रमुख रचनाएँ

जे. कृष्णमूर्ति की कुछ प्रमुख हिंदी एवं अंग्रेजी की रचनाएँ निम्नलिखित हैं -

- शिक्षा और संवाद
- ध्यान
- जीवन और मृत्यु
- प्रेम
- सीखने की कला
- शिक्षा केंद्रों के नाम पत्र
- विज्ञान और सृजनशीलता
- स्कूलों के नाम पत्र
- ध्यान में मन
- कृष्णमूर्ति जीवन और दर्शन
- The first and last freedom
- Krishnmurti's Note book
- Education And The Significance Of Life
- Educating the Educator
- Choiceless Awareness
- The Awakening of Intelligence
- The Freedom from the known
- On love and loneliness
- Krishnmurti on Education

15.8 सारांश

प्रस्तुत ईकाई में आपने जे. कृष्णमूर्ति के शैक्षिक एवं दार्शनिक विचारों को जाना। उनके अनुसार शिक्षा भय मुक्त होनी चाहिए। व्यक्ति को स्वतंत्र वातावरण में रहकर शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। बालक की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास किया उनके अनुसार पाठ्यक्रम में कला ,संगीत ,विज्ञान एवं गणित जैसे विषयों का समावेशन होना चाहिए। पर्यावरण शिक्षा को भी उन्होंने अनिवार्य बताया। जे. कृष्णमूर्ति ने शिक्षार्थी में आन्तरिक अनुशासन पर बल दिया। उनके अनुसार शिक्षा क्या सोचना है? कि जगह कैसे सोचना है ? पर ज्यादा बल देती है । कृष्णमूर्ति शिक्षार्थियों पर सामाजिक, सांस्कृतिक ,आर्थिक एवं धार्मिक किसी भी तरह के विचारों आदि को थोपने के पक्ष में नही थे, उनके अनुसार शिक्षार्थी स्वयं निर्णय लेकर सृजनात्मकता का विकास करे एवं नए नियम एवं सिद्धांत बनाए । इस प्रकार जे. कृष्णमूर्ति के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचार वर्तमान समय में भी प्रासंगिक बने हुए हैं ।

15.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. 1911
2. 12 मई 1895
3. 1929
4. कृष्णमूर्ति
5. सत्य सम्पूर्णता की अनुभूति है ।
6. जब व्यक्ति सम्पूर्णता का अनुभव करके आनन्दित होता है,वही स्वतंत्रता होती है ।
7. स्वयं के अनुभव
8. आन्तरिक अनुशासन
9. निगमन
10. भय

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. स्वरुप सक्सेना.एन. आर (2012),उदीयमान समाज में भारतीय शिक्षक ,लाल बुक डिपो ।
2. कृष्णमूर्ति .जे; शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य ,कृष्णमूर्ति फाउन्डेशन इण्डिया ।

3. कृष्णमूर्ति जे. ‘‘शिक्षा क्या है’’? राजपाल।
4. कृष्णमूर्ति जे. ‘‘शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य’’ राजघाट फोर्ट वाराणसी।
5. कृष्णमूर्ति जे. ‘‘शिक्षा दर्शन’’ डॉ.राम सकल पाण्डेय।
6. कृष्णमूर्ति जे. ‘‘सीखने की कला’’।
7. http://www.socialresearchfoundation.com/new/publish-journal.php
8. माथुर ,डॉ. एस .एस (2009),शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार”पंचम- संशोधित संस्करण विनोद,पुस्तक मंदिर आगरा।
9. https://www.aryavi.com/biography-of-jkrishnamurti

15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जे. कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचारों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. कृष्णमूर्ति जी के दार्शनिक विचारों पर प्रकाश डालिए।
3. वर्तमान समय में कृष्णमूर्ति जी के विचारों की प्रासंगिकता स्पष्ट कीजिए।
4. जिद्दू कृष्णमूर्ति जी के अनुसार शिक्षण विधियाँ कौन-कौन सी होनी चाहिए।
5. जिद्दू कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।